अनुवाद कला
सिद्धान्त और प्रयोग

(Translation Art: Principles and Experiments)

सीमा कुमारी

अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग

अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग

(Translation Art: Principles and Experiments)

सीमा कुमारी

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5615-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

साहित्य, शिक्षण, अनुवाद आदि ये कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें लोग केवल सामाजिक और नैतिक कार्य समझने की भूल कर बैठते हैं या कहें एक चोला ओढ़ा देते हैं। आज के आधुनिक युग में हालांकि यह भ्रांति समाप्त होती जा रही है, क्योंकि बेहतरीन शिक्षक भी आज पैसे का महत्त्व जानता है और शिक्षण के पेशे को जब वो विशुद्ध व्यावसायिक रूप से करने लगता है तो अपने क्षेत्र में सफलता के एक ध्वज का वाहक-सा दिखता है। जिस शिक्षक को निजी विद्यालय के कर्ता-धर्ताओं की सात-आठ हजार रुपए तनख्वाह देते हुए जान निकलती है, जब वही शिक्षक एक कोचिंग संस्थान खोल कर कमाने लगता है तो उसकी वही आय चालीस पचास हजार को भी पार कर जाती है, जिससे उसके रहन-सहन का स्तर भी बढ़िया हो जाता है।

अनुवाद असाधारण रूप से कठिन और आहावाहनात्मक कार्य माना जाता है। यह एक जटिल, कृत्रिम, आवश्यकता-जनित, और एक दृष्टि से सर्जनात्मक प्रक्रिया है जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। यह इसकी अपनी प्रकृति है। परन्तु माना जाता है कि मौलिक लेखन न होने के कारण अनुवाद को सम्मान का स्थान नहीं मिलता है। क्योंकि इस बात की अवगणना होती है कि अनुवाद इसीलिए कठिन है कि वह मौलिक लेखन नहीं-पहले कही गई बात को ही दुबारा कहना होता है, जिसमें अनेक नियन्त्रणों और बन्धनों का पालन करना आवश्यक हो जाता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

—लेखिका

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. **अनुवाद का अर्थ, सिद्धांत एवं महत्त्व** **1**

अनुवाद का अर्थ एवं परिभाषा 3

व्यत्पत्तिमूलक अर्थ 4

समभाषिक अनुवाद 4

प्रवृत्तिमूलक अर्थ 9

परिभाषा के दृष्टिकोण 9

पृष्ठभूमि 13

सामयिक सन्दर्भ 13

विस्तार 15

अनुवाद के सिद्धान्त 16

सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व 24

2. **अनुवाद की प्रकृति एवं क्षेत्र** **27**

अनुवाद के प्रकार 27

साहित्य विधा पर आधारित प्रभेद 28

अनुवाद की प्रकृति 32

अनुवाद का वैज्ञानिक पक्ष 33

अनुवाद का कला पक्ष 34

अनुवाद का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य 48
विविध शास्त्रों का ज्ञान 55
3. अनुवाद का स्वरूप 57
4. कार्यालयीन हिन्दी अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग 68
अनुवाद की भाषा और स्वरूप 68
अनुवाद की समस्याएँ और समाधान 70
समाधान 71
5. हिन्दी साहित्य और अनुवाद 83
6. जनसंचार माध्यमों का अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग 86
पत्रकारिता में अनुवाद 86
पत्रकारिता और अनुवाद : परस्पर सम्बन्ध 90
जनसंचार माध्यमों में अनुवाद की प्रयोजनीयता 96
7. विज्ञापन में अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग 100
विज्ञापन और अनुवाद के सम्बन्ध 104
8. वाणिज्यिक अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग 105
9. वैज्ञानिक एक तकनीकी क्षेत्र में अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग 108
परिचय तथा इतिहास 109
शब्दावली निर्माण में आयोग की अधिकारिता 114
मूलभूत शब्दावलियाँ 117
तकनीकी शब्दावली कार्यशालाएँ 121
त्रैमासिक पत्रिकायें 124
10. प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में अनुवादः सिद्धांत एवं प्रयोग 136
अनुवाद के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान 136
मुहावरे 146
विदेशी ध्वनियाँ 160
हिन्दी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता 162
11. व्यावहारिक अनुवाद अभ्यास 169
अनुवाद अभ्यास 171
अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष 191
12. अनुवाद एवं भाषा विज्ञान 193
भाषा का अनुवाद और अनुवाद की भाषा 194

अनुवाद और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान 195

13. भारतीय साहित्य में अनुवाद 203

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता 207

भारतीय साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ 214

1

अनुवाद का अर्थ, सिद्धांत एवं महत्त्व

अनुवाद अर्थात किसी एक भाषा के विचार अथवा पाठ को दूसरी भाषा में व्यक्त करना। अनुवाद का काम एक आदमी को देखने में जितना आसान लगता है, उतना ही वो तब मुश्किल हो जाता है जब वो उसे खुद करने बैठता है।

हरेक स्नातक जो दो भाषाओं का ज्ञान रखता है, उसे ये गलतफहमी होती है वो अनुवाद कार्य भी आसानी से कर लेगा। लेकिन स्रोत भाषा को लक्ष्य भाषा में बदलने का ये खेल इतना आसान नहीं है। इसे खेल न कहकर एक कला कहा जाए तो कुछ गलत न होगा। जहां अच्छे अनुवादक के लिए अनुवाद कार्य एक खेल के समान होता है वहीं उसके पाठक के लिए उसकी खूबसूरती एक कला का रूप धारण कर लेती है। अजंता एलोरा की गुफाओं की मूर्तियों के रचनाकार को शायद अंदाजा भी न होगा कि उसे उसकी कला के जरिए अनंत काल तक याद किया जाता रहेगा। इसी तरह से बेहतरीन अनुवाद भी कुछ ऐसी ही अमिट छाप छोड़ता है।

साहित्य, शिक्षण, अनुवाद आदि ये कुछ कार्य ऐसे हैं जिसे लोग केवल सामाजिक और नैतिक कार्य समझने की भूल कर बैठते हैं या कहें एक चोला ओढ़ा देते हैं। आज के आधुनिक युग में हालांकि यह भ्रांति समाप्त होती जा रही है क्योंकि बेहतरीन शिक्षक भी आज पैसे का महत्व जानता है और शिक्षण के पेशे को जब

वो विशुद्ध व्यावसायिक रूप से करने लगता है तो अपने क्षेत्र में सफलता के एक ध्वज का वाहक सा दिखता है। जिस शिक्षक को निजी विद्यालय के कर्ता-धर्ताओं की सात-आठ हजार रुपए तनख्वाह देते हुए जान निकलती है, जब वही शिक्षक एक कोचिंग संस्थान खोल कर कमाने लगता है तो उसकी वही आय चालीस पचास हजार को भी पार कर जाती है, जिससे उसके रहन-सहन का स्तर भी बढ़िया हो जाता है।

अनुवाद क्षेत्र की भी एक यही खामी है कि कुछ श्रेष्ठ अनुवादक एक हीन ग्रंथि से घिरे रहते हैं। सरकारी दर यदि चालीस-पचास पैसे प्रति दर है तो वे ये समझने की भूल कर बैठते हैं कि इससे ज्यादा पैसे उन्हें देने की जहमत कोई नहीं उठाएगा। जबकि वहीं सफल अनुवादक अपनी दरों से समझौता किए बगैर अनुवाद क्षेत्र को एक विशुद्ध व्यवसायी की तरह तरक्की की राह दिखाते रहते हैं, नित नए प्रतिमान गढ़ते रहते हैं। जहां उनकी दरें सम्मानजनक होती हैं वहीं वो स्वयं को अनुवाद के सभी आधुनिक उपकरणों से लैस रखते हैं। चाहे वो ट्रैडोस हो, या मेमोक्यू, वर्डफास्ट हो या कोई और। कम समय में बेहतरीन काम करने की मंशा उन्हें अपनी और इस पेशे की तरक्की के कई बेहतरीन अवसर देती है, जिसे वे सफलतापूर्वक भुनाते हैं और बाकियों के लिए एक मिसाल कायम कर देते हैं।

अनुवाद भाषा के साथ जुड़ा व्यवसाय है। अपनी हिंदी भाषा के संदर्भ में कहूं, जब अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की बात आती है तो यह बेहद जटिल काम हो जाता है। पहला कारण यह है कि हर कोई जो हिंदी भाषा का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखता है, वो अनुवाद में मीन-मेख निकालने से नहीं चूकता। ये शायद हम भारतीयों की आदतों में शुमार है और दूसरों की गलतियां निकालने में हम माहिर उस्ताद हैं। ओह, लगता है जैसे भड़ास निकाल रहा हूं!

खैर, आधुनिक संदर्भ में तो मैं यही कहूंगा कि इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में उदारीकरण के दौर ने अनुवाद के व्यवसाय को भी नई मंजिलें दी हैं, नए विचार दिए हैं, अंतरराष्ट्रीय बाजार दिया है। ये बाजार ऐसा है जिसमें अनुवाद एक उत्पाद है और उसकी गुणवत्ता जितनी बेहतरीन होगी, उसकी मांग भी उतनी ही ज्यादा बनी रहेगी।

यदि अनुवादक के अनुवाद की गुणवत्ता अच्छी है, भाषा पर पकड़ बढ़िया है, तो उसे अपनी दरों को सदा ऊंचा रखना चाहिए क्योंकि गुणवत्तायुक्त उत्पाद बाजार से हमेशा अच्छी कीमत पाने का अधिकारी होता है। दीगर रहे कि अनुवादक चाहे नया हो या पुराना, उसे अपनी गुणवत्ता का ज्ञान हमेशा रहना चाहिए और यदि

उसे लगता है कि उसका काम इतना गुणवत्तापूर्ण है कि वह बाजार की मांगा और भूख को पूरा कर सकता है, तो उसे अपने काम की दरें अन्य सामान्य अनुवादकों से हमेशा ज्यादा ही रखनी चाहिए। एक कहावत है ना, 'महंगा रोए एक बार, सस्ता रोए बार-बार'। जिन्हें कामचलाऊ काम चाहिए, उन्हें सस्ती दरों वाले अनवुादकों की ओर जाने दें, लेकिन अगर आप बेहतरीन काम करते हैं तो ऐसे उपभोक्ता देखें जिन्हें बढ़िया काम की तलाश हो और उसके लिए वे वाजिब और अच्छे दाम देने में हील-हुज्जत न दिखाएं। अब फाइव-स्टार होटलों की ही बात करें, तो एक ग्राहक जो शायद एक सड़कछाप ढाबे पर ज्यादा पैसे की मांग पर आंखें तरेर सकता है, वहीं ग्राहक जब ऐसे फाइव-स्टार होटलों पर पहुंचता है तो वो न केवल ज्यादा पैसे देता है, बल्कि वेटर को टिप देने में भी ना-नुकुर नहीं करता। क्योंकि वहां इज्जत का सवाल होता है। अनुवाद के विदेशी उपभोक्ताओं में तो ये भावना फिर भी दिख जाती है, लेकिन अपने देशी उपभोक्ता यानी एजेंसियां अनुवादक को कम दरों पर काम करवाने में सफल होने पर यूं खुशी जाहिर करती हैं मानो कोई किला फतह कर लिया हो। यानी एक तो अनवुाद के बाजार को ठंडा करने की कोशिश, यानी चोरी और तिस पर सीना जोरी।

जैसा कि मैं पहले भी जिक्र कर चुका हूं कि कुछ अनुवादक न केवल अनुवाद के स्तर पर बल्कि पेशे के स्तर पर भी अनुवाद कार्य को भारतीय समाज में सम्मानजनक दर्जा दिलाने की भरपूर कोशिश में लगे हुए हैं। मेरे एक ऐसे ही मित्र हैं, जो स्वयं अनुवादक होने के साथ-साथ, एक प्रगतिशील विचारक भी हैं। वे फेसबुक के माध्यम से जहां प्रगतिशील विचारों को अपनी मित्र-मंडली और समूह तक पहुंचाते रहते हैं वहीं उन्होंने गूगल समूह का बढ़िया इस्तेमाल करते हुए अनुवाद क्षेत्र की हितैषी ऑनलाइन दुनिया को भी गढ़ा है। वे उस आभासी दुनिया को सार्थक रूप में देने में पूरे जी-जान से जुटे हुए हैं। उनकी ही सलाह थी कि हम अनुवादक कुछ ब्लॉग्स लिखें, जिसने मुझे ब्लॉग लिखने के लिए फिर से प्रोत्साहित किया था।

अनुवाद का अर्थ एवं परिभाषा

एक विशिष्ट प्रकार के भाषिक व्यापार के रूप में अनुवाद, भारतीय परम्परा की दृष्टि से, कोई नई बात नहीं। वस्तुतः 'अनुवाद' शब्द और उससे उपलक्षित भाषिक व्यापार भारतीय परम्परा में बहुत पहले से चले आए हैं। अतः 'अनुवाद' शब्द और इसके अंग्रेजी पर्याय 'ट्रांसलेशन' के व्युत्पत्तिमूलक और प्रवृत्तिमूलक

अर्थों की सहायता से अनुवाद की परिभाषा और उसके स्वरूप को श्रेष्ठतर रूप से जाना जा सकता है।

व्यत्पत्तिमूलक अर्थ

'अनुवाद' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है – पुनः कथनय एक बार कही हुई बात को दोबारा कहना। इसमें 'अर्थं' की पुनरावृत्ति होती है, शब्द (शब्द रूप) की नहीं। 'ट्रांसलेशन' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'पारवहन' अर्थात् एक स्थान–बिन्दु से दूसरे स्थान–बिन्दु पर ले जाना। यह स्थान–बिन्दु भाषिक पाठ है। इसमें भी ले जाई जाने वाली वस्तु अर्थ होता है, शब्द नहीं। उपर्युक्त दोनों शब्दों में अन्तर व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की दृष्टि से है, अतः सतही है। वास्तविक व्यवहार में दोनों की समानता स्पष्ट है। अर्थ की पुनरावृत्ति को ही दूसरे शब्दों में और प्रकारान्तर से, अर्थ का भाषान्तरण कहा जाता है, जिसमें कई बार मूल भाषा की रूपात्मक–गठनात्मक विशेषताएँ लक्ष्यभाषा में संक्रान्त हो जाती है।

वस्तुतः 'अनुवाद' शब्द का भारतीय परम्परा वाला अर्थ आधुनिक सन्दर्भ में भी मान्य है और इसी को केन्द्र बिन्दु बनाकर अनुवाद की प्रकृति को अंशतः समझा जाता है। तदनुसार, अनुवाद कार्य के तीन सन्दर्भ हैं – समभाषिक, अन्यभाषिक और अन्तरसंकेतपरक।

समभाषिक अनुवाद

समभाषिक सन्दर्भ में अर्थ की पुनरावृत्ति एक ही भाषा की सीमा के अन्तर्गत होती है, परन्तु इसके आयाम भिन्न–भिन्न हो जाते हैं। मुख्य आयाम दो हैं –कालक्रमिक और समकालिक। कालक्रमिक आयाम पर समभाषिक अनुवाद एक ही भाषा के ऐतिहासिक विकास की दो निकटस्थ अवस्थाओं में होता है, जैसे, पुरानी हिन्दी से आधुनिक हिन्दी में अनुवाद। समकालिक आयाम पर समभाषिक अनुवाद मुख्य रूप से तीन स्तरों पर होता है – बोली, शैली और माध्यम।

बोली स्तर पर समभाषिक अनुवाद के चार उपस्तर हो सकते हैं–

(क) एक भौगोलिक बोली से दूसरी भौगोलिक बोली में, जैसे ब्रज से अवधी में।

(ख) अमानक बोली से मानक बोली में, जैसे गंजाम ओड़िया से पुरी की ओड़िया में अथवा नागपुर मराठी से पुणे मराठी में।

(ग) बोली रूप से भाषा रूप में, जैसे ब्रज या अवधी से हिन्दी में

(घ) एक सामाजिक बोली से दूसरी सामाजिक बोली में, जैसे अशिक्षितों या अल्पशिक्षितों की भाषा से शिक्षितों की भाषा में या एक धर्म में दीक्षित लोगों की भाषा से अन्य धर्म में दीक्षित लोगों की भाषा में।

शैली स्तर पर समभाषिक अनुवाद को शैली-विकल्पन के रूप में भी देखा जा सकता है। इसका एक अच्छा उदाहरण है औपचारिक शैली से अनौपचारिक शैली में अनुवाद जैसे 'धूम्रपान वर्जित है' (औपचारिक शैली) 'बीड़ी सिगरेट पीना मना है' (अनौपचारिक शैली)। इसी प्रकार 'ट्यूबीय वायु आधान में सममिति नहीं रह गई। है' (तकनीकी शैली) -'टायर की हवा निकल गई है' (गैरतकनीकी शैली)।

माध्यम की दृष्टि से समभाषिक अनुवाद की स्थिति वहाँ होती है जहाँ मौखिक माध्यम में प्रस्तुत सन्देश की लिखित माध्यम में या इसके विपरीत पुनरावृत्ति की जाए जैसे, मौखिक माध्यम का एक वाक्य है—'समय की सीमा के कारण मैं अपने श्रोताओं को अधिक विस्तार से इस विषय में नहीं बता पाऊँगा।' इसी को लिखित माध्यम में इस प्रकार से कहना सम्भवतः उचित माना जाता है—'स्थान की सीमा के कारण मैं अपने पाठकों को अधिक विस्तार से इस विषय का स्पष्टीकरण नहीं कर सकूंगा।' ('समय'/'स्थान', 'श्रोता'/ 'पाठक', 'विषय में बता पाना' - 'का स्पष्टीकरण कर सकना')।

समभाषिक अनुवाद के उपर्युक्त उदाहरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं।

(क) अर्थान्तरण या अर्थ की पुनरावृत्ति की प्रक्रिया में शब्दचयन तथा वाक्य-विन्यास दोनों प्रभावित होते हैं। माध्यम अनुवाद में स्वनप्रक्रिया की विशेषताएँ (बलाघात, अनुतान आदि) लिखित व्यवस्था की विशेषताओं (विराम-चिह्न आदि) का रूप ले लेती हैं या इसके विपरीत होता है।

(ख) बोली, शैली, और माध्यम के आयामों के मध्य कठोर विभाजन रेखा नहीं, अपितु इनमें आंशिक अतिव्याप्ति पाई जाती है, जिसकी सम्भावना भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति में ही निहित है। जैसे, शैलीगत अनुवाद की आंशिक सत्ता माध्यम अनुवाद में दिखाई देती है, और तदनुसार 'के विषय में बता पाना' जैसा मौखिक माध्यम का, अतएव अनौपचारिक, चयन, लिखित माध्यम में औपचारिकता का

> स्पर्श लेता हुआ 'का स्पष्टीकरण कर सकना' हो जाता है। इसी प्रकार शैलीगत अनुवाद में समाजिक बोलीगत अनुवाद भी कभी-कभी समाविष्ट हो जाता है। जैसे, शिक्षितों की बोली में, औपचारिक शैली की प्रधानता की प्रवृत्ति हो सकती है और अल्पशिक्षितों या अशिक्षितों की बोली में अनौपचारिक शैली की।

समभाषिक अनुवाद की समस्याएँ न केवल रोचक हैं अपितु अन्यभाषिक अनुवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी हैं। अनुवाद को भाषाप्रयोग की एक विधा के रूप में देखने पर समभाषिक अनुवाद का महत्त्व और भी स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यभाषिक अनुवाद की प्रकृति को समझने की दृष्टि से समभाषिक अनुवाद की प्रकृति को समझना न केवल सहायक है, अपितु आवश्यक भी है। ये कहा जा सकता है कि अनुवाद व्युत्पन्न भाषाप्रयोग है, जिसके दो सन्दर्भ हैं - समभाषिक और अन्यभाषिक। इस सन्दर्भ भेद से अनुवाद व्यवहार में अन्तर आ जाता है, परन्तु दोनों ही स्थितियों में अनुवाद की प्रकृति वही रहती है।

अन्यभाषिक अनुवाद

अन्यभाषिक अनुवाद दो भाषाओं के बीच में होता है। ये दो भाषाएँ ऐतिहासिकता और क्षेत्रीयता के समन्वित मानदण्ड पर स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में पहचानी जाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से एक ही धारा में आने वाली भाषाओं को सामान्यत: उस स्थिति में स्वतन्त्र भाषा के रूप में देखते हैं यदि वह कालक्रम में एक- दूसरे के निकट सन्निहित न हों, जैसे संस्कृत और हिन्दी इन दोनों के मध्य प्राकृत भाषाएँ आ जाती हैं। इसी प्रकार क्षेत्रीयता की दृष्टि से प्रतिवेशी भाषाओं में अत्यधिक आदान-प्रदान होने पर भी उन्हें भिन्न भाषाएँ ही मानना होगा, जैसे हिन्दी और पंजाबी। अन्यभाषिक अनुवाद के सन्दर्भ में सम्बन्धित भाषाओं का स्वतन्त्र अस्तित्त्व महत्त्व की बात होती है। समभाषिक अनुवाद की तुलना में अन्यभाषिक अनुवाद सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। भाषाप्रयोग की दृष्टि से अन्यभाषिक अनुवाद की समस्याओं में समभाषिक अनुवाद की समस्याओं से गुणात्मक अन्तर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार समभाषिक अनुवाद से सम्बन्धित होते हुए भी अन्यभाषिक अनुवाद, अपेक्षाकृत स्वनिष्ठ व्यापार है।

अन्तरसंकेतपरक अनुवाद

अनुवाद शब्द के उपर्युक्त दोनों सन्दर्भ अपेक्षाकृत सीमित हैं। इनमें अनुवाद को भाषा-संकेतों का व्यापार माना गया है। वस्तुतः भाषा-संकेत, संकेतों की एक विशिष्ट श्रेणी है, जिनके द्वारा सम्प्रेषण कार्य सम्पन्न होता है। सम्प्रेषण के लिए विभिन्न कोटियों के संकेतों को काम में लिया जाता है। इन्हें सामान्य संकेत कहा जाता है। इस दृष्टि से भी अनुवाद शब्द की परिभाषा की जाती है। इसके अनुसार एक संकेतों द्वारा कही गई बात को दूसरी कोटि के संकेतों द्वारा पुनः कहना इस प्रकार के अनुवाद को अन्तरसंकेतपरक अनुवाद कहा जाता है। यह सामान्य संकेत विज्ञान के अन्तर्गत है। भाषिक संकेतों को प्रवर्तन बिन्दु मानकर संकेतों को भाषिक और भाषेतर में विभक्त किया जाता है। भाषेतर में दो भाग हैं - बाह्य (बाह्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य) और आन्तरिक (अन्तरिन्द्रिय द्वारा ग्राह्य)।

अनुवाद की दृष्टि से संकेत-परिवर्तन के व्यापार की निम्नलिखित कोटियाँ बन सकती हैं-

1. बाह्य संकेत का बाह्य संकेत में अनुवाद - इसके अनुसार किसी देश का मानचित्र उस देश का अनुवाद है, किसी प्राणी का चित्र उस प्राणी का अनुवाद है।

2. बाह्य संकेत का भाषिक संकेत में अनुवाद - इसके अनुसार किसी प्राणी के लिये किसी भाषा में प्रयुक्त कोई शब्द उस प्राणी का अनुवाद है। इस दृष्टि से वस्तुतः यहां भाषा दर्शन की समस्या है जिसकी व्याख्या अर्थ के संकेत सिद्धान्त में की गई है।

3. आन्तरिक संकेत से आन्तरिक संकेत में अनुवाद - इसके अनुसार किसी एक घटना को उसकी समशील संवेदना में परिवर्तित करना इस श्रेणी का अनुवाद है। स्पष्ट है कि इस स्थिति की वास्तविक सत्ता नहीं हो सकती। अतः केवल सैद्धान्तिकता की दृष्टि से ही यह कोटि निर्धारित की जाती है।

4. आन्तरिक संकेत से भाषिक संकेत में अनुवाद - इसके अनुसार किसी आन्तरिक संवेदना के लिए किसी शब्द का प्रयोग करना इस कोटि का अनुवाद है। इसको अधिक स्पष्टता से कहा जाता है कि, किसी भौतिक स्थिति के साथ सम्पर्क होने पर - जैसे, किसी दुर्घटना को देखकर, प्रकृति के किसी दृश्य को देखकर, किसी वस्तु को हाथ लगाकर, कुछ सँघकर, दूसरे शब्दों में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होने पर - मन में जिस संवेदना का उदय होता है वह एक प्रकार का संकेत है। उसके लिये भाषा के किसी शब्द का प्रयोग करना या

भाषिक संकेत द्वारा उसकी पुनरावृत्ति करना इस कोटि का अनुवाद कहलाएगा। उदाहरण के लिए, एक विशिष्ट प्रकार की वेदना का संकेत करने के लिए हिन्दी में 'शोक' शब्द का प्रयोग किया जाता है और दूसरी के लिए 'प्रेम' का। समझा जाता है कि एक संवेदना का अनुवाद 'शोक' शब्द द्वारा किया जाता है और दूसरी का 'प्रेम' द्वारा। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि समस्त मौलिक अभिव्यक्ति अनुवाद है। वक्ता या लेखक अपने संवेदना रूपी संकेतों की भाषिक संकेतों में पुनरावृत्ति कर देता है। इस दृष्टि से यह भाषा मनोविज्ञान की समस्या है, जिसकी व्याख्या उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त में की गई है।

इस प्रकार, अनुवाद शब्द की व्यापक परिधि में तीनों सन्दर्भों के अनुवादों का स्थान है –समभाषिक अनुवाद, अन्यभाषिक अनुवाद, और अन्तरसंकेतपरक अनुवाद। तीनों का अपना-अपना सैद्धान्तिक आधार है। इन तीनों के मध्य का भेद जानना महत्त्वपूर्ण है। अनुवादक को यह स्थिर करना है कि इन तीनों में केन्द्रीय स्थिति किसकी है तथा शेष दो का उनके साथ कैसा सम्बन्ध है।

सैद्धान्तिक औचित्य की दृष्टि से अन्यभाषिक अनुवाद की स्थिति केन्द्रीय है। केवल 'अनुवाद' शब्द (विशेषणरहित पद) से अन्यभाषिक अनुवाद का अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसका मूल है द्विभाषाबद्धता। अनुवादक का बोधन तथा अभिव्यक्ति दोनों स्थितियों में ही भाषा से बँधे रहते हैं और ये भाषाएँ भी भेद (काल, स्थान या प्रयोग सन्दर्भ पर आधारित भेद) की दृष्टि से नहीं, अपितु कोड की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होती हैं, जैसे हिन्दी और अंग्रेजी, हिन्दी और सिन्धी आदि।

इस केन्द्रीय स्थिति के दो छोर हैं। प्रथम छोर पर दोनों स्थितियों में भाषाबद्धता रहती है, परन्तु भाषा वही रहती है। स्थितियों को अन्तर उसी भाषा के भेदों के अन्तर पर आधारित होता है। यह समभाषिक अनुवाद है। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की स्पष्टता के लिए इसे 'अन्वयान्तर' या 'शब्दान्तरण' कहा जाता है। दूसरे छोर पर भाषेतर संकेत का भाषिक संकेत में परिवर्तन होता है। संकेत पद्धति का यह परिवर्तन भाषा प्रयोग की सामान्य स्थिति को जन्म देता है। पारिभाषिक शब्दावली में इसे 'भाषा व्यवहार' कहा जाता है। इन तीनों (समभाषिक अनुवाद, अन्यभाषिक अनुवाद, और अन्तरसंकेतपरक अनुवाद) में सम्बन्ध तथा अन्तर दोनों हैं। यह सम्बन्ध उभयनिष्ठ है।

अनुवाद (अन्यभाषिक अनुवाद) की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वास्तविक अनुवाद कार्य में तथा अनूदित पाठ के मूल्यांकन में अनुवादकों को

समभाषिक अनुवाद तथा अन्तरसंकेतपरक अनुवाद की संकल्पनाओं से सहायता मिलती है। यह आवश्यकता तभी मुखर रूप से सामने आती है, जब अनुवाद करते-करते अनुवादक कभी अटक जाते हैं -मूल पाठ का सम्यक् बोधन नहीं हो पाता, लक्ष्यभाषा में शुद्ध और उपयुक्त अनुवाद का पर्याप्ततया अन्वेषण करने में कठिनाई होती है, अनुवादक को यह जाँचना होता है कि अनुवाद कितना सफल है, इत्यादि।

प्रवृत्तिमूलक अर्थ

प्रवृत्तिमूलक में (व्यवहार में) 'अनुवाद' शब्द से अन्यभाषिक अनुवाद का ही अर्थ लिया जाता है। और इसी कारण शनैः शनैः यह बात सिद्धान्त का भी अंग बन गई है कि अनुवाद दो भाषाओं के मध्य होने वाली प्रक्रिया है। इस स्थिति के स्वीकार किया जाता है। संस्कृत परम्परा का 'छाया' शब्द इसी स्थिति का संकेत करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

परिभाषा के दृष्टिकोण

अनुवाद के स्वरूप को समझने के लिए अनुवाद की परिभाषा विशेष रूप से सहायक है। अनुवाद की बहुपक्षीयता को देखते हुए अनुवाद की परिभाषा विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत की गई है। मुख्य दृष्टिकोण तीन प्रकार के हैं - (1) अनुवाद एक प्रक्रिया है। (2) अनुवाद एक प्रक्रिया अथवाध्और उसका परिणाम है। (3) अनुवाद एक सम्बन्ध का नाम है।

(1) अनुवाद एक प्रक्रिया है

इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत निम्नलिखित परिभाषाएँ उद्धृत की जाती हैं–

(क) 'मूलभाषा के सन्देश के सममूल्य सन्देश को लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। सन्देशों की यह मूल्यसमता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से, तथा निकटतम एवं स्वाभाविक होती है।' (नाइडा तथा टेबर)

(ख) 'अनुवाद वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सार्थक अनुभव (अर्थपूर्ण सन्देश या देश का अर्थ) एक भाषा-समुदाय से दूसरे भाषा-समुदाय को सम्प्रेषित किया जाता है।' (पट्टनायक)

(ग) 'एक भाषा की पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्यसामग्री द्वारा प्रस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।' (कैटफोर्ड)

(घ) 'अनुवाद एक शिल्प है जिसमें एक भाषा में लिखित सन्देश के स्थान पर दूसरी भाषा के उसी सन्देश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।' (न्यूमार्क)

(2) अनुवाद एक प्रक्रिया या उसका परिणाम है।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित परिभाषा को उद्धृत किया जाता है–

(क) 'एक भाषा या भाषाभेद से दूसरी भाषा या भाषाभेद में प्रतिपाद्य को स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया या उसके परिणाम को अनुवाद कहते हैं।' (हार्टमन तथा स्टार्क)।

(3) अनुवाद एक सम्बन्ध का नाम है

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित परिभाषा आती है–

(क) 'अनुवाद एक सम्बन्ध है, जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है, ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य सम्पादित करते हैं (दोनों पाठों का सन्दर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला सन्देश भी समान होता है)।' (हैलिडे)

अनुवाद की परिभाषाओं का यह वर्गीकरण जहाँ अनुवाद की प्रकृति की बहुपक्षीयता को स्पष्ट करता है, वहाँ इससे यह संकेत भी मिलता है कि, विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार अनुवाद की परिभाषाएँ भी भिन्न-भन्न हो सकती हैं। इस प्रकार ये सभी परिभाषाएँ मान्य हैं। इन परिभाषाओं के आधार पर अनुवाद के दो पक्ष माने जाते हैं।

अनुवाद के पक्ष

अनुवाद के दो पक्ष हैं - पहला संक्रियात्मक पक्ष अतएव गतिशील और दूसरा सैद्धान्तिक पक्ष अतएव स्थितिशील।

(i) संक्रियात्मक पक्ष

संक्रियात्मक दृष्टि से अनुवाद एक प्रक्रिया है। अनुवाद के पक्ष का सम्बन्ध अनुवाद करने के कार्य से है जिसके लिए 'अनुवाद कार्य' शब्द का प्रयोग करना उचित माना जाता है।

(ii) सैद्धान्तिक पक्ष

सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुवाद एक सम्बन्ध है, जो दो या दो से अधिक, परन्तु विभिन्न भाषाओं के पाठों के मध्य होता है, परन्तु वे समानार्थक होने चाहिये।

इस सम्बन्ध का उद्घाटन तुलनात्मक पद्धति के अध्ययन से किया जाता है। इन दोनों का समन्वित रूप इस धारणा में मिलता है कि अनुवाद एक निष्पत्ति है – कार्य का परिणाम अनुवाद है – जो अपने मूल पाठ से पर्यायता के सम्बन्ध से जुड़ा है। निष्पत्ति के रूप में अनुवाद को 'अनूदित पाठ' कहा जाता है। इस दृष्टि से एक मूल पाठ के अनेक अनुवाद हो सकते हैं। इस प्रकार संक्रियात्मक दृष्टि से अनुवाद को जहाँ भाषा प्रयोग की एक विधा के रूप में जाना जाता है, वहाँ सैद्धान्तिक दृष्टि से इसका सम्बन्ध भाषा पाठ तुलना तथा व्यतिरेकी विश्लेषण की तकनीकों पर आधारित भाषा सम्बन्धों के प्रश्न से (तुलनात्मक–व्यतिरेकी पाठ भाषाविज्ञान यही है) जोड़ा जाता है।

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की शाखा कहा गया है। वस्तुतः, अपने इस रूप में यह अपने प्रक्रिया रूप तथा सम्बन्ध रूप परिभाषाओं की योजक कड़ी है, जिसका संक्रियात्मक आधार अनूदित पाठ है, जिसके मूल में 'अनुवाद एक निष्पत्ति है' की धारणा निहित है। इन परिभाषाओं से अनुवाद के विषय में जो अन्य जानकारी मिलती है, वे बन्दुवार निम्न प्रकार से हैं –

(1) अनुवाद एक भाषा या भाषा भेद से दूसरी भाषा या भाषा भेद में होता है।

(2) यह प्रक्रिया, परिवर्तन, स्थानान्तरण, प्रतिस्थापन, या पुनरावृत्ति की प्रकृति की होती है।

(3) स्थानान्तरित होने वाली वस्तु को विभिन्न नामों से इदिंगत कर सकते हैं, जैसे पाठ्यसामग्री, सार्थक अनुभव, सूचना, सन्देश। ये विभिन्न नाम अनुवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के विभिन्न आयामों तथा अनुवाद कार्य के उद्देश्यों में अन्तर से जुड़े हैं। जैसे, भाषागत 'पाठ्यसामग्री' नाम से व्यक्त होने वाली सुनिश्चितता अनुवाद के भाषावैज्ञानिक आधार की विशेषता है, जिसका विशेष उपयोग मशीन अनुवाद में होता है। 'सूचना' और 'सार्थक अनुभव' अनुवाद के समाजभाषागत आधार का संकेत करते हैं, और 'सन्देश' से अनुवाद की पाठसंकेतपरक पृष्ठभूमि उपलक्षित होती है।

(4) उपर्युक्त की विशेषता यह होती है कि इसका दोनों भाषाओं में समान अर्थ होता है। यह अर्थ की समानता व्यापक दृष्टि से होती है और भाषिक अर्थ से लेकर सन्दर्भमूलक अर्थ तक व्याप्त रहती है।

संक्षेप में, एक भाषा के विशिष्ट भाषाभेद के विशिष्ट पाठ को दूसरी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करना अनुवाद है, जिसमें वह मूल के भाषिक अर्थ, प्रयोग के वैशिष्ट्य से निष्पन्न अर्थ, प्रयुक्ति और शैली की विशेषता, विषयवस्तु, तथा सम्बद्ध सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को यथासम्भव संरक्षित रखते हुए दूसरी भाषा के पाठक को स्वाभाविक रूप से ग्राह्य प्रतीत हो।

इतिहास

अनुवाद असाधारण रूप से कठिन और आहावाहनात्मक कार्य माना जाता है। यह एक जटिल, कृत्रिम, आवश्यकता-जनित, और एक दृष्टि से सर्जनात्मक प्रक्रिया है जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। यह इसकी अपनी प्रकृति है। परन्तु माना जाता है कि मौलिक लेखन न होने के कारण अनुवाद को सम्मान का स्थान नहीं मिलता है। क्योंकि इस बात की अवगणना होती है कि अनुवाद इसीलिए कठिन है कि वह मौलिक लेखन नहीं-पहले कही गई बात को ही दुबारा कहना होता है, जिसमें अनेक नियन्त्रणों और बन्धनों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अमौलिक होने के कारण अनुवाद का महत्त्व तो कम हो गया, परन्तु इसी कारण इसके लिए अपेक्षित नियन्त्रणों और बन्धनों को महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया। इस सम्बन्ध में सृजनशील लेखकों के विचारों की प्रायः चर्चा होती रही है। कुछ विचार इस प्रकार हैं-

(क) सम्पूर्ण अनुवाद कार्य केवल एक असमाधेय समस्या का समाधान खोजने के लिए किया गया प्रयास मात्र है। (हुम्बोल्त)

(ख) किसी कृति का अनुवाद उसके दोषों को बढ़ा देता है और उसके गुणों को विद्रूप कर देता है। (वाल्टेयर)

(ग) कला की एक विधा के रूप में अनुवाद कभी सफल नहीं हो सकते। (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी)

(घ) अनुवादक वंचक होते हैं। (एक इतालवी कहावत)

ऐसे विचारों के उद्‌भव के पीछे तत्कालीन परिस्थितियाँ तथा उनसे प्रेरित धारणाएँ मानी जाती हैं। पहले अनुवाद सामग्री का बहुलांश साहित्यिक रचनाएँ होती थीं, जिनका अनुवाद रचनाओं की साहित्यिक प्रकृति की सीमाओं के कारण पाठक की आशा के अनुरूप नहीं हो पाता था। साथ ही यह भी धारणा थी कि रचना की भाषा के प्रत्येक अंश का अनुवाद अपेक्षित है, जिससे मूल संवेदना का

कोई अंश छट न पाए, और क्योंकि यह सम्भव नहीं, अतः अनुवाद को प्रवंचना की कोटि में रख दिया गया था।

पृष्ठभूमि

यह स्थिति स्थूल रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक रही जिसमें अनुवाद मुख्य रूप से व्यक्तिगत रुचि से प्रेरित अधिक था, सामाजिक आवश्यकता से प्रेरित कम। इसके अतिरिक्त मौलिक लेखन की परिमाणगत प्रचुरता के कारण भी इस प्रकार की राय बनी। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्राज्यवाद के खण्डित होने के फलस्वरूप अनेक छोटे-बड़े राष्ट्र स्वतन्त्र हुए तथा उनकी अस्मिता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो गया। संघीय गणराज्यों के घटक भी अपनी अस्मिता के विषय में सचेत होने लगे। इस सम्पर्क-स्थापना तथा अस्मिता-विकास की स्थिति में भाषा का केन्द्रीय स्थान है, जो बहुभाषिकता की स्थिति के रूप में दिखाई पड़ता है। इसमें अनुवाद की सत्ता अवश्यम्भावी है। इसके फलस्वरूप अनुवाद प्रधान रूप से एक सामाजिक आवश्यकता बन गया है। विविध प्रकार के लेखनों के अनुवाद होने लगे। अनुवाद कार्य एक व्यवसाय हो गया। अनुवादकों को प्रशिक्षित करने के अभिकरण स्थापित हो गए, जिनमें अल्पकालीन और पूर्णसत्रीय पाठ्यक्रमों और कार्यशालाओं आदि का आयोजन किया जाने लगा। इसका यह भी परिणाम हुआ कि एक ओर तो अनुवाद के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदला तथा दूसरी ओर ज्ञानात्मक दृष्टि से अनुवाद सिद्धान्त के विकास को विशेष बल मिला तथा अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए अनुवाद सिद्धान्त की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। फलस्वरूप, अनुवाद सिद्धान्त एक अपेक्षाकृत स्वतन्त्र ज्ञानशाखा बन गया, जिसकी जानकारी अनुवादक, अनुवाद शिक्षक, और अनुवाद समीक्षक, तीनों के लिए उपादेय हुआ।

सामयिक सन्दर्भ

अनुवाद के विषय में सैद्धान्तिक चर्चा का सूत्रपात आधुनिक युग में ही हुआ, ऐसा समझना तथ्य और तर्क दोनों के ही विपरीत माना जाने लगा। अनुवाद कार्य की लम्बी परम्परा को देखते हुए यह मानना तर्कसंगत बन गया कि अनुवाद कार्य के विषय में सैद्धान्तिक चर्चा की परम्परा भी पुरानी है। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में सिसरो के लेखन में अनुवाद चिन्तन के बीज प्राप्त होते हैं और तत्पश्चात् भी इस विषय पर विद्वान् अपने विचार प्रकट करते रहे हैं। इस चिन्तन

की पृष्ठभूमि भी अवश्य रही है, यद्यपि उसे स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं किया गया। यह अवश्य माना गया कि जिस प्रकार अनुवाद कार्य का संगठित रूप में होना आधुनिक युग की देन है, उसी प्रकार अनुवाद सिद्धान्त की अपेक्षाकृत सुपरिभाषित पृष्ठभूमि का विकसित होना भी आधुनिक युग की देन है।

अनुवाद सिद्धान्त के आधुनिक सन्दर्भ की मूल विशेषता है इसकी बहुपक्षीयता। यह किसी एकान्वित पृष्ठभूमि पर आधारित न होकर अनेक परन्तु परस्पर सम्बद्ध शास्त्रों की समन्वित पृष्ठभूमि पर आधारित है, जिनके प्रसंगोचित अंशों से वह पृष्ठभूमि निर्मित है। मुख्य शास्त्र हैं – पाठ संकेत विज्ञान, सम्प्रेषण सिद्धान्त, भाषा प्रयोग सिद्धान्त, और तुलनात्मक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान। यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि एक ओर मानव अनुवाद तथा यान्त्रिक अनुवाद, तथा दूसरी ओर लिखित अनुवाद और मौखिक अनुवाद के व्यावहारिक महत्त्व के कारण इनके सैद्धान्तिक पक्ष के विषय में भी चिन्तन आरम्भ होने लगा है। तथापि मानवकृत लिखित माध्यम के अनुवाद की ही परिमाणगत तथा गुणात्मक प्रधानता मानी जाती रही है तथा इनसे सम्बन्धित सैद्धान्तिक चिन्तन के मुद्दे विशेष रूप से प्रासंडिगक हैं।

यद्यपि प्राचीन भारतीय परम्परा में अनुवाद चिन्तन की परम्परा उतने व्यवस्थित तथा लेखबद्ध रूप में प्राप्त नहीं होती, जिस प्रकार पश्चिम में, तथापि अनुवाद चिन्तन के बीज अवश्य उपलब्ध हैं। तदनुसार, अनुवाद पुनरुक्ति है – एक भाषा में व्यंजित सन्देश को दूसरी भाषा में पुनः कहना। अनुवाद के प्रति यह दृष्टि पश्चिमी परम्परा में स्वीकृत धारणा से बाह्य स्तर पर ही भिन्न प्रतीत होती है। परन्तु इस दृष्टि को अपनाने से अनुवाद सम्बन्धी अनेक सैद्धान्तिक बिन्दुओं की अधिक विशद तथा संगत व्याख्या की गई है। इसी सम्बन्ध में दूसरी दृष्टि द्वन्द्वात्मकता की है। जो आधुनिक है तथा मुख्य रूप से संरचनावाद की देन है।

अनुवाद कार्य की परम्परा को देखने से यह स्पष्ट है कि अनुवाद सिद्धान्त सम्बन्धी चिन्तन साहित्यिक कृतियों को लेकर ही अधिक हुआ है। यह स्थिति संगत भी है। विगत युग में साहित्यिक कृतियों को ही अनुवाद के लिए चुना जाता था। अब भी साहित्यिक कृतियों के ही अनुवाद अधिक परिमाण में होते हैं। तथापि, परिस्थितियों के अनुरोध से अब साहित्येतर लेखन का अनुवाद भी अधिक मात्रा में होने लगा है। विशेष बात यह है कि दोनों कोटियों के लेखनों में एक मूलभूत अन्तर है। जिसे लेखक की व्यक्तिनिष्ठता तथा निर्वैयक्तिकता की शब्दावली में अधिक स्पष्ट रीति से प्रकट कर सकते हैं। व्यक्तिनिष्ठ लेखन का,

अपनी प्रकृति की विशेषता से, कुछ अपना ही सन्दर्भ है। यह कहकर हम दोनों की उभयनिष्ठ पृष्ठभूमि का निषेध नहीं कर रहे, परन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में हम दोनों की दूरी और आपेक्षिक स्वायत्तता को विशेष रूप से उभारना चाहते हैं। यह उचित ही है कि भाषाप्रयोग के पक्ष से निर्वैयक्तिक लेखन ने अनुवाद के सैद्धान्तिक सन्दर्भ को भी विशेष रूप से उभारा जाए।

विस्तार

अनुवाद सिद्धान्त का एक विकासमान आयाम है अनुसन्धान की प्रवृत्ति। अनुवाद सिद्धान्त की बहुविद्यापरक प्रकृति के कारण विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ–भाषाविज्ञानी, समाजशास्त्री, मनोविज्ञानी, शिक्षाविद्, नृतत्त्वविज्ञानी, सूचना सिद्धान्त विशेषज्ञ–परस्पर सहयोग के साथ अनुवाद के सैद्धान्तिक अंशो पर शोधकार्य में रुचि लेने लगे। अनुवाद कार्य का क्षेत्र बढ़ता गया। अलग–अलग संस्कृतियों के लोगों में सम्पर्क बढ़ा – लोग विदेशों में शिक्षा के लिए जाते, व्यापारिक–औद्योगिक संगठन विभिन्न देशों में काम करते, विभिन्न भाषा भाषी लोग सम्मेलनों में एक साथ बैठकर विमर्श करते, राष्ट्रों के मध्य राजनयिक अनुबन्ध होने लगे। इन सभी में अनुवाद की अनिवार्य रूप से आवश्यकता प्रतीत हुई और अनुवाद की विशिष्ट समस्याएँ उभरने लगीं। इन समस्याओं का अध्ययन अनुवाद सम्बन्धी अनुसन्धान का उर्वर क्षेत्र बना। एक ओर भाषा और संस्कृति तथा दूसरी ओर भाषा और विचार के मध्य सम्बन्ध पर अनुवाद द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर नया चिन्तन सामने आया।

मशीन अनुवाद तथा मौखिक अनुवाद के क्षेत्रों में नई–नई सम्भावनाएँ सामने आने लगीं, जिसने इन क्षेत्रों में अनुवाद अनुसन्धान को गति प्रदान की। मानव अनुवाद तथा लिखित अनुवाद के परम्परागत क्षेत्रों पर भी भाषा अध्ययन की नई दृष्टियों ने विशेषज्ञों को नूतन पद्धति से विचार करने के लिए प्रेरित किया। इन सब प्रवृत्तियों से अनुवाद सिद्धान्त को प्रतिष्ठा का पद मिलने लगा और इसे सैद्धान्तिक शोध के एक उपयुक्त क्षेत्र के रूप में स्वीकृति प्राप्त होने लगी।

अनुवाद दशा में पहला सार्थक प्रयास एच. एच. विल्सन ने 1855 में 'ग्लोरी ऑफ ज्यूडिशियल एंड रेवेन्यू टर्म्स' के द्वारा किया। सन् 1961 में राजभाषा विधायी आयोग की स्थापना हुई। इसका काम अखिल भारतीय मानक विधि शब्दावली तैयार करना था। 1970 में विधि शब्दावली का प्रकाशन हुआ। इसका परिवर्धन होता आ रहा हे। इसका नवीन संस्करण 1984 में निकला। इस

आयोग ने कानून संबंधी अनेक ग्रंथो का अनुवाद किया हे। कई न्यायालयों में न्यायाधीश हिंदी में भी निर्णय देने लगे हैं)।

अनुवाद के सिद्धान्त

अनुवाद सिद्धान्त कोई अपने में स्वतन्त्र, स्वनिष्ठ, सिद्धान्त नहीं है और न ही यह उस अर्थ में कोई 'विज्ञान' ही है, जिस अर्थ में गणितशास्त्र, भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र आदि हैं। इसकी ऐसी कोई विशिष्ट अध्ययन सामग्री तथा अध्ययन प्रणाली भी नहीं, जो अन्य शास्त्रों की अध्ययन सामग्री तथा प्रणाली से इस रूप में भिन्न हो कि, इसका मूलतः स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व बन सके। वस्तुतः, यह अनुवाद के विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित ज्ञानात्मक सूचनाओं का एक निकाय है, जिससे अनुवाद को एक प्रक्रिया (अनुवाद कार्य), एक निष्पत्ति (अनुदित पाठ), तथा एक सम्बन्ध (सममूल्यता) के रूप में समझने में सहायता मिलती है। इसके लिए सद्यः 'अनुवाद विद्या (ट्रांसलेशन स्टडीज), 'अनुवाद विज्ञान' (साइंस ऑफ ट्रांसलेशन), और 'अनुवादिकी' (ट्रांसलेटालजी) शब्द भी प्रचलित हैं।

अनुवाद, भाषाप्रयोग सम्बन्धी एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसकी एक सुनिश्चित परिणति होती है तथा जिसके फलस्वरूप मूल एवं निष्पत्ति में 'मूल्य' की दृष्टि से समानता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्रक्रिया, निष्पत्ति, और सम्बन्ध की संघटित इकाई के रूप में अनुवाद सम्बन्धी सामान्य प्रकृति की जानकारी ही अनुवाद सिद्धान्त है, जो मूलतः एकान्वित न होते हुए भी संग्रहणीय, रोचक, ज्ञानवर्धक, तथा एक सीमा तक वास्तविक अनुवाद कार्य के लिए उपादेय है। अपने विकास की वर्तमान अवस्था में यह बहु-विद्यापरक अनुशासन बन गया है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना स्वयमेव एक लक्ष्य है तथा जो जिज्ञासु पाठक के लिए बौद्धिक सन्तोष का स्त्रोत है।

अनुवाद सिद्धान्त की अनुवाद कार्य में उपयोगिता का आकलन के समय इस सामयिक तथ्य को ध्यान में रखा जाता है कि वर्तमान काल में अनुवाद एक संगठित व्यवसाय हो गया है, जिसमें व्यक्तिगत रुचि की अपेक्षा व्यावसायिक-सामाजिक आवश्यकता से प्रेरित प्रशिक्षणार्थियों की संख्या अधिक होती है। विशेष रूप से ऐसे लोगों के लिए तथा सामान्य रूप से रुचिशील अनुवादकों के लिए अनुवाद कार्य में दक्षता विकसित करने में अनुवाद सिद्धान्त के योगदान को निरूपित किया जाता है। इस योगदान का सैद्धान्तिक औचित्य इस

दृष्टि से भी है कि अनुवाद कार्य सर्जनात्मक होने के कारण ही गौण रूप से समीक्षात्मक भी होता है। इसे 'सर्जनात्मक-समीक्षात्मक' भी कहा जाता है।

सर्जनात्मकता को विशुद्ध तथा पुष्ट करने के लिए जो समीक्षात्मक स्फुरणाएँ अनुवादक में होती हैं, वे अनुवाद सिद्धान्त के ज्ञान से प्ररित होती हैं। अनुवाद की विशुद्धता की निष्पत्ति में सिद्धान्त ज्ञान का योगदान रहता है। साथ ही, अनुवाद प्रक्रिया की जानकारी उसे पर्याय-चयन में अधिक सावधानी से काम करने में सहायता कर सकती है। इससे अधिक महत्त्वपर्ण बात मानी जाती है कि वह मूर्खतापूर्ण त्रुटियाँ करने से बच सकता है। मूलपाठ का भाषिक, विषयवस्तुगत, तथा सांस्कृतिक महत्त्व का कोई अंश अनूदित होने से न रह जाए, इसके लिए अपेक्षित सतर्क दृष्टि को विकसित करने में भी अनुवाद सिद्धान्त का ज्ञान अनुवादक की सहायता करता है। इसी प्रश्न को दूसरे छोर से भी देखा जाता है। कहा जाता है कि जो लोग मौलिक लिख सकते हैं, वे लिखते हैं, जो लिख नहीं पाते वे अनुवाद करते हैं, और जो लोग अनुवाद नहीं कर सकते, वे अनुवाद के बारे में चर्चा किया करते हैं। वस्तुतः इन तीनों में परिपूरकता है - ये तीनों कुछ भिन्न-भिन्न हैं—तथापि यह माना जाता है कि अनुवाद विषयक चर्चा को अधिक प्रामाणिक तथा विशद बनाने में अनुवाद सिद्धान्त के विद्यार्थी को अनुवाद कार्य सम्बन्धी अनुभव सहायक होता है। यह बात कुछ ऐसा ही है कि सर्जनात्मकता से अनुभव के स्तर पर परिचित साहित्य समीक्षक अपनी समीक्षात्मक प्रतिक्रियाओं को अधिक विश्वासोत्पादक रीति से प्रस्तुत कर सकता है।

अनुवाद सिद्धान्त का विकास

अनुवाद सिद्धान्त के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए इसके विकास कों विहङ्ग-दृश्य से दो चरणों में विभक्त करके देखा जाता है—

(1) आधुनिक भाषाविज्ञान, विशेष रूप से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, के विकास से पूर्व का युग-बीसवीं सदी पूर्वार्द्धय

(2) इसके पश्चात् का युग-बीसवीं सदी उत्तरार्ध।

सामान्य रूप से कहा जाता है कि, सिद्धान्त विकास के विभिन्न युगों में और उसी विभिन्न धाराओं में विवाद का विषय यह रहा कि, अनुवाद शब्दानुगामी हो या अर्थानुगामी, यद्यपि विवाद की 'भाषा' बदलती रही। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में रोमन युग से आरम्भ होता है, जब होरेंस तथा सिसरो ने शब्दानुगामी तथा अर्थानुगामी अनुवाद में अन्तर स्पष्ट किया तथा साहित्यिक रचनाओं के लिए

अर्थानुगामी अनुवाद को प्रधानता दी। सिसरो ने अच्छे अनुवादक को व्याख्याकार तथा अलंकार प्रयोग में दक्ष बताया। रोमन युग के पश्चात्, जिसमें साहित्यिक अनुवादों की प्रधानता थी, दूसरी शक्तिशाली धारा बाइबिल अनुवाद की है। सन्त जेरोम (400 ईस्वी) ने भी बाइबिल के अनुवाद में अर्थानुगामिता को प्रधानता दी तथा अनुवाद में दैनन्दिन के व्यवहार की भाषा के प्रयोग का समर्थन किया। इसमें विचार यह था कि, बाइबिल का सन्देश जनसाधारण पर्यन्त पहुँच जाए और इसके निमित्त जनसाधारण के लिए बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया जाए, जिसमें स्वभावतः अर्थानुगामी दृष्टिकोण को प्रधानता मिली।

जान वाइक्लिफ (1330-84) तथा विलियम टिंड्ल (1494-1936) ने इस प्रवृत्ति का समर्थन किया। बोधगम्य तथा सुन्दर भाषा में, तथा शैली एवं अर्थ के मध्य सामंजस्य की रक्षा करते हुए, बाइबिल के अनुवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला, जिसमें मार्टिन लूथर (1530) का योगदान उल्लेखनीय रहा। तृतीय धारा शिक्षाक्रम में अनुवाद के योगदान से सम्बन्धित रही है। क्विटिलियन (प्रथम शताब्दी) ने अनुवाद तथा समभाषी व्याख्यात्मक शब्दान्तरण की उपयोगिता को लेखन अभ्यास तथा भाषण-दक्षता विकसित करने के सन्दर्भ में देखा। जिसका मध्यकालीन यूरोप में अधिक प्रसार हुआ। इससे स्थानीय भाषाओं का स्तर ऊपर उठा तथा उनकी अभिव्यक्ति सामर्थ्य में वृद्धि भी हुई। समृद्ध और विकसित भाषाओं से विकासशील भाषाओं में अनुवाद की प्रवृत्ति मध्यकालीन यूरोप के साहित्यिक जगत् की एक प्रमुख प्रवृत्ति है, जिसे ऊर्ध्वस्तरी आयाम की प्रवृत्ति कहा गया और इसी समय प्रचलित समान रूप से विकसित या अविकसित भाषाओं के मध्य अनुवाद की प्रवृत्ति को समस्तरी आयाम की प्रवृत्ति के रूप में देखा गया।

मध्यकालीन यूरोप के आरम्भिक सिद्धान्तकारों में फ्रेंच विद्वान ई0 दोलेत (1509-46) ने 1540 में प्रकाशित निबन्ध में अनुवाद के पाँच विधि-निषेध प्रस्तावित किए –

(क) अनुवादक को मूल लेखक की भाषा का पूरा ज्ञान हो, परन्तु वह चाहे तो मूलभाषा की दुर्बोधता और अस्पष्टता को दूर कर सकता है।

(ख) अनुवादक को मूलभाषा और लक्ष्यभाषा का पूर्ण ज्ञान हो,

(ग) अनुवादक शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से बचे,

(घ) अनुवादक दैनन्दिन के व्यवहार की भाषा का प्रयोग करे,

(ङ) अनुवादक ऐसा शब्दचयन तथा शब्दविन्यास करे कि उचित प्रभाव की निष्पत्ति हो।

जार्ज चौपमन (1559–1634) ने भी इसी प्रकार 'इलियड' के सन्दर्भ में अनुवाद के तीन सूत्र प्रस्तावित किए –

(क) शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद से बचा जाए,

(ख) मूल की भावना पर्यन्त पहुँचने का प्रयास किया जाए,

(ग) अनुवाद, विद्वत्ता के स्पर्श के कारण अति शिथिल न हो।

यूरोप के पुनर्जागरण युग में अनुवाद की धारा एक गौण प्रवृत्ति रही। इस युग के अनुवादकों में अर्थ की प्रधानता के साथ पाठक के हितों की रक्षा की प्रवृत्ति दिखाई देती है। हालैण्ड (1552–1637) के अनुवाद में मूलपाठ के अर्थ में परिवर्तन-परिवर्धन द्वारा अनूदित पाठ के संस्कार की झलक दीखती है। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में सर जान डेनहम (1615–69) ने कविता के अनुवाद में शब्दानुगामी होने की प्रवृत्ति का विरोध किया और मूल पाठ के केन्द्रीय तत्त्व को ग्रहण कर लक्ष्यभाषा में उसके पुनस्सर्जन की बात कही, उसे 'अनुसर्जन' (ट्रांसक्रिएशन) कहा जाने लगा।

इस अविध में जान ड्राइडन (1631–1700) ने महत्त्वपर्ण विचार प्रकट किए। उन्होंने अनुवाद कार्य की तीन कोटियाँ निर्धारित कीं–

(क) शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद (मेटाफ्रेझ),

(ख) अर्थानुगामी अनुवाद (पैराफ्रेझ),

(ग) अनुकरण (इमिटेशन)।

ड्राइडन के अनुसार (क) और (ख) के मध्य का मार्ग अवलम्बन योग्य है। उनके अनुसार कविता के अनुवाद में अनुवादक को दोनों भाषाओं पर अधिकार हो, उसे मूल लेखक के साहित्यिक गुणों और उसकी 'भावना' का ज्ञान हो, तथा वह अपने समय के साहित्यिक आदर्शों का पालन करे। अलेग्जेंडर पोप (1688–1744) ने भी ड्राइडन के समान ही विचार प्रकट किए।

अठारहवीं शताब्दी में अनुवाद की अतिमूलनिष्ठता तथा अतिस्वतन्त्रता के विवाद से एक सोपान आगे बढ़कर एक समस्या थी कि अपने समकालीन पाठक के प्रति अनुवादक का कर्तव्य। पाठक की ओर अत्यधिक झुकाव के कारण अनूदित पाठ का स्वरूप मूल पाठ से काफी दूर पड़ जाता था। इस पर डॉ. सैम्युएल जानसन (1709–84) ने कहा कि, अनुवाद में मूलपाठ की अपेक्षा परिवर्धन के कारण उत्पन्न परिष्कृति का स्वागत किया जा सकता है, परन्तु

मूलपाठ की हानि न हो ये ध्यान देना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि जिस प्रकार लेखक अपने समकालीन पाठक के लिए लिखता है, उसी प्रकार अनुवादक भी अपने समकालीन पाठक के लिए अनुवाद करता है। डॉ. जानसन की सम्मति में अनुवाद की मूलनिष्ठता तथा पाठकधर्मिता में सन्तुलन मिलता है। उन्होंने अनुवादक को ऐसा चित्रकार या अनुकर्ता कहा जो मूल के प्रति निष्ठावान होते हुए भी उद्दिष्ट दर्शक के हितों का ध्यान रखता है।

एलेग्जेंडर फ्रेजर टिटलर जिनकी पुस्तक प्रिंसिपल्स आफ ट्रांसलेशन (1791) अनुवाद सिद्धान्त पर पहली व्यवस्थित पुस्तक मानी जाती है। टिटलर ने तीन अनुवाद सूत्र प्रस्तावित किए–

(क) अनुवाद में मूल रचना के भाव का पूरा अनुरक्षण हो,

(ख) अनुवाद की शैली मूल के अनुरूप हो,

(ग) अनुवाद में मूल वाली सुबोधता हो।

टिटलर ने ही यह कहा कि, अनुवाद में मूल की भावना इस प्रकार पूर्णतया संक्रान्त हो जाए कि उसे पढ़कर पाठकों को उतनी ही तीव्र अनुभूति हो, जितनी मूल के पाठकों को हुई थी, प्रभावसमता का सिद्धान्त यही है।

उन्नीसवीं शताब्दी में रोमांटिक तथा उत्तर-रोमांटिक युगों में अनुवाद चिन्तन पर तत्कालीन काव्यचिन्तन का प्रभाव दिखाई देता है। ए0 डब्ल्यू0 श्लेगल ने सब प्रकार के मौखिक एवं लिखित भाषा व्यवहार को अनुवाद की संज्ञा दी (तुलना करें, आधुनिक चिन्तन में 'अन्तर संकेतपरक अनुवाद' से), तथा मूल के गठन को संरक्षित रखने पर बल दिया। इस युग में एक ओर तो अनुवादक को सर्जनात्मक लेखक के तुल्य समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, तो दूसरी ओर अनुवाद को शब्दानुगामी बनाने पर बल देने की बात कही गई। कुछ विद्वानों ने अनुवाद की भिन्न उपभाषा होने की चर्चा की जो उपर्युक्त मान्यताओं से मेल खाती है।

विक्टोरियन धारा के अनुवादक इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि देश और काल की दूरी को अनुवाद में सुरक्षित रखा जाए–विदेशी भाषाओं की प्राचीन रचनाओं के अनुवाद में विदेशीयता और प्राचीनता की हानि न हो - जिसके फलस्वरूप शब्दानुगामी अनुवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। लौंगफेलो (1807-81) इसके समर्थक थे। परन्तु उमर खैयाम की रुबाइयों के अनुवादक फिटजेरल्ड (1809-63) के विचार इसके विपरीत थे। वे इस मान्यता के समर्थक थे कि, अनुवाद के पाठक को मूल भाषा पाठ के निकट लाने के स्थान

पर मूलभाषा पाठ की सांस्कृतिक विशेषताओं को लक्ष्यभाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए कि, वह लक्ष्यभाषा की अपनी सजीव सम्पत्ति प्रतीत हो, तथा इस प्रक्रिया में मूलभाषा से अनुवाद की बढ़ा हुई दूरी की उपेक्षा कर दी जाए।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में दो-तीन अनुवाद चिन्तक उल्लेखनीय हैं। क्रोचे तथा वेलरी ने अनुवाद की सफलता, विशेष रूप से कविता के अनुवाद की सफलता, में सन्देह व्यक्त किये हैं। मैथ्यू आर्नल्ड ने होमर की कृतियों के अनुवाद में सरल, प्रत्यक्ष और उदात्त शैली को अपनाने पर बल दिया।

इस प्रकार आधुनिक भाषाविज्ञान के उदय से पूर्व की अवधि में अनुवाद चिन्तन प्रायः दो विरोधात्मक मान्यताओं के चारों ओर घूमता रहा। वो दो मान्यताएँ इस प्रकार हैं -

(1) अनुवाद शब्दानुगामी हो या स्वतन्त्र हो,

(2) अनुवाद अपनी आन्तरिक प्रकृति की दृष्टि से असम्भव है, परन्तु सामाजिक दृष्टि से नितान्त आवश्यक।

इस अवधि के अनुवाद चिन्तन में कुल मिलाकर संघटनात्मक तथा विभेदात्मक दृष्टियों का सन्तुलन देखा जाता रहा - संघटनात्मक दृष्टि से अनुवाद सिद्धान्त का ऐसा स्वरूप अभिप्रेत है, जो सामान्य कोटि का हो, तथा विभेदात्मक दृष्टि में पाठों की प्रकृतिगत विभिन्नता के आधार पर अनुवाद की प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन की चर्चा का अन्तर्भाव है। विद्वानों ने इस अवधि में अमूर्त चिन्तन तो किया परन्तु वे अनुवाद प्रणाली का सोदाहरण पल्लवन नहीं कर पाए। मूलपाठ के अंतर्ज्ञानमूलक बोधन से वे विश्लेषणात्मक बोधन के लक्ष्य की ओर तो बढ़े परन्तु उसके पीछे सुनिश्चित सिद्धान्त की भूमिका नहीं रही। ऐसे चिन्तकों में अनुवादकों के अतिरिक्त साहित्यकार तथा साहित्य-समीक्षक ही अधिक थे, भाषाविज्ञानी नहीं। इसके अतिरिक्त वे एक-दूसरे के चिन्तन से परिचित हों, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता था।

आधुनिक भाषाविज्ञान का उदय यद्यपि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ, परन्तु अनुवाद सिद्धान्त की प्रासंगिकता की दृष्टि से उत्तरार्ध की अवधि का महत्त्व है। इस अवधि में भाषाविज्ञान से परिचित अनुवादकों तथा भाषाविज्ञनियों का ध्यान अनुवाद सिद्धान्त की ओर आकृष्ट हुआ। संरचनात्मक भाषाविज्ञान का विकास, अर्थविज्ञान की प्रगति, सम्प्रेषण सिद्धान्त तथा भाषाविज्ञान का समन्वय, तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं - समाजभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, प्रोक्ति विश्लेषण - का विकास, तथा संकेतविज्ञान, विशेषतः

पाठ संकेतविज्ञान, का उदय ऐसी घटनाएँ मानी जाती हैं, जो अनुवाद सिद्धान्त को पुष्ट तथा विकसित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती रहीं।

आंग्ल-अमरीकी धारा में एक विद्वान् यूजेन नाइडा भी माने जाते हैं। उन्होंने बाइबिल-अनुवाद के अनुभव के आधार पर अनुवाद सिद्धान्त और व्यवहार पर अपने विचार ग्रन्थों के रूप में प्रकट किए (1964-1969)। इनमें अनुवाद सिद्धान्त का विस्तृत, विशद तथा तर्कसंगत रूप देखने को मिलता है। नाइडा ने अनुवाद प्रक्रिया का विवरण देते हुए मूलभाषा पाठ के विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित भाषासिद्धान्त प्रस्तुत किया तथा लक्ष्यभाषा में संक्रान्त सन्देश के पुनर्गठन के विभिन्न आयाम निर्धारित किए। उन्होंने अनुवाद की स्थिति से सम्बद्ध दोनों भाषाओं के बीच विविधस्तरीय समायोजनों का विवरण प्रस्तुत किया।

अन्य विद्वान् कैटफोर्ड (1965) हैं, जिनके अनुवाद सिद्धान्त में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग का उदाहरण मिलता है। उन्होंने शुद्ध भाषावैज्ञानिक आधार पर अनुवाद के प्रारूपों का निर्धारण किया, अनुवाद-परिवृत्ति का भाषावैज्ञानिक विवरण दिया, तथा अनुवाद की सीमाओं पर विचार किया। तीसरे प्रभावशाली विद्वान् पीटर न्युमार्क (1981) हैं जिन्होंने सुगठित और घनिष्ठ शैली में अनुवाद सिद्धान्त का तर्कसंगत तथा गहन विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वे अपने विचारों को उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट करते चलते हैं। उन्होंने नाइडा के विपरीत, पाठ प्ररूपभेद के अनुसार विशिष्ट अनुवाद प्रणाली की मान्यता प्रस्तुत की। उनका अनुवाद सिद्धान्त को योगदान है कि, अनुवाद की अर्थकेन्द्रित (मूलभाषापाठ केन्द्रित) तथा सम्प्रेषण केन्द्रित (अनुवाद के पाठक पर केन्द्रित) प्रणाली की संकल्पना। उन्होंने पाठ विश्लेषण, सन्देशान्तरण तथा लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्ति की स्थितियों में सम्बन्धित अनेक अनुवाद सूत्र प्रस्तुत किए यह भी इनका एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य माना जाता है।

यूरोपीय परम्परा में जर्मन भाषा का लीपझिग स्कूल प्रभावशाली माना जाता है। इसकी मान्यता है कि, सब प्रकार के अनुभवों का अनुवाद सम्भव है। यह स्कूल पाठ के संज्ञानात्मक (विकल्पनरहित) तथा सन्दर्भपरक (विकल्पनशील) अंगों में अन्तर मानता है तथा रूपान्तरण व्याकरण और पाठसंकेतविज्ञान का भी उपयोग करता है। इस शाला ने साहित्येतर पाठों के अनुवाद पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया। वस्तुतः अनुवाद सिद्धान्त पर सबसे अधिक साहित्य जर्मन भाषा

में मिलता है ऐसा माना जाता है। रूसी परम्परा में फेदोरोव अनुवाद सिद्धान्त को स्वतन्त्र भाषिक अनुशासन मानते हैं। कोमिसारोव ने अनुवाद सम्बन्धी समस्याओं की चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों से की–

(क) अनुवाद सिद्धान्त का प्रतिपाद्य, उद्देश्य तथा अनुवाद प्रणाली,

(ख) अनुवाद का सामान्य सिद्धान्त,

(ग) अनुवादगत मूल्यसमता,

(घ) अनुवाद प्रक्रिया,

(ङ) अनुवादक की दृष्टि से भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण।

यान्त्रिक अनुवाद, आधुनिक युग की एक मुख्य गतिविधि है। यन्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार भाषा के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के प्रारूप तैयार किए गए हैं, तथा विशेषतया प्रौद्योगिकीय पाठों के अनुवाद में संगणक से सहायता ली गई है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार द्विभाषिक शब्द-संग्रह में तो संगणक बहुत सहायक है ही, अब अनुवाद के क्षेत्र में इसकी सम्भावनाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।

अनुवाद का महत्त्व

बीसवीं सदी को अनुवाद का युग कहा गया है। यद्यपि अनुवाद सबसे प्राचीन व्यवसाय या व्यवसायों में से एक कहलाता है तथापि उसके जो महत्त्व बीसवीं सदी में प्राप्त हुआ वह उससे पहले उसे नहीं मिला ऐसा माना जाता है। इसका मुख्य कारण माना गया है कि बीसवीं शताब्दी में ही भाषासम्पर्क अर्थात् भिन्न भाषाभाषी समुदायों में सम्पर्क की स्थिति प्रमुख रूप से आरम्भ हुई। इसके मूल कारण आर्थिक और राजनीतिक माने जाते हैं। फलस्वरूप, विश्व का आर्थिक-राजनीतिक मानचित्र परिवर्तित होने लगा। वर्तमान युग में अधिकतर राष्ट्रों में यदि एक भाषा प्रधान है तो एक या अधिक भाषाएँ गौण पद पर दिखाई देती हैं। दूसरे शब्दों में, एक ही राजनीतिक-प्रशासनिक इकाई की सीमा के अन्तर्गत भाषायी बहुसंख्यक भी रहते हैं और भाषायी अल्पसंख्यक भी। लोकतन्त्र में सब लोगों का प्रशासन में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक माना जाता है, जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से सम्पर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है और उसके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक,

तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान-प्रदान के कारण अनुवाद कार्य की अनिवार्यता और महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है। अतः अनुवाद एक व्यापक तथा बहुधा अनिवार्य और तर्कसंगत स्थिति मानी जाती है। अनुवाद के महत्त्व को दो भिन्न, परन्तु सम्बन्धित सन्दर्भों में अधिक स्पष्टता से समझया जाता है–(क) सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व, (ख) शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक महत्त्व।

सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व

सामाजिक सन्दर्भ में अनुवाद व्यापार अनौपचारिक परिस्थितियों में होता है। इसका सम्बन्ध द्विभाषिकता की स्थिति से है। द्विभाषिकता का सामान्य अर्थ है एक समय में दो भाषाओं का वैकल्पिक रूप से प्रयोग। वर्तमान युग के समाज का एक बृहद् भाग ऐसा है, जो सामाजिक सन्दर्भ की अनौपचारिक स्थिति में दो भाषाओं का वैकल्पिक प्रयोग करता है। सामान्य रूप से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति, नगरीय परिवेश का अर्ध शिक्षित व्यक्ति, दो भिन्न भाषाभाषी राज्यों के सीमा प्रदेश में रहने वाली जनता, तथा भाषायी अल्पसंख्यक, इनमें अधिक स्पष्ट रूप से द्विभाषिकता की स्थिति देखी जाती है। यह द्विभाषिकता प्रायः आश्रितसंयुक्त द्विभाषिकता की कोटि की होती है। जिसका सामान्य लक्षण यह है कि, सब एक भाषा में (मातृभाषा में) सोचते हैं, परन्तु अन्य भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। इस स्थिति में अनुवाद प्रक्रिया का होना अनिवार्य है। परन्तु यह प्रक्रिया अनौपचारिक रूप में ही होती है। व्यक्ति मन ही मन पहली भाषा से अन्य भाषा में अनुवाद कर अपनी बात कह देते हैं। यह माना गया है कि, अन्य भाषा परिवेश में अन्य भाषा सीखते समय अनुवाद का प्रत्यक्ष रूप से अस्तित्त्व रहता है। यदि स्व-भाषा के ही परिवेश में अन्य भाषा सीखी जाए तो 'कोड' परिवर्तन की स्थिति आती है, जिसमें अनुवाद की स्थिति कुछ परोक्ष हो जाती है। अतः द्विभाषी रूप में सभी अनुवाद अनौपचारिक हैं। इस दृष्टि से अनुवाद एक सामाजिक भाषा व्यवहार में महत्त्वपूर्ण भूमिका में दिखता है।

शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक महत्त्व

शैक्षणिक एवं ज्ञानात्मक सन्दर्भ में अनुवाद व्यापार औपचारिक स्थिति में होता है। इसके दो भेद हैं–साधन रूप में अनुवाद और साध्य रूप में अनुवाद।

साधन रूप में अनुवाद

साधन रूप में अनुवाद का प्रयोग भाषा शिक्षण की एक विधि के रूप में किया जाता है। संज्ञानात्मक कौशल के रूप में अनुवाद के अभ्यास से भाषा अधिगम के दो कौशलों–बोधन और अभिव्यक्ति को पुष्ट किया जाता है। इसी प्रकार साधन रूप में अनुवाद के दो और क्षेत्र हैं–भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन तथा तुलनात्मक साहित्य विवेचन।

भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन

वस्तुतः भाषाओं के अध्ययन–विश्लेषण के लिए अनुवाद के द्वारा ही व्यक्ति को यह ज्ञात होता है कि, एक वाक्य में किस शब्द का क्या अर्थ है। उसके पश्चात् ही वह दोनों में समानता तथा असमानता के बिन्दु से अवगत हो पाता है। अतः व्यतिरेकी भाषा विश्लेषण को अनुवादात्मक विश्लेषण (ट्रांसलेटिव एनालसिस) भी कहा गया है।

तुलनात्मक साहित्य विवेचन

तुलनात्मक साहित्य विवेचन में साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के साधन रूप में अनुवाद के प्रयोग द्वारा सदृश–विसदृश अंशों का अर्थबोध होता है, जिससे अंशों की तुलना की जा सके। इसके अतिरिक्त अन्य भाषा साहित्य की कृतियों के अनुवाद का अभ्यास करना अथवा और उन्हें अनूदित रूप में पढ़ना तुलनात्मक साहित्य विवेचन में अनुवाद के योगदान का उदाहरण है।

साध्य रूप में अनुवाद

साध्य रूप में अनुवाद व्यापार अनेक क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। कोशकार्य भी उक प्रकार का अनुवाद कार्य है। समभाषिक कोश में एक ही भाषा के अन्दर अनुवाद होता है और द्विभाषी कोश में दो भाषाओं के मध्य। यह अनुवाद, पाठ की अपेक्षा भाषा के आयाम पर होता है, जिसमें भाषा विश्लेषण के दो स्तर प्रभावित होते हैं। वे दो स्तर - शब्द और शब्द शश्रंखला हैं।

इसी प्रकार किसी भाषा के विकास के लिए भी अनुवाद–व्यापार का आश्रय लिया जाता है। जब किसी भाषा को ऐसे व्यवहार–क्षेत्रों में काम करने का अवसर मिलता है, जिनमें पहले उसका प्रयोग नहीं होता था, तब उसे विषयवस्तु और अभिव्यक्ति पद्धति दोनों ही दृष्टियों से विकसित करने की आवश्यकता होती

है। इसके लिए अन्य भाषाओं से विभिन्न प्रकार के साहित्य का उसमें अनुवाद किया जाता है। फलस्वरूप, विषयवस्तु की परिधि के विस्तार के साथ-साथ भाषा के अभिव्यक्ति-कोश का क्षेत्र भी विस्तृत होता है। अनेक नये शब्द बन जाते हैं, कई बार प्रचलित शब्दों को नया अर्थ मिल जाता है, नये सहप्रयोग विकसित होने लगते हैं, संकर-शब्दावली प्रयोग में आने लगती है, और भाषा प्रयोग के सन्दर्भ की विशेषता के कारण कुल मिलाकर भाषा का एक नवीन भेद विकसित हो जाता है। आधुनिक प्रशासनिक हिन्दी तथा पत्रकारिता हिन्दी इसके अच्छे उदाहरण हैं। इस प्रक्रिया को भाषा नियोजन और भाषा विकास कहते हैं, जो अपने व्यापकतर सन्दर्भ में राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास का अंग है। इस प्रकार अनुवाद के माध्यम से विकासशील भाषा में आवश्यक और महत्त्वपूर्ण साहित्य का प्रवेश होता है। तब कह सकते हैं कि इस रूप में अनुवाद राष्ट्रीय विकास में भी योगदान करता है।

अपने व्यापकतम रूप में अनुवाद भाषा की शक्ति में संवर्धन करता है, पाठों की व्याख्या एवं निर्वचन में सहायक है, भाषा तथा विचार के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करता है, ज्ञान का प्रसार करता है, संस्कृति का संवाहक है, तथा राष्ट्रों के मध्य परस्पर आवागमन और सद्भाव की वृद्धि में योगदान करता है। गेटे के शब्दों में, अनुवाद (अपनी प्रकृति से) असम्भव होते हुए भी (सामाजिक दृष्टि से) आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

2

अनुवाद की प्रकृति एवं क्षेत्र

अनुवाद की प्रकृति (अर्थात् अनुवाद-क्रिया कला के अन्तर्गत आता है या विज्ञान के या शिल्प के) के साथ-साथ अनुवाद के विविध प्रकार एवं प्रभेद की भी चर्चा की जा रही है।

अनुवाद के प्रकार

गद्य-पद्य पर आधारित प्रभेद

गद्यानुवाद–गद्यानुवाद सामान्यतः गद्य में किए जानेवाले अनुवाद को कहते हैं। किसी भी गद्य रचना का गद्य में ही किया जाने वाला अनुवाद गद्यानुवाद कहलाता है। किन्तु कुछ विशेष कृतियों का पद्य से गद्य में भी अनुवाद किया जाता है। जैसे 'मेघदूतम' का हिन्दी कवि नागार्जुन द्वारा किया गद्यानुवाद।

पद्यानुवाद–पद्य का पद्य में ही किया गया अनुवाद पद्यानुवाद की श्रेणी में आता है। दुनिया भर में विभिन्न भाषाओं में लिखे गए काव्यों एवं महाकाव्यों के अनुवादों की संख्या अत्यन्त विशाल है। इलियट के 'वेस्टलैण्ड', कालिदास के 'मेघदूतम्' एवं 'कुमारसंभवम्' तथा टैगोर की 'गीतांजलि' का विभिन्न भाषाओं में पद्यानुवाद किया गया है। साधारणतः पद्यानुवाद करते समय स्त्रोत-भाषा में व्यवहृत छन्दों का ही लक्ष्य-भाषा में व्यवहार किया जाता है।

छन्दमुक्तानुवाद—इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक को स्रोत-भाषा में व्यवहार किए गए छन्दों को अपनाने की बाध्यता नहीं होती। अनुवादक विषय के अनुरूप लक्ष्य-भाषा का कोई भी छन्द चुन सकता है। साहित्य में ऐसे अनुवाद विपुल संख्या में उपलब्ध हैं।

साहित्य विधा पर आधारित प्रभेद

काव्यानुवाद—स्रोत-भाषा में लिखे गए काव्य का लक्ष्य-भाषा में रूपान्तरण काव्यानुवाद कहलाता है। यह आवश्यकतानुसार गद्य, पद्य एवं मुक्त छन्द में किया जा सकता है। होमर के महाकाव्य 'इलियड' एवं कालिदास के 'मेघदूतम' एवं 'ऋतुसंहार' इसके उदाहरण हैं।

नाट्यानुवाद—किसी भी नाट्य कृति का नाटक के रूप में ही अनुवाद करना नाट्यानुवाद कहलाता है। नाटक रंगमंचीय आवश्यकताओं एवं दर्शकों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। अतः इसके अनुवाद के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। संस्कृत के नाटकों के हिन्दी अनुवाद तथा शेक्सपियर के नाटकों के अन्य भाषाओं में किए गए अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कथा अनुवाद—कथा अनुवाद के अन्तर्गत कहानियों एवं उपन्यासों का कहानियों एवं उपन्यासों के रूप में ही अनुवाद किया जाता है। विश्व प्रसिद्ध उपन्यासों एवं कहानियों के अनुवाद काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय हैं। मोपासाँ एवं प्रेमचन्द की कहानियों का दुनिया की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है। रूसी उपन्यास 'माँ', अंग्रेजी उपन्यास 'लैडी चैटर्ली का प्रेमी' तथा हिन्दी के 'गोदान', 'त्यागपत्र' तथा 'नदी के द्वीप' के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवाद—अन्य साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत रेखाचित्र, निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी एवं आत्मकथा आदि के अनुवाद आते हैं। पं. जवाहर लाल नेहरू की कृति 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' तथा महात्मा गांधी एवं हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथाओं के विभिन्न भाषाओं में किए गए अनुवाद इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विषय आधारित प्रभेद

ललित साहित्यानुवाद—ललित साहित्यानुवाद के अन्तर्गत साहित्यिक विधाओं को रखा जाता है। कविता, ललित निबन्ध, कहानी, डायरी, आत्मकथा, उपन्यास आदि। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

धार्मिक-पौराणिक साहित्यानुवाद–जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है धार्मिक-पौराणिक साहित्यानुवाद में विभिन्न धर्मों के मानक धर्मग्रंथों, गीता, भागवत, कुरआन, बाइबिल आदि का अनुवाद किया जाता है। वेद, उपनिषद आदि भी इसके साथ शामिल हैं।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी सामग्री के अनुवाद–वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में विषय मुख्य है और शैली गौण। साहित्यिक अनुवाद में प्रायः 'क्यों' से ज्यादा 'कैसे' का महत्त्व होता हैं जबकि वैज्ञानिक अनुवाद में 'कैसे' से ज्यादा 'क्या' का महत्त्व होता है। इसमें भावानुवाद त्याज्य है और प्रायः शब्दानुवाद अपेक्षित है। इसमें पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अपेक्षित है, ध्वन्यात्मक या व्यंग्यात्मक शब्दावली का नहीं। कुल मिलाकर इस प्रकार के अनुवाद में सूचना, संकल्पना तथा तथ्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। सबसे जरूरी बात यह कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में अनुवादक विषय का सम्यक जानकार हो और साथ ही प्रशिक्षित भी। तभी वह अनुवाद के साथ न्याय कर पाएगा।

विधि का अनुवाद–इसमें एक भाषा की विधि सम्बन्धी अर्थात् कानून की सामग्री को दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाता है। कानून की किताबें, अदालत के मुकद्दमे, तत्सम्बन्धी विभिन्न आवेदन-पत्र, कानूनी संहिताएँ, नियम-अधिनियम, संशोधित अधिनियम आदि कानूनी अनुवाद के प्रमुख हिस्से हैं। इस प्रकार के अनुवाद में प्रत्येक शब्द का अपना विशेष महत्त्व होता है। इसमें भावार्थ नहीं शब्दार्थ महत्त्वपूर्ण होता है। इसके प्रत्येक शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है। एक शब्द का एक ही अर्थ अपेक्षित होता है। इस प्रकार के अनुवाद की भाषा पूरी तरह तकनीकी प्रकृति की होती है।

प्रशासनिक अनुवाद–प्रशासनिक अनुवाद से तात्पर्य है वह अनुवाद जिसमें एक भाषा की प्रशासन सम्बन्धी सामग्री को दूसरी भाषा में परिवर्तित किया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद का सम्बन्ध सरकारी कार्यालयों से होने के कारण इसे कार्यालयी अनुवाद भी कहा जाता है। इस अनुवाद के अन्तर्गत प्रशासन के सभी कागजात, सरकारी पत्र, परिपत्र, सूचनाएँ- अधिसूचनाएँ, नियम-अधिनियम, प्रेस विज्ञप्तियाँ आदि आते हैं। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, संसद, विभिन्न मंत्रालय आदि में द्विभाषी तथा बहुभाषी स्थिति के कारण प्रशासनिक अनुवाद के बिना काम नहीं चलता। यहाँ भी पारिभाषिक शब्दावली का सहारा लिया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद में 'कथ्य' अर्थात् 'कही गई बात' महत्त्वपूर्ण होती है।

मानविकी एवं समाजशास्त्र का अनुवाद–मानविकी एवं समाजशास्त्र से सम्बन्धित सामग्रियों के अनुवाद के लिए अनुवादक का विषय ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस तरह का अनुवाद अनुसंधान, सर्वेक्षण, परियोजना एवं शैक्षिक आवश्यकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है। इस तरह के अनुवाद में सरलता एवं स्पष्टता अपेक्षित होती है।

संचार माध्यमों की सामग्री का अनुवाद–वर्तमान युग के संचार माध्यमों ने मानव–विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। संचार माध्यमों के जरिए ही वह देश–विदेश और समग्र दुनिया की जानकारी हासिल करता है। किन्तु विविध देशों में विविध भाषाएँ होने के कारण संचार माध्यम की सामग्री का अनुवाद महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। इस अनुवाद के अन्तर्गत मुख्यतः दैनिक समाचार, सभी प्रकार की पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी आदि क्षेत्रों की सामग्री के अनुवाद आते हैं। इन सम्पर्क माध्यमों में दुनिया के सारे ज्ञान–विज्ञान की सामग्री समाहित होती है। इसमें राजनीति, व्यापार, खेल, विज्ञान, साहित्य आदि की अर्थात् जीवन से सम्बन्धित सभी विषय–क्षेत्रों की सामग्री होती है।

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा विषयाधारित अनुवाद में संगीत, ज्योतिष, पर्यावरण, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अभिलेखों, गजेटियरों आदि की सामग्री, वाणिज्यानुवाद, काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक विषयों को शामिल किया जा सकता है।

अनुवाद की अन्य प्रकृति पर आधारित प्रभेद

मूलनिष्ठ–मूलनिष्ठ अनुवाद कथ्य और शैली दोनों की दृष्टि से मूल का अनुगमन करता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक का प्रयास रहता है कि अनूदित विचार या कृति स्रोत–भाषा के विचारों एवं अभिव्यक्ति के निकट रहें।

मूलमुक्त–मूलमुक्त अनुवाद को भोलानाथ तिवारी ने मूलाधारित अथवा मूलाधृत अनुवाद भी कहा है। वैसे तो मूलमुक्त का अर्थ ही होता है मूल से हटकर, किन्तु किसी भी अनुवाद में विचारों के स्तर पर परिवर्तन की गुँजाइश नहीं होती। अतः यहाँ मूल से भिन्न का अर्थ है शैलीगत भिन्नता तथा कहावतों एवं उपमानों का देशीकरण करने की अनुवादक की स्वतंत्रता।

अनुवाद के कुछ अन्य प्रभेद

शब्दानुवाद–स्रोत–भाषा के शब्द एवं शब्द क्रम को उसी प्रकार लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित करना शब्दानुवाद कहलाता है। यहाँ अनुवादक का लक्ष्य मूल–भाषा

के विचारों को रूपान्तरित करने से अधिक शब्दों का यथावत् अनुवाद करने से होता है। शब्द एवं शब्द क्रम की प्रकृति हर भाषा में भिन्न होती है। अतः यांत्रिक ढंग से उनका यथावत अनुवाद करते जाना काफी कृत्रिम, दुर्बोध्य एवं निष्प्राण हो सकता है। शब्दानुवाद उच्च कोटि के अनुवाद की श्रेणी में नहीं आता।

भावानुवाद–साहित्यिक कृतियों के सन्दर्भ में भावानुवाद का विशेष महत्त्व होता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल–भाषा के भावों, विचारों एवं सन्देशों को लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। इस सन्दर्भ में भोलानाथ तिवारी का कहना है–'मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है तो उसका भावानुवाद करते हैं।' भावानुवाद में सम्प्रेषणीयता सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें अनुवादक का लक्ष्य स्रोत–भाषा में अभिव्यक्त भावों, विचारों एवं अर्थों का लक्ष्य–भाषा में अन्तरण करना होता है। संस्कृत साहित्य में लिखे गए कुछ ललित निबन्धों के हिन्दी अनुवाद बहुत ही सफल सिद्ध हुए हैं।

छायानुवाद–अनुवाद सिद्धान्त में छाया शब्द का प्रयोग अति प्राचीन है। इसमें मूल–पाठ की अर्थ छाया को ग्रहण कर अनुवाद किया जाता है। छायानुवाद में शब्दों, भावों तथा संकल्पनाओं के संकलित प्रभाव को लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। संस्कृत में लिखे गए भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' एवं कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के हिन्दी अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

सारानुवाद–सारानुवाद का अर्थ होता है किसी भी विस्तृत विचार अथवा सामग्री का संक्षेप में अनुवाद प्रस्तुत करना। लम्बी रचनाओं, राजनैतिक भाषणों, प्रतिवेदनों आदि व्यावहारिक कार्य के अनुवाद के लिए सारानुवाद काफी उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल–भाषा के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए लक्ष्य–भाषा में उसका रूपान्तरण कर दिया जाता है।

सारानुवाद का प्रयोग मुख्यतः दुभाषिये, समाचार पत्रों एवं दूरदर्शन के संवाददाता तथा संसद एवं विधान मण्डलों के कार्यकर्ता करते हैं।

व्याख्यानुवाद–व्याख्यानुवाद को भाष्यानुवाद भी कहते हैं। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री के साथ–साथ उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। व्याख्यानुवाद में अनुवादक का व्यक्तित्त्व महत्त्वपूर्ण होता है। और कई जगहों में तो अनुवादक का व्यक्तित्त्व एवं विचार मूल रचना पर हावी हो जाता है। बाल गंगाधर तिलक द्वारा किया गया 'गीता' का अनुवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

आशु अनुवाद–आशु अनुवाद को वार्तानुवाद भी कहते हैं। दो भिन्न भाषाओं, भावों एवं विचारों का तात्कालिक अनुवाद आशु अनुवाद कहलाता है। आज जैसे विभिन्न देश एक-दूसरे के परस्पर समीप आ रहे हैं इस प्रकार के तात्कालिक अनुवाद का महत्त्व बढ़ रहा है। विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों एवं देशों के बीच राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के क्षेत्रों में आशु अनुवाद का सहारा लिया जाता है।

आदर्श अनुवाद–आदर्श अनुवाद को सटीक अनुवाद भी कहा जाता है। इसमें अनुवादक आचार्य की भूमिका निभाता है तथा स्रोत-भाषा की मूल सामग्री का अनुवाद अर्थ एवं अभिव्यक्ति सहित लक्ष्य-भाषा में निकटतम एवं स्वाभाविक समानार्थों द्वारा करता है। आदर्श अनुवाद में अनुवादक तटस्थ रहता है तथा उसके भावों एवं विचारों की छाया अनूदित सामग्री पर नहीं पड़ती। रामचरितमानस, भगवद्गीता, कुरआन आदि धार्मिक ग्रन्थों के सटीक अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

रूपान्तरण–आधुनिक युग में रूपान्तरण का महत्त्व बढ़ रहा है। रूपान्तरण में स्रोत-भाषा की किसी रचना का अन्य विधा (साहित्य रूप) में रूपान्तरण कर दिया जाता है। संचार माध्यमों के बढ़ते हुए प्रभाव एवं उसकी लोकप्रियता को देखते हुए कविता, कहानी आदि साहित्य रूपों का नाट्यानुवाद विशेष रूप से प्रचलित हो रहा है। ऐसे अनुवादों में अनुवादक की अपनी रुचि एवं कृति की लोकप्रियता महत्त्वपूर्ण होती है। जैनेन्द्र, कमलेश्वर, अमृता प्रीतम, भीष्म साहनी आदि की कहानियों के रेडियो रूपान्तर प्रस्तुत किए जा चुके हैं। 'कामायनी' महाकाव्य का नाट्य रूपान्तर काफी चर्चित हुआ है।

अनुवाद की प्रकृति

'अनुवाद' एक कर्म के रूप में बेहद जटिल क्रिया है और एक विधा के रूप में बहुत संश्लिष्ट। यही कारण है कोई इसे 'अनुवाद कला' कहता है, कोई 'अनुवाद शिल्प', तो कोई 'अनुवाद विज्ञान'। अनुवाद कर्म के मर्म को समझने के लिए अनुवाद की प्रकृति और अनुवाद के प्रभेद को जानना-समझना बहुत जरूरी है। चर्चा की शुरुआत अनुवाद की प्रकृति से करते हैं।

अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार पर उपलब्ध पुस्तकों के शीर्षकों को देखने से मन में यह प्रश्न स्वतः उठता है कि आखिर अनुवाद की प्रकृति क्या है ? विद्वानों का एक वर्ग इसे 'कला' मानता आया है तो दूसरा वर्ग इसके विपरीत

इसे 'विज्ञान' की श्रेणी में रखना पसन्द करता है। एक वर्ग ऐसा भी है, जो अनुवाद को कला या विज्ञान की श्रेणी से अलग 'शिल्प' की कोटि में रखता है। ऐसे में अनुवाद की प्रकृति पर विचार करना जरूरी हो जाता है। पहले हम इसके विज्ञान पक्ष पर विचार करते हैं–

अनुवाद का वैज्ञानिक पक्ष

विज्ञान का साधारण अर्थ होता है 'विशिष्ट ज्ञान'। मगर आज 'विज्ञान' शब्द केवल 'विशिष्ट ज्ञान' तक सीमित न रह कर समूचे वैज्ञानिक व तकनीक चिन्तन, अनुशासनों, यथा–भौतिकी, रसायन, गणित, जीवविज्ञान, कम्प्यूटर आदि को अपने में समाहित कर चुका है जिसमें पूर्ण सार्वभौमिक सत्यता विद्यमान होती है। इसे सार्वभौमिक सत्यता इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सामान्यतः स्थान, समय व परिवेश से प्रभावित नहीं होती। इसमें हमेशा होता है। परन्तु अनुवाद में ऐसी सार्वभौमिक सत्यता नहीं होती। हर अनुवादक से उसे एक नया रूप मिलता है। फिर अनुवाद में अनिवार्यतः अनुवादक के युग, समाज, भौगोलिक परिवेश आदि का प्रभाव भी मौजूद रहता है। अनुवाद को उस अर्थ में विज्ञान नहीं कहा जा सकता जिस अर्थ में भौतिकी, रसायन, गणित, जीवविज्ञान आदि को विज्ञान कहा जाता है। अनुवाद को विज्ञान मानने के पीछे कारण यह है कि अनुवाद की प्रकिया में विज्ञान की भाँति ही विश्लेषण, तुलना, निरीक्षण, अनुशीलन आदि सोपान होते हैं।

डार्टेस्ट ने अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि अनुवाद, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें विशेषतः एक प्रतिमानित प्रतीक समूह से दूसरे प्रतिमानित प्रतीक समूह में अर्थ को अन्तरित करने की समस्या या तत्सम्बन्धी तथ्यों पर विचार–विमर्श किया जाता है–

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत शामिल करने का कारण यह है कि अनुवाद कर्म में स्रोत–भाषा से लक्ष्य–भाषा तक पहुँचने में हम जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरते हैं उसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है। भाषा विज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद क्रिया में पहले स्रोत–भाषा का विकोडीकरण होता है जिसका बाद में लक्ष्य–भाषा में पुनःकोडीकरण किया जाता है। अतः अनुवाद कर्म में विज्ञान का कुछ गुण अवश्य है, परन्तु इतने भर से इसको पूर्णतः वैज्ञानिक विधा नहीं माना जा सकता।

अनुवाद का कला पक्ष

कला एक प्रकार की सर्जना है। शायद यही कारण है कि सृजनात्मक साहित्य को कला की श्रेणी में रखा जाता है। जब सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद किया जाता है तो वह मात्र शाब्दिक प्रतिस्थापन नहीं होता बल्कि अनुवादक को मूल लेखक के उस महान् जीवन क्षण को फिर से जीना होता है जिससे अभिभूत होकर कवि या रचनाकार ने उस रचना को अंजाम दिया। इसलिए आग्निस गेर्गली ने कहा है–हमेशा सहज समतुल्यता की खोज में अनुवादक को अक्सर पुनःसृजन करना पड़ता है, जिसमें अनुवादक के सौन्दर्यबोध एवं सृजनशील प्रतिभा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शैली के शब्दों में कहें तो सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद एक प्रकार से कलात्मक प्रक्रिया है। साहित्यिक अनुवाद का पुनर्सृजित रूप निम्नलिखित दो अनुवादों से स्पष्ट हो जाएगा–

उदाहरण–1 मूल–लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछैं ही पछिताहुगे, यह तन जैहै छूटि।।
–कबीर

अनुवाद–अरे, यह विस्मृति का मरु देश
एक विस्तृत है, जिसके बीच
खिंची लघु जीवन–जल की रेख,
मुसाफिर ले होठों को सींच।
एक क्षण, जल्दी कर, ले देख
बुझे नभ–दीप, किधर पर भोर
कारवाँ मानव का कर कूच
बढ़ चला शून्य उषा की ओर !
–खैयाम की मधुशाला हिन्दी अनुवाद–हरिवंशराय बच्चन

उपर्युक्त दोनों अनुवाद मूल के आधार पर नई रचनाएँ बन गई हैं। ये अनुवाद नहीं बल्कि मूल का 'अनुसृजन' है। इसमें मूल लेखक की भाँति अनुवादक की सृजनशील प्रतिभा की स्पष्ट झलक देखने को मिल रही है। राजशेखर दास ने ठीक ही कहा है–'कविता का अनुवाद कितना ही सुन्दर क्यों न हो वह केवल मूल विचारों पर आधृत एक नई कविता ही हो सकती है।' यही कारण है कि साहित्यिक अनुवाद को एक कलात्मक प्रक्रिया माना गया है।

अनुवाद का शिल्प पक्ष

कई भाषाविज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद-कार्य एक शिल्प-कर्म है। उनका तर्क है कि स्रोत-भाषा में व्यक्त सन्देश को लक्ष्य-भाषा में प्रस्तुत करने में अनुवादक के कौशल, उसके भाषा-चातुर्य की अहम् भूमिका होती है। यह शिल्प शब्द अंग्रेजी के आधारित के निकट पड़ता है। न्यूमार्क ने अनुवाद कर्म को 'शिल्प' स्वीकारा है–'अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में लिखित सन्देश को दूसरी भाषा में उसी सन्देश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।' फिर अनुवाद में जितना अधिक अभ्यास किया जाएगा या प्रशिक्षण लिया जाएगा, अनुवाद उतना ही सुन्दर होता जाएगा। इसके अलावा कला और शिल्प का अभिन्न सम्बन्ध भी रहा है। जहाँ कला होगी वहाँ निश्चय ही शिल्प होगा और इसके विपरीत जहाँ शिल्प होगा वहाँ अनिवार्यतः कला होगी। अतः अनुवाद में अंशतः शिल्प का तत्त्व भी समाहित है।

अनुवाद में कला-विज्ञान-शिल्प के तीनों तत्त्व

नाइडा द्वारा प्रस्तावित अनुवाद प्रक्रिया में तीन सोपानों का उल्लेख है–

(i) विश्लेषण

(ii) अन्तरण

(iii) पुनर्गठन

दरअसल ये तीनों चरण क्रमानुसार विज्ञान, शिल्प और कला के ही तीनों सोपान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुवाद-प्रक्रिया का पहला चरण है मूल-पाठ का 'वैज्ञानिक विश्लेषण', दूसरा सोपान है मूल-पाठ के सन्देश व शिल्प का 'अन्तरण कौशल' तथा तीसरा सोपान है लक्ष्य-भाषा में उसका 'कलात्मक पुनर्ग्ाठन'। मगर अनुवाद में ये तीनों (कला, विज्ञान और कौशल) का अनुपात सदैव समान नहीं रहता। इन तीनों का अनुपात अनुद्य सामग्री की प्रकृति पर निर्भर रहता है। सृजनात्मक सामग्री में कला तत्त्व का प्राधान्य होने के कारण इसके अनुवादक में भी सृजनात्मक प्रतिभा का होना अपरिहार्य माना गया है। यही कारण है कि साहित्यिक अनुवादक अनुवाद को कलात्मक क्रिया मानते आए हैं। इसके विपरीत तकनीकी या वैज्ञानिक सामग्री के अनुवादक को अनुद्य विषय का सम्यक ज्ञान होना जरूरी है। अनुवादक का विषय ज्ञान जितना अधिक होगा अनुवाद उतना सटीक होगा। अन्यथा का अनुवाद 'काष्ठमय अंश' हो जाने में देर नहीं लगती। इसके अलावा तकनीकी-वैज्ञानिक सामग्री के अनुवाद में हमें

कुछ नियमों का अनुसरण भी करना पड़ता है। इसीलिए तकनीकी विषय के अनुवाद में अनुवादक का कौशल बखूबी काम करता है। इस सन्दर्भ में नाइडा का कथन है—अर्थात् अनुवाद विज्ञान से बढ़कर है, वह कौशल भी है और अन्तिम विश्लेषण में पूर्णतः सन्तोषजनक अनुवाद हमेशा एक कला रहा है। परन्तु डॉ. नगेन्द्र अनुवाद को एक स्वतंत्र विधा मानते हैं। उनका कहना है—'अनुवाद पारिभाषिक अर्थ में न विज्ञान है और न कला। इसके अतिरिक्त उसे निश्चित रूप से शिल्प भी कहना तर्कसंगत नहीं होगा। वास्तविक स्थिति यह है कि आधार विषय के अनुसार अनुवाद में इन तीनों के ही तत्त्वों का यथानुपात समावेश रहता है। साहित्यिक अनुवाद विशेष रूप से काव्यानुवाद का अन्तर्भाव जहाँ कला की परिधि में ही हो जाता है, वहाँ वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय अनुवाद में विज्ञान के आधार तत्त्वों का प्राधान्य रहता है जबकि शिल्प का प्रयोग प्रायः सर्वत्र ही मिलता है। इस प्रकार अनुवाद एक स्वतंत्र विधा है।' निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अनुवाद में कला, विज्ञान और शिल्प तीनों विधाओं के तत्त्व अंशतः विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में, अनुवाद के विश्लेषण में वैज्ञानिकता है, उसकी सिद्धि में कलात्मकता जिसके लिए आवश्यकता होती है शिल्पगत कौशल की।

अनुवाद दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम है। इसकी सहायता से दो भिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं के बीच एक संबंध स्थापित किया जा सकता है। इससे बहुभाषिक स्थिति की विडंबना से बचने में आसानी होती है। इस कार्य में अनुवादक को एक कलाकार या रचनाकार की भांति सृजन की प्रक्रिया से गुजरना होता है। वह यह सृजन मूल पाठ के लेखक की भांति ही करता है। वह मूल के आधार पर लक्ष्य भाषा में अपनी लेखन प्रतिभा का उपयोग कर पहले से सृजित पाठ का पुनःसृजन करता है। पुनःसृजन करते समय अनुवादक अनुवाद की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा भाषा सिद्धांतों का अनुपालन करता है। इसलिए अनुवाद को वैज्ञानिक कला भी कहा जाता है। अतः अनुवाद को कला और विज्ञान से संबद्ध विषय के रूप में स्वीकार करने से इसका स्वरूप व्यापक हो जाता है और भाषा सिद्धांतों से संबद्ध विषय के रूप में इसका स्वरूप सीमित हो जाता है। प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने अनुवाद के स्वरूप को दो संदर्भों में देखने का प्रयास किया है सीमित संदर्भ और व्यापक संदर्भ। उन्होंने अनुवाद के सीमित संदर्भ को भाषा के सिद्धांतों से जोड़ा है। हर भाषा स्थानीय परिवेश, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से प्रभावित

होती है। उदाहरण के लिए हिंदी में संदर्भानुसार 'घट' और 'कलश' 'घड़ा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में इनका समानार्थी शब्द है 'POT*A POT कह देने से 'घट' या 'घड़ा' का बोध हो जाता है, लेकिन 'कलश' का सही अर्थ संप्रेषित नहीं होगा। 'कलश' का अभिप्राय पानी से भरे और पूजा में उपयोग किए जाने वाले घड़े से है। अंग्रेजी भाषा समुदाय में 'पूजा' की संकल्पना नहीं है। इसीलिए 'कलश' को संप्रेषित करने वाला शब्द भी नहीं है। इसी तरह अंग्रेजी के 'स्नो' तथा 'आइस' के लिए हिंदी में 'बर्फ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जबकि अभिव्यक्ति के स्तर पर स्नो तथा आइस में भेद है। इसलिए अनुवाद में इस प्रकार की कठिनाई से पार पाने के प्रयास के रूप में अनुवाद के सीमित संदर्भ में अनुवाद के दो आयाम स्वीकार किए गए हैं। पहला आयाम 'पाठ' से संबंधित है तथा दूसरा उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव से संबंधित। कहने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार मूल पाठ अपने पाठकों को प्रभावित करता है, उसी तरह अनूदित पाठ प्राभावित करे। वह लक्ष्य भाषा के पाठक को अनुवाद न लगे। उसे (लक्ष्य भाषी पाठक) वह अपनी भाषा की कृति लगे। उदाहरण के लिए 'सीपी और शंख' रामधारी सिंह दिनकर का विदेशी कविताओं के हिंदी अनुवाद का संग्रह है। लेकिन उनके मित्रों ने उस संग्रह की कविताएँ को पढ़ने के बाद उन्हें अनुवाद न मानकर दिनकर जी की मौलिक रचना माना। इसी काव्य संग्रह की कुछ कविताओं का रूसी में अनुवाद यह मानकर किया गया कि ये दिनकर जी की मौलिक रचनाएँ हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने इसमें जिन कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया है, उसमें मूल के बिंब, प्रतीक, विचार या मुहावरों के जोड़ के हिंदी की प्रकृति एवं संस्कृति के अनुरूप नए बिंब, प्रतीक, विचार तथा मुहावरे गढ़ दिए।

सीमित संदर्भ में अनुवाद को 'कथन के भाषांतरण' के रूप में देखा जाता है। अनुवाद का यह स्वरूप विशेषकर कविता के अनुवाद में देखने को मिलता है। "इस रूप में अनुवाद को पाठ मूलक माना गया है, जहाँ स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पाठ के स्वरूप की चर्चा की जाती है।" यहाँ अनुवादक पाठ के बाहर नहीं जा सकता है। वह विभिन्न स्तरों पर मूलपाठ की भाषा का विश्लेषण करता है और उसके रूप को लक्ष्य पाठ में व्यंजित करता है। इस स्तर पर अनुवादक को वाक्य-विन्यास तथा अर्थ पर अपना ध्यान केंद्रित करना होता है। अनुवाद के इस स्वरूप में मूल पाठ के 'कथ्य' या 'अर्थ' का अधिक महत्व होता है शैली पक्ष का नहीं। इसीलिए इसे अनुवाद का सीमित स्वरूप कहा जाता है।

अनुवाद का व्यापक संदर्भ प्रतीक सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। डार्ट के अनुसार अनुवाद एक भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों से दूसरी भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों में अर्थ का अंतरण है। भाषा के सुसंबद्ध प्रतीकों से तात्पर्य किसी भाषा विशेष के शब्द है। भोलानाथ तिवारी भाषा को यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था मानते हैं। ध्वनि प्रतीकों की यह यादृच्छिकता अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग दिखाई देती है। उदाहरण के लिए हिंदी का शब्द है 'बेटा'। इसके लिए मराठी में 'मुलगा', तेलुगु में 'कोडुकु' तथा अंग्रेजी में 'सन' (Son) शब्द का व्यवहार किया जाता है। वस्तुतः ये सभी शब्द मात्र प्रतीक हैं, जो उस भाषा-भाषी के लिए रूढ़ हो चुके हैं और समाज में इन्हें स्वीकार किया जा चुका है। इसी तरह किसी भी भाषा के विभिन्न शब्द किसी न किसी अर्थ के लिए रूढ़ बना दिए जाते हैं। जैसे- खाट, मेज, रोटी, तवा, लोटा आदि। इन शब्दों का स्वतंत्र रूप में कोई अस्तित्त्व नहीं होता है। ये वास्तविक वस्तुओं के स्थान पर व्यवहृत प्रतीकात्मक भाषिक अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रतीक विज्ञान की संकल्पना प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक सस्यूर ने भाषाविज्ञान के एक अंग के रूप में की थी, जिसके अंतर्गत समाज द्वारा स्वीकृत प्रतीकों तथा उसके प्रकार्यात्मक संदर्भों का अध्ययन किया जाता है। उन्होंने इस (प्रतीक विज्ञान) कहा। ग्रीक के से बना है। का अर्थ है प्रतीक। "प्रतीक विज्ञान की मूल इकाई प्रतीक है। प्रसिद्ध प्रतीकशास्त्री पीयर्स के अनुसार 'प्रतीक वह वस्तु है, जो किसी के लिए किसी वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होती है'।" उदाहरण के लिए शब्द है 'कमल'। उच्चारित और लिखित रूप में 'कमल' वास्तव में 'कमल' नहीं है। वह 'कमल' नामक फूल का प्रतिनिधि शब्द है। यह ध्वनि प्रतीकों का यादृच्छिक क्रम मात्र है जिसका व्यवहार प्रयोगकर्ता वास्तविक 'कमल' के स्थान पर करता है। वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। "प्रतीक की अवधारणा त्रिवर्गीय संकेत संबंधों पर आधारित है। ये संबंध तीन इकाइयों के आधार पर बनते हैं। इन तीन इकाइयों को क्रमशः संकेतित वस्तु संकेतार्थ और संकेत प्रतीक कहा जाता है।" इन इकाइयों को क्रमशः वास्तविक वस्तु, यादृच्छिक अर्थ तथा ध्वनि प्रतीक (शब्द) भी कहा जा सकता है। इन इकाइयों को निम्नांकित आरेख द्वारा समझा जा सकता है।

डॉ. नगेंद्र का अनुवाद-सिद्धांत

डॉ. नगेंद्र द्वारा अनुवाद के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष पर एक संपादित ग्रंथ 'अनुवाद विज्ञान—सिद्धांत और अनुप्रयोग' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से 1993 में प्रकाशित हुआ जिसमें विभिन्न विद्वानों के कुल मिलाकर 41 अध्याय समाहित हैं जिनमें से पाँच अध्याय डॉ. नगेन्द्र द्वारा लिखित हैं– अध्याय-8 अनुवाद–प्रकृति और प्रकार, अध्याय-11 अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद–साधन-उपकरण, अध्याय-15 अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद की सामान्य समस्याएँ, अध्याय-16 सर्जनात्मक साहित्य-काव्य का अनुवाद, और अध्याय-41 अनुवाद का संपादन। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं पाँचों अध्यायों में व्यक्त डॉ. नगेंद्र के अनुवाद सिद्धांत विषयक विचारों को आधार बनाकर उनके अनुवाद सिद्धांत विषयक प्रदेय का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

1. अनुवाद–प्रकृति और प्रकार–डॉ. नगेंद्र ने 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'वद्' धातु में 'अनु' उपसर्ग और प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न 'अनुवाद' शब्द का सीधा अर्थ है- पुनर्कथन या पुनर्वाचन। संदर्भ के अनुसार 'पूर्वकथन के समर्थन या पोषण' तक इसका अर्थविस्तार हो जाता है। आजकल 'अनुवाद' शब्द अंग्रेजी के ट्रांसलेशन के पर्याय के रूप में परिनिष्ठित हो गया है। अंग्रेजी कोश के अनुसार 'ट्रांसलेशन' का सीधा अर्थ है- एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में व्यक्त करना। डॉ. नगेंद्र ने अनुवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है– "निकटतम पर्याय शब्दावली और वाक्य विन्यास के द्वारा स्रोत भाषा के मूल पाठ को समग्र रूप में अर्थात् उसके संपूर्ण प्रतिपाद्य विषय में तथा रूपबंध आदि की यथासंभव रक्षा करते हुए लक्ष्य भाषा में प्रतिष्ठापित करना ही अनुवाद है।"

अनुवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. नगेंद्र ने लिखा है कि अनुवाद पारिभाषिक अर्थ में न विज्ञान है और न कला। इसके अतिरिक्त उसे निश्चित रूप से शिल्प भी कहना तर्कसंगत नहीं होगा। वास्तविक स्थिति यह है कि आधार विषय के अनुसार अनुवाद में इन तीनों ही तत्त्वों का यथानुपात समावेश रहता है। साहित्यिक अनुवाद विशेष रूप से काव्यानुवाद का अंतर्भाव जहाँ कला में ही हो जाता है, वहाँ वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय अनुवाद में विज्ञान के आधार तत्त्वों का प्राधान्य रहता है जबकि शिल्प का प्रयोग प्रायः सर्वत्र ही मिलता है। इस प्रकार अनुवाद एक स्वतंत्र विधा है। अतः स्पष्ट है कि डॉ. नगेंद्र अनुवाद को एक स्वतंत्र विधा मानने के पक्षधर रहे हैं। पश्चिम में यह विधा अनुवाद विज्ञान के रूप में पहले ही मान्यता प्राप्त है।

अनुवाद के प्रकारों पर चर्चा करते हुए डॉ. नगेंद्र का मानना है कि अनुवाद भेदों का निर्णय कई तरह से किया जा सकता है- (1) भाषिक क्षेत्र के अनुसार,

(2) विषय के अनुसार, (3) विधा के अनुसार, (4) पद्धति या प्रक्रिया के अनुसार तथा (5) उद्देश्य या प्रयोजन के अनुसार। अनुवाद चूँकि दो भाषाओं के बीच होता है, फिर भी, उसका क्षेत्र एक और दो से अधिक भाषाओं तक विस्तृत हो सकता है और दूसरी ओर केवल एक भाषा की परिधि में भी सीमित रह सकता है। एक भाषा की परिधि में सीमित अनुवाद के विभिन्न रूप, कृति, भाष्य, टीका, तिलक आदि नाम से अभिहित किए जाते हैं। दो से अधिक भाषाओं में प्रस्तुत अनुवाद का भी प्रचलन पुराकाल से रहा है। विषय के अनुसार अनुवाद के दो व्यापक भेद हैं– (1) शास्त्रीय अनुवाद, और (2) साहित्यिक अनुवाद। शास्त्रीय अनुवाद के चार भेद किए जा सकते हैं– (1) वैज्ञानिक अनुवाद, (2) समाजशास्त्रीय अनुवाद, (3) मानविकी विधाओं का अनुवाद, और (4) तकनीकी अनुवाद। गणित और भौतिक विज्ञानों का अनुवाद वैज्ञानिक अनुवाद है, सामाजिक विज्ञान के विविध विषयों- अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि का अनुवाद समाजशास्त्रीय अनुवाद है, दर्शन, मनोविज्ञान आदि का अनुवाद मानविकी विधाओं के अनुवाद के अंतर्गत आता है और कार्यालय, पत्रकारिता आदि का अनुवाद तकनीकी अनुवाद है।

पद्धति और प्रक्रिया के अनुसार डॉ. नगेंद्र ने अनुवाद के तीन भेद माने हैं– (1) स्वच्छंद अनुवाद, (2) मूलानुवर्ती अनुवाद, और (3) शब्दानुवाद आदि।

उद्देश्य और प्रयोजन के आधार पर उन्होंने अनुवाद के कुछ प्रकार- भेद किए हैं, यथा- संपादित अनुवाद, संक्षिप्त अनुवाद, अनुकूलित अनुवाद, व्याख्यात्मक अनुवाद, संदर्भमूलक अनुवाद, पुनरनुवाद, मशीनी अनुवाद। अनुवाद के क्षेत्र के अंतर्गत डॉ. नगेंद्र ने भाषाविदों की मान्यता का समर्थन करते हुए तीन क्षेत्रों का उल्लेख किया है– (1) संकेतमूलक, (2) पाठमूलक, तथा (3) संदर्भमूलक। इस प्रकार अनुवाद के स्वरूप के संबंध में डॉ. नगेंद्र की दृष्टि एवं विचार पूर्णतः व्यापक एवं सर्वथा स्पष्ट हैं।

2. अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद–साधन-उपकरण–अनुवाद के साधन और उपकरणों की चर्चा अनुवाद सिद्धांतों के संदर्भ में सर्वथा अपेक्षित है। डॉ. नगेंद्र अनुवाद कार्य के लिए तीन गुणों की आवश्यकता स्वीकार करते हैं– (1) मूल विषय का ज्ञान, (2) स्रोत और लक्ष्य भाषाओं पर अपेक्षित अधिकार, और (3) अभ्यास। इनमें से अभ्यास को तो वे व्यक्ति सापेक्ष मानते हैं, लेकिन विषयज्ञान और भाषाज्ञान के लिए विशेष साधन-उपकरणों की उसी प्रकार आवश्यकता मानते हैं जिस प्रकार भौतिक निर्माण कार्य के लिए औजारों की आवश्यकता होती

है। विषयज्ञान की वृद्धि में मूल ग्रंथों के अतिरिक्त परिभाषा कोशों का अध्ययन आवश्यक होता है। अंग्रेजी में सभी विषयों के परिभाषा-कोश उपलब्ध हैं– भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, गणित, भूविज्ञान, नृविज्ञान आदि के लिए सहायक अनेक परिभाषा कोश उपलब्ध हैं जिनमें विषय से संबद्ध संकल्पनाओं की स्पष्ट व्याख्या दी ही है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों और मानविकी विषयों के लिए भी अंग्रेजी में अनेक परिभाषा कोश सहज प्राप्य हैं। हिन्दी में भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्त्वावधान में अनेक परिभाषा कोश प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। अंग्रेजी के विश्वकोशों–जैसे- 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका', 'एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' आदि की भी यथावश्यक सहायता ली जा सकती है। मूल या स्रोतभाषा अंग्रेजी और लक्ष्यभाषा हिन्दी के शुद्ध और सुष्ठु प्रयोग के लिए सहायक ग्रंथ है–

(1) बृहत् अंग्रेजी कोश–वैवस्टर, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, थिसारस आदिय (2) अंग्रेजी-हिन्दी कोश–कामिल बुल्के का अंग्रेजी-हिन्दी कोश, डॉ. बाहरी का अंग्रेजी हिन्दी कोश। इस संदर्भ में सबसे अधिक उपादेय है–वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित विभिन्न विषयों के पारिभाषिक शब्दावली संग्रह। कार्यालयों में प्रयुक्त अंग्रेजी वाक्यों और वाक्यांशों के हिन्दी अनुवाद सहज सुलभ कराने हेतु वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय आदि के कार्य सराहनीय एवं उपयोगी हैं। अनुवाद के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्ष से संबद्ध समस्याओ पर हिन्दी में अनुवाद सिद्धांत विषयक ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनके अध्ययन से, डॉ. नगेंद्र के अनुसार, अनुवाद कर्मी को सिद्धांत और व्यवहार की समस्याओं का समाधान करने में काफी सहायता मिल सकती है। अनुवाद मूलतः सिद्धांत का विषय न होकर व्यवहार का विषय है, अतः विभिन्न विषयों के अनूदित उपलब्ध ग्रंथों का अवलोकन भी उपादेय हो सकता है।

सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में साहित्य अकादमी आदि संस्थाएँ अच्छा कार्य कर रही हैं। अंग्रेजी के कथा-साहित्य, नाटक, आलोचना आदि विषयों के कतिपय प्रसिद्ध ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रंथों का सामान्य परिचय भी अनुवाद कर्मी का काफी मार्गदर्शन कर सकता है।

डॉ. नगेंद्र का मानना है कि अनुवाद भले ही सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में न आता होय फिर भी, उत्तम अनुवाद अनु-सर्जना तो है ही। सर्जना के, शक्ति, निपुणता और अभ्यास- ये तीन हेतु माने गए हैं। इनमें शक्ति या प्रतिभा का

योगदान सभी सर्जनात्मक कार्यों में रहता है और 'अनुसर्जना' रूप अनुवाद कर्म में भी उसकी प्रेरणा आवश्यक है। किंतु सर्जना के अन्य रूपों की अपेक्षा यहाँ 'निपुणता' और 'अभ्यास' का महत्व अपेक्षाकृत अधिक है। इन दोनों गुणों के विकास में अनुवाद के साधन-उपकरणों का प्रामाणिक ज्ञान निश्चय ही उपयोगी होगा।

3. अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद की सामान्य समस्याएँ—डॉ. नगेंद्र के अनुसार 'कथ्य में तथ्य' तथा विचार की प्रधानता और कथन प्रक्रिया में भाषा-शैली की ऋजुता के कारण ज्ञान के साहित्य का अनुवाद ललित साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा अधिक सरल होता है। ज्ञान के साहित्य अथवा सामान्य वाङ्मय का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने पर अनेक प्रकार की समस्याएँ सामने आती हैं। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए चार बातों की जरूरत होती है– (1) मूल या स्रोत भाषा अंग्रेजी पर अधिकार, (2) अनुवाद की भाषा या लक्ष्य भाषा पर अधिकार, (3) विषय का सम्यक् ज्ञान, और (4) अभ्यास। इन अर्हताओं से सम्पन्न व्यक्ति जब उपलब्ध साधन-उपकरणों से सम्पन्न होकर अनुवाद कार्य में संलग्न होता है तो उसके सामने समस्या आती है कि कहाँ से शुरू किया जाए। डॉ. नगेंद्र के अनुसार अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होने की सामान्यतः तीन प्रमुख विधियाँ हैं– (1) विषय क्रम, (2) अनुच्छेद क्रम, और (3) वाक्य क्रम। कुछ लोग शब्दक्रम का भी सहारा लेते हैं।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार अनुवाद-कर्म में उपयुक्त पर्याय के चयन की समस्या प्रमुख समस्या का रूप धारण करती है। अनुवादक के सामने प्रश्न आता है कि उपलब्ध पर्यायों में से वह किस का चयन करे। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का एक सीधा-सा शब्द है- इसके अनेक अर्थ हैं– सुंदर, अच्छा, उत्तम, सुसंस्कृत, सूक्ष्म, बारीक आदि। व्यक्ति का विशेषण होने पर फाइन के लिए उपयुक्त पर्याय होगा- अच्छा या सुसंस्कृत। He is a fine man – वह अच्छा आदमी है या सुसंस्कृत पुरुष है। भाषण आदि के संदर्भ में सही पर्याय होगा- सुंदर–It was a fine speech -कपड़े के लिए प्रयुक्त होने पर 'बारीक' पर्याय ही ग्राह्य हो सकता है। ये तीनों पर्याय अर्थ की दृष्टि प्रायः संबद्ध हैं, किन्तु का एक अर्थ होता है- जुर्माना। भाषा वैज्ञानिक जानता है कि इस अर्थ में शब्द एक धातु से उत्पन्न हुआ है, किंतु सामान्य प्रयोक्ता न इस तथ्य को जानता है और न उसे इसकी आवश्यकता है। अतः पर्याय निर्धारण का प्रमुख और मौलिक आधार है- संदर्भ। संदर्भ के द्वारा ही शुद्ध और उपयुक्त पर्याय का निर्णय संभव होता है। पर्याय

निर्धारण का दूसरा आधार है–अनुवाद की भाषा की प्रकृति और प्रायोगिक स्तर। हिन्दी की अपनी प्रकृति है। यद्यपि आधुनिक हिन्दी की गद्य शैली पर अंग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव रहा है, फिर भी, उसके वाक्यविन्यास, शब्दयोजना, वर्ण मैत्री आदि का पृथक वैशिष्ट्य है। संस्कृत और अंग्रेजी से भिन्न इसका अपना मुहावरा है, जो उसके स्वरूप को रेखांकित करता है। इसलिए अंग्रेजी के वाक्यांशों, मुहावरों और पर्यायों को भी उसकी इसी प्रकृति के अनुरूप ढालना आवश्यक होता है। प्रायोगिक स्तर से अभिप्राय है- भाषिक संरचना या शैली स्तर।

विशेषण–क्रिया विशेषण शब्दों, क्रियापदों, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, प्रत्यक्ष और परोक्ष कथन, मिश्रवाक्यों, मुहावरों और कहावतों के अनुवाद में अत्यंत सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। कहावत का शाब्दिक अनुवाद नहीं चल सकता। डॉ.नगेंद्र के अनुसार मुहावरों और कहावतों का अनुवाद करने के सामान्यत: तीन नियम हैं–

1. सही अर्थ का संप्रेषण करने वाले समानांतर मुहावरे या कहावत का प्रयोग किया जा सकता है, किंतु यदि समानांतर मुहावरा या कहावत शिष्ट भाषा में प्रयोग करने योग्य नहीं है तो उसके स्थान पर ऐसी व्याख्यात्मक शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए जो मूल के सर्वाधिक निकट हो।
2. समानांतर मुहावरा या कहावत न मिलने पर हिन्दी की प्रकृति के अनुसार उसकी व्याख्या प्रस्तुत करना ही उपयुक्त होता है।
3. यदि अंग्रेजी के मुहावरे का हिन्दी में शब्दानुवाद प्रचलित हो गया है तो उसका मुक्त भाव से प्रयोग किया जा सकता है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार सफल अनुवादक की सबसे पहली और अनिवार्य शर्त यह है कि उसमें मूल पाठ का यथार्थ बोध कराने की अर्थात उसका सही-सही अर्थ व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि अनुवाद में अभिप्रेत अर्थ के विषय में किसी प्रकार की भ्रांति, विचलन या संदेह की संभावना रहती है तो उसमें अन्य सभी गुण निरर्थक हो जाते हैं। अत: शब्द-शुद्धि और अर्थ-शुद्धि सफल अनुवाद की पहली आवश्यकता है। दूसरा गुण है दृ स्पष्टता और तीसरा गुण है दृ भाषिक स्वच्छता। अनुवाद की भाषा सुवाच्य और प्रवाहमयी होनी चाहिए। सफल अनुवाद का अंतिम और विशिष्ट गुण यह है कि उसमें अनुवाद की गंध नहीं होनी चाहिए। सिद्ध अनुवादक स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं पर अधिकार और निरंतर अभ्यास के बल पर इस गुण का यथाक्रम विकास कर लेता है। उसके अनुवाद को पढ़कर पाठक को ऐसा प्रतीत नहीं होना चाहिए कि वह

किसी अन्य पाठ का अनुवाद पढ़ रहा है। अतः निष्कर्षतः सफल अनुवाद की पहचान के गुण डॉ. नगेंद्र निम्नानुसार निर्धारित करते हैं—शुद्धता अर्थात् अर्थ और भाषा की शुद्धता, भाषिक स्वच्छता, प्रवाह और सुवाच्यता तथा अनुवाद की गंध से यथासंभव मुक्त होना।

4. सर्जनात्मक साहित्य दृ काव्य का अनुवाद—डॉ. नगेंद्र के अनुसार ज्ञान के साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद अधिक जटिल तथा कठिन होता है। ज्ञान के साहित्य के आधार तत्त्व-तथ्य और विचार जहाँ मूर्त तथा निश्चित होते हैं वहाँ सर्जनात्मक साहित्य के विधायक तत्त्व भाव और कल्पना सर्वथा सूक्ष्म-तरल होते हैं। तथ्य और विचार का तो संप्रेषण हो सकता है और होता है, किंतु भाव और कल्पना का उद्‍बोध ही किया जा सकता है, संप्रेषण नहीं। वास्तव में, उद्‍बोध ही उसका संप्रेषण है क्योंकि कवि सहृदय के चित्त में अपनी अनुभूति को ही उदबुद्ध करता है। काव्य का माध्यम बिम्बात्मक भाषा होती है, जो अर्थ बोध कराके सहृदय की कल्पना में भाव चित्र जगाकर कृतकार्य होती है। अतः सर्जनात्मक या ललित साहित्य के अनुवाद की प्रक्रिया निश्चय ही अधिक जटिल होती है। कविता सर्जनात्मक साहित्य का नवनीत है। उसकी संवेद्य अनुभूति 'सांद्र' और बिम्ब योजना अत्यंत संश्लिष्ट होती है, इसलिए उसे अनन्य उक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है।

डॉ. नगेंद्र का मानना है कि किसी भी काव्यकृति के दो घटक हमारे सामने आते हैं– (1) विषयवस्तु, और (2) शैली। उनका मंतव्य है कि व्यवहार की दृष्टि से काव्य कृति की विषयवस्तु और शैली को पृथक रूप में ग्रहण कर उसका अनुवाद या अनुवाद का प्रयत्न ही किया जा सकता है।

डॉ. नगेंद्र के अनुसार काव्य की विषयवस्तु का निर्माण मूलतः अनुभूति और विचार के आधार पर होता है। विचार का संप्रेषण, उसके सूक्ष्म रूप के कारण, निश्चय ही कठिन है। प्रत्येक धारणा, चाहे वह सही हो या गलत, अपने आपमें निश्चित तथा स्थिर होती है और सुधी अनुवादक बौद्धिक अभ्यास के द्वारा उसके तत्त्व को ग्रहण कर पारिभाषिक पर्यायों तथा यथावश्यक परिभाषा कोशों की सहायता से उसे अपनी भाषा में प्रस्तुत कर सकता है। अनुभूति के अनुवाद की कठिनाई यह है कि उसका स्वरूप अमूर्त होने के साथ-साथ तरल भी होता है। सूक्ष्म तरल पदार्थ का स्थानांतरण अपने आप में अत्यंत कठिन कार्य है। काव्यशैली का अनुवाद और भी अधिक असाध्य साधना है। काव्य भाषा का सौंदर्य प्रायः लक्षणा और व्यंजना पर आधारित रहता है। लक्षणा का रूपांतर करने

के लिए अनुवादक को ऐसे पर्यायों का चयन करना आवश्यक होता है जिनमें मूर्त विधान की क्षमता हो। इसी प्रकार, व्यंजना के अनुवाद के लिए वे ही पर्याय सार्थक हो सकते हैं, जो पाठक के चित्त में समान कल्पना जगा सकें।

काव्य भाषा का दूसरा प्रमुख घटक या आधार तत्त्व है दृ बिम्ब। ऐंद्रिय बोध के अनुसार सामान्यतः पाँच प्रकार के बिम्ब होते हैं– चाक्षुष या दृश्य बिंब, श्रौत या नाद बिम्ब, रस्य या आस्वाद्य बिम्ब, स्पर्श बिंब और घ्राण या गंध बिंब। इनमें से दृश्य बिंबों का उनके मूर्त रूप के कारण अनुवाद सबसे सरल होता है यथा–

Rosy Cheeks = गुलाबी गाल, = नीला आकाश, = श्यामल नेत्र, = काली रात आदि। रस्य या आस्वाद बिम्ब का अनुवाद भी उपयुक्त पर्यायों द्वारा हो जाता है, यथा = मधुर स्वर, = कटु प्रतिक्रिया, = कड़वी बात आदि। इसी तरह स्पर्श बिंबय यथा = रेशमी स्पर्श, = वज्रबधिर आदि। गंध बिंब यथा = दुर्गंधपूर्ण वातावरण आदि। अतः बिंबों के अनुवाद में अनुवादक को पर्याप्त सावधानी बरतनी होती है।

काव्य भाषा का एक अन्य आवश्यक आधार तत्त्व है अलंकार। उपमान और बिंब अलंकार के उपजीवी हैं। अलंकार के दो भेद हैं अर्थालंकार और शब्दालंकार। इनमें अर्थालंकारों के अनुवाद का सार्थक प्रयत्न किया जा सकता है। सादृश्यमूलक अलंकार सबसे कम कठिनाई उत्पन्न करते हैं। वैषम्यमूलक अलंकारों का अनुवाद अपेक्षाकृत जटिल होता है। अन्य अलंकारों का अनुवाद अत्यंत जटिल होता है, जो अर्थ-संदर्भों के अतिरिक्त भाषिक संस्कार पर भी निर्भर करते हैं। शब्दालंकार वर्ग के श्लेष, यमक आदि का भाषांतर प्रायः असंभव ही होता है।

छंद कविता का आवश्यक साधन-उपकरण है। अंग्रेजी तथा दूसरी यूरोपीय भाषाओं का संगीतिक आधार भिन्न होने से पाश्चात्य छंदों का अनुवाद हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में प्रायः दुःसाध्य ही होता है। अतः कविता का अनुवाद एक प्रकार की असाध्य साधना ही है। डॉ. नगेंद्र ने काव्यानुवाद को असाध्य साधना नहीं तो दुःसाध्य साधना माना है।

5. अनुवाद का संपादन–अनुवाद संपादन के संबंध में डॉ. नगेंद्र का मत है कि अनुवाद के संदर्भ में 'संपादन' शब्द को सामान्य अर्थ में ग्रहण नहीं किया जा सकता। सामान्य अर्थ में संपादक को मूल पाठ का पुनरीक्षण या संशोधन करने के अतिरिक्त उसमें काट-छाँट करने और क्रम परिवर्तन आदि का अधिकार प्राप्त

है, किंतु अनुवाद के संपादन के संदर्भ में यह अर्थ ग्राह्य नहीं है। अनुवादक की तरह अनुवाद संपादक को भी मूल पाठ से विचलन का अधिकार सामान्यतः प्राप्त नहीं है। वह मूल पाठ में काट-छाँट नहीं कर सकता, क्रम परिवर्तन भी उसी स्थिति में कर सकता है जब मूल पाठ का अर्थ संप्रेषण बाधित हो रहा हो। अतः उसके अधिकार की परिधि पुनरीक्षण और संशोधन तक ही प्रायः सीमित है। पुनरीक्षण के दो अंग हैं—विषय पुनरीक्षण और भाषा पुनरीक्षण। विषय पुनरीक्षण के लिए विषय का विश्लेषण होना तो सर्वथा आवश्यक है ही, साथ ही, मूल और लक्ष्य भाषा का सम्यक ज्ञान भी आवश्यक है। अतः पुनरीक्षण का दायित्व सामान्यतः ऐसे विद्वानों को ही देना चाहिए जो विषय के अधिकारी होने के साथ-साथ अनुवाद-भाषा की प्रकृति, शब्दावली तथा प्रयोग भंगिमाओं से परिचित हों। जहाँ एक ही व्यक्ति में ये दोनों गुण न हों, वहाँ एक विषय विशेषज्ञ और एक भाषाविद् को संयुक्त रूप से यह दायित्व सौंपा जा सकता है। ऐसी स्थिति में डॉ. नगेंद्र के अनुसार आदर्श व्यवस्था तो यह होगी कि दोनों विद्वान साथ-साथ बैठकर कार्य करें, किंतु जहाँ यह संभव न हो वहाँ विषय पुनरीक्षण और भाषा पुनरीक्षण पृथक रूप से किया जा सकता है। किंतु ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि विषय पुनरीक्षण को भाषा का तथा भाषा पुनरीक्षण को विषय का कार्य साधक ज्ञान अनिवार्यतः होना चाहिए।

भाषा पुनरीक्षण का ध्यान सबसे पहले पर्याय चयन पर जाता है। तदुपरांत, अंग्रेजी में प्रचुरता से प्रयुक्त कर्मवाच्य वाक्यों के हिन्दी अनुवाद पर ध्यान देना होता है। इसी श्रृंखला में प्रत्यक्ष-परोक्ष कथन का प्रसंग भी आता है। अंग्रेजी में प्रत्यक्ष-परोक्ष कथन के विषय में निश्चित व्याकरणिक नियम है जिसका निर्वाह हिन्दी में सर्वथा अव्यवहार्य और भ्रामक हो जाएगा।

भाषा पुनरीक्षक के सामने एक बड़ी समस्या मिश्र वाक्यों के अनुवाद के प्रसंग में आती है। अंग्रेजी में कर्म क्रियापद के बाद आता है। अतः कर्म से संबद्ध उपवाक्यों की श्रृंखला का विनियोग सामान्य रूप से हो जाता है, यद्यपि वहाँ भी दो से अधिक उपवाक्यों का समावेश ठीक तरह नहीं हो पाता। इधर हिन्दी में कर्म पहले और क्रियापद बाद में आता है। अतः क्रियापद के बीच में पड़ जाने से कर्म और उससे संबद्ध उपवाक्यों के बीच में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है और दोनों की सहज संगति बाधित हो जाती है। उदाहरण के लिए - दिस ब्रिज, व्हिच इज द लार्जेस्ट ब्रिज इन अवर जोन, वाज बिल्ट अंडर द सुपरविजन ऑफ मिस्टर केले, हू वाज ए फेमस आर्किटेक्ट ऑफ दोज टाइम्स। इसका यथावत् अनुवाद

होगा दृ इस पुल का, जो हमारे क्षेत्र का सबसे बड़ा पुल है, निर्माण श्री केले के निरीक्षण में हुआ था, जो उस समय के प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी थे। व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होने पर भी, यह वाक्य सुपाठ्य न होने के कारण हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। यह वाक्य रचना इस प्रकार की जा सकती है– इस पुल का निर्माण श्री केले के निरीक्षण में हुआ था जो उस समय के प्रसिद्ध वास्तु शिल्पी थे। यह पुल हमारे क्षेत्र का सबसे पड़ा पुल है। या क्रम में परिवर्तन कर यह लिखा जा सकता है यह हमारे क्षेत्र का सबसे बड़ा पुल है। इसका निर्माण श्री केले के निरीक्षण में हुआ था, जो उस समय के प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी थे।

मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद भी एक जटिल प्रश्न है। अतः अनुवाद पुनरीक्षक को इस संबंध में समाधान अत्यंत सावधानी से करना चाहिए। साथ ही वर्तनी की एकरूपता का ध्यान भी पुनरीक्षक को रखना होता है। डॉ. नगेंद्र का मानना है कि इन नियमों का मूल संबंध अनुवादकार्य के साथ है, किंतु भाषा पुनरीक्षक के लिए भी उन पर ध्यान देना उतना ही, बल्कि उससे भी ज्यादा जरूरी है। भाषा-शुद्धि के बाद पुनरीक्षक के सामने एक अंतिम और महत्वपूर्ण प्रश्न अनुवाद के समग्र रूप की समीक्षा का आता है। इसके अंतर्गत दो विशेष गुणों का आकलन करना होता है– (1) प्रवाह और सुवाच्यता, और (2) अनुवाद की गंध का अभाव। डॉ. नगेंद्र के मतानुसार, यहाँ पुनरीक्षक मूल पाठ का ध्यान किए बिना ही अनूदित पाठ को पढ़कर यह देखता है कि–

1. अनुवाद की भाषा प्रवाहमयी है या नहीं।
2. अनूदित पाठ अपने स्वतंत्र रूप में सुपाठ्य है या नहीं, और
3. कुल मिलाकर उसमें अनुवाद की गंध तो नहीं आती।

इन तीनों विशेषताओं के विषय में आश्वस्त हुए बिना पुनरीक्षक या व्यापक रूप में कहें संपादक का दायित्व पूरा नहीं होता।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ. नगेंद्र ने अनुवाद के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष पर साधिकार लेखनी चलाई है। अनुवाद का स्वरूप, प्रकृति और प्रकार, अनुवाद के उपकरण, अनुवाद की समस्याएँ, काव्यानुवाद की समस्याएँ, अनुवाद पुनरीक्षण और संपादन आदि विषयक उनके विचार अनुवाद के क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए पथ प्रदर्शक रूप में हैं। अतः इस दृष्टि से डॉ. नगेंद्र का अनुवाद सिद्धांत विषयक प्रदेय अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा सम्पादित 'अनुवाद विज्ञान–सिद्धांत और अनुप्रयोग' विषयक ग्रंथ अनुवाद सिद्धांत और व्यवहार विषयक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रंथ है।

अनुवाद का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

अनुवाद भूमंडलीकरण के युग में एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और भौगोलिक सेतु का कार्य कर रहा है जिसके माध्यम से भाषाई संप्रेषण एवं ज्ञान के विस्तार को प्रमुखता मिल रही है। वर्तमान तकनीकी युग में अनुवाद का योगदान बहुत ही बुनियादी रूप में हैं। अनुवाद चूँकि एक भाषाई विनिमय की प्रक्रिया है इसलिए इसके सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का महत्त्व भी उतना ही है। अनुवाद की सैद्धांतिकी के संदर्भ में आज के समय में कई पुस्तकें अध्ययन जगत में उपलब्ध हैं, लेकिन अनुवाद की सैद्धांतिकी को जानने हेतु समीक्षा के लिए डॉ. जी. गोपीनाथन द्वारा लिखित पुस्तक 'अनुवाद- सिद्धान्त एवं प्रयोग' का महत्त्व विषम भाषा-भाषी समाज के संबंध में है। लेखक मूलतः दक्षिण भारतीय (मलयालमभाषी) हैं। इन्होंने अलीगढ विश्वविद्यालय में पढाई के उपरांत कोचिन विश्वविद्यालय में अनुवाद पाठ्यक्रम (1969-71) में अध्यापन कार्य किया तथा विषम भाषा-भाषी समाज के संबंध में अनुवाद की भाषावैज्ञानिक समस्याओं से परिचित हुए। उसके बाद लेखक ने देश-विदेश में अध्ययन तथा अध्यापन के जरिए अनुवाद से जुड़ी समस्याओं पर विश्लेषण एवं शोध को जारी रखा।

लेखक ने इस पुस्तक में मूल रूप से अनुवाद के सिद्धान्त एवं उसके व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। पुस्तक में यह दिखाया गया है कि अनुवाद किस तरह यूरोपीय देशों से उभरकर भारत में आया और वह किस तरह सांस्कृतिक सेतु का माध्यम बना साथ ही अनुवाद को भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हुए उदाहरणों के साथ स्पष्टीकरण भी दिया गया है।

समीक्ष्य पुस्तक के प्रथम अध्याय 'अनुवाद-एक सांस्कृतिक सेतु' में लेखक ने स्पष्ट किया है कि, 'अनुवाद मानव सभ्यता के साथ विकसित ऐसी तकनीक है, जिसका अविष्कार मनुष्य ने बहुभाषिक स्थिति की विडम्बनाओं से निपटने के लिए किया है।' इसी संदर्भ में 'बेबल' कथा का उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है कि 'मानव ने जब शिनार देश में एक अपूर्व नगर एवं मीनार बनाकर यहोवा से टक्कर लेना चाहा तो उसने उनकी भाषा में भेद उत्पन्न किए जो आपसी फूट का कारण बना'। इसी के फलस्वरूप अनुवाद को एक नई दिशा एवं गति मिली। उन्होंने स्पष्ट किया है कि अनुवाद के सहारे ही विश्वसाहित्य का निर्माण हुआ और यूरोप के नवजागरण में ग्रीक एवं लैटिन ग्रंथों के अनुवाद की महत्वपुर्ण भूमिका रही है। भारतीय में भी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ग्रंथों के अनुवादों ने विश्व की भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति के विभिन्न आयाम को

विकसित किया है। अनुवाद ने विश्व में वसुधैवकुटुम्बकम की भावना विकसित कर संपूर्ण एकता एवं समझदारी की भावना विकसित की है।

'अनुवाद का स्वरूप एवं प्रक्रिया' अध्याय में लेखक ने बताया कि अनुवाद दो भाषाओं के बीच संप्रेषण की प्रक्रिया है जिसके लिए अंग्रेजी में 'ट्रांसलेशन', फ्रेंच में 'ट्रडूक्शन', अरबी में 'तर्जुमा' आदि शब्द का प्रयोग किया जाता है। फिर लेखक ने अनुवाद की परिभाषा को और भी सरल और स्पष्ट किया है। 'पहले किसी भाषा में लिखी गयी या कही गयी बात को बाद में किसी अन्य भाषा में लिखना या कहना' अर्थात भाषा के बदलाव के साथ स्रोत भाषा में कही गई बात की आत्मा में कोई बदलाव ना आते हुए उसे लक्ष्य भाषा में मूल भाषा की तरह अनूदित करना ही इसकी सार्थकता है।

जिस प्रकार नाइडा ने अनुवाद प्रक्रिया में अर्थ की महत्ता और प्रतीकों पर ध्यान केन्द्रित करने की बात कही है उसी प्रकार डॉ. गोपीनाथन ने भी अनुवाद में अर्थ संप्रेषण की प्रक्रिया एवं उसके अन्य पहलुओं पर महत्व दिया। अनुवादक, अनुवाद में अर्थ को बनाए रखते हुए अन्य भाषा में अन्तरण करता है, लेकिन इस अनुवाद में मूल प्रभाव का कुछ अंश नष्ट होने की संभावना रहती है। इसलिए अनुवादक को ऐसे उपयुक्त शब्दों को चुनना चाहिए जिनके माध्यम से मूल के अर्थ को संप्रेषित किया जा सके।

'अनुवाद–एक वैज्ञानिक कला' अध्याय में लेखक ने अनुवाद का विश्लेषण, वैज्ञानिक दृष्टि से करते हुए बताया कि अनुवाद को प्राचीन काल से कुछ विद्वान कला मानते आए हैं, तो आधुनिक युग में कुछ विद्वान उसे विज्ञान मानते हैं, वहीँ कुछ लोग अनुवाद को कला या विज्ञान न मानकर उसे शिल्प (Craft) मानते हैं। अनुवाद को कला मानने के पक्ष में थियोडर सेवरी ने अपने 'अनुवाद की कला' नामक ग्रंथ में अनुवाद के संदर्भ में 'निकटतम समतुल्यता' का महत्व बताया है। उनके अनुसार अनुवादक, अनुवाद में सहज समतुल्यता के आधार पर उपयुक्त शब्दों और पर्यायों का चुनाव करता है, जिससे अनुवादक का ज्ञान आधारित व्यक्तित्त्व भी अनुवाद में प्रकट होता है और उसकी एक शैली भी होती है। अनुवाद को कला मानने का मुख्य आधार मूल कृति की आत्मा को अनुवाद में उतारने के काम को एक कला बताया है।

अनुवाद को विज्ञान मानने वाले विद्वान इस पुस्तक में अस्पष्ट है। लेकिन कहते है। कि अनुवाद एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें अद्यतन कुछ निश्चित नियमों को मानकर चलना पड़ता है और अनुवादक को तटस्थ होकर, सत्यनिष्ठा के साथ, ईर्ष्या,

द्वेष अथवा अंधभक्ति से बचकर अनुवाद करना होता है। अनुवाद को शिल्प (ब्रॉजि) मानने के पक्ष में पीटर न्यूमार्क हैं। उनके अनुसार आज अनुवाद की सामग्री तथ्यात्मक, सूचनात्मक और तर्कपूर्ण है। विशेषकर पत्रकारिता, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा विज्ञान के क्षेत्र में आज तत्काल अनुवाद की माँग बढ़ गयी है और अनुवाद को यांत्रिक तत्परता से करना पड़ रहा है अतः अपने इसी तकनीकी चरित्र के कारण वह प्रायः एक शिल्प है। वहीँ इयान फिनले के अनुसार अनुवाद शिल्प और कला दोनों ही है।

'अनुवाद के प्रकार' अध्याय में विषय वस्तु के रूप में अनुवाद के दो प्रकार 'साहित्यिक अनुवाद' और 'साहित्येतर अनुवाद' बताए हैं। साहित्यिक अनुवाद में काव्यानुवाद, नाटकानुवाद, कथा साहित्य का अनुवाद तथा गद्यरूपों में जीवनी, आत्मकथा, निबंध, आलोचना डायरी, रेखाचित्र संस्मरण आदि का अनुवाद किया जाता है। उनमें लेखक ने काव्यानुवाद पर प्रकाश डाला है, काव्यानुवाद करना एक कठिन कार्य है जिसमें मिथक, आलंकारिक भाषा, काव्यपरंपरा आदि का प्रयोग किया जाता है। जो यह काम एक अत्यंत संवेदनशील अनुवादक ही कर सकता है 1भारतीय भाषाओं के काव्यों के अनुवाद के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा गीतांजली के अनुवाद में प्रयुक्त मुक्त छन्द का एक अच्छा नमूना कहा जाता है।

नाटकानुवाद में अभिनय एवं संवाद, सांस्कृतिक परिवेश, पात्र की भाषा शैली आदि पर भी लेखक ने विचार स्पष्ट किए हैं। कथासहित्य के अनुवाद में भी भाषा की समस्याएँ, पात्र नामों के उच्चारण एवं लक्ष्य भाषा में अनुलेखन से लेकर आचंलिक शब्द प्रयोगों के लिए समान शब्दों के प्रयोग पर समस्याएँ बताकर व्यावहारिक समाधान निकाला है। पात्र नामों के अनुलेखन में रूसी, फ्रेंच आदि भाषाओं से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय समस्याएँ उत्पन होती है। उदाहरण के लिए पुस्तक में रूसी में प्रत्येक नाम का लघु रूप स्पष्ट किया जो मूल से थोड़ा भिन्न होता है–

जैसे– न्यूरा– अन्ना का लघु रूप

सोन्या– सोफ्या का लघु रूप

मीषा– मिखाइल का लघु रूप

पहले नाम में कुछ अंश अतिरिक्त आत्मीयता एवं प्यार की भावना जुड़ी है जिसे भारतीय भाषाओं द्वारा सूचित करना कठिन होता है। कथा साहित्य में नदी, पहाड़, स्थान एवं व्यक्ति नामों के लिप्यंतरण और ध्वन्यानुकूलन की समस्याएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

साहित्येतर अनुवाद में वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद, वाणिज्य अनुवाद, मानविकी विषयों के अनुवाद लोकप्रिय होते हैं। इनकी भाषा सरल एवं स्पष्ट होती हैं। शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन के साथ-साथ सभी विकासशील देशों में इन विषयों के ग्रंथों के अनुवाद की आवश्यकता बढ़ गयी है। समाचार के शीर्षकों के अनुवाद में तथा वाक्यरचना में रोचकता, सरलता एवं बोधगम्यता के साथ भाषा की प्रकृति का ध्यान रखने की बात लेखक कहते हैं। साथ ही शीर्षकों के बारें में आम सुझाव भी दिया है कि अंग्रेजी शब्द से नकल न करते हुए स्वतन्त्र रूप से उचित एवं आकर्षक शीर्षक दिए जाएं और वाक्यरचना में मूल के क्रम पर ध्यान न देकर लक्ष्य भाषा की स्वाभाविक वाक्यरचना को अपनाना चाहिए।

प्रशासनिक अनुवाद में प्रशासनिक शब्दावली की कठिनाई पर लेखक का मानना है कि अंग्रेजी के शब्द के लिए कभी-कभी भारतीय भाषाओं में एकाधिक शब्द मिलते हैं।, जिनका प्रयोग प्रसंगानुसार किया जाना चाहिए। जैसे- गोपनीय, अंतरंग, अभिरूचि, हित, स्वार्थ, ब्याज, वृद्धि आदि शब्द के अर्थ होते हैं। जिनका प्रयोग उचित शब्दों का चयन कर प्रसंगानुरूप करना चाहिए।

'अनुवाद प्रक्रिया के तकनीकी पहलू' अध्याय में लेखक ने बताया कि स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार के लिए अनुवादक को दोनों भाषा का जानकार होना चाहिए। साथ ही अनुवादक को विषय का सम्यक ज्ञान भी होना आवश्यक है वह विषय तकनीकी हो, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक हो सकता है। लेकिन अनुवादक को तटस्थता के साथ मूल लेखक के प्रति पाठनिष्ठ रहते हुए अनुवाद करने की क्षमता होनी चाहिए। अनुवादक संपूर्ण स्रोत सामग्री को विषयगत और भाषागत दृष्टि से समझने के बाद उसका अनुवाद मूल जैसा करता है। जिस पर लेखक ने व्यावहारिक समाधान भी दिया है।

'यूरोप में अनुवाद सिद्धान्तों का विकास' अध्याय में लेखक ने बताया कि यूरोप में अनुवाद सिद्धान्तों का विकास किस तरह हुआ। यह प्रमुख रूप से बाइबिल तथा ग्रीक एवं लैटिन ग्रंथों के अनुवाद के संदर्भ में हुआ है। यूरोपीय देशों में विभिन्न विद्वानों ने अनुवाद के इतिहास के बारे में सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है, लेकिन उनमें प्रमुख अनुवाद विदों का परिचय इस प्रकार दिया है-

सेंट जेरोम-रोम के प्रसिद्ध अनुवादक थे, जिन्होने बाइबिल का अनुवाद करने के साथ-साथ अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष पर भी विचार किया।

मार्टिन लूथर—मार्टिन लूथर मध्य युग के प्रमुख चेतना संपन्न क्रांतिकारी थे जिन्होंने सन–1522 में लैटिन से जर्मन भाषा में बाइबिल का अनुवाद कर बहुत बडी क्रांति की और अनुवाद की बोधगम्यता पर बल दिया।

ड्राइडन—अंग्रेजी भाषा में ड्राइडन ही पहले व्यक्ति है। जिन्होंने अनुवाद को कला के रूप में मान्यता देते हुए अनुवाद में निश्चित सिद्धान्तों का पालन करने के लिए अनुवाद के तीन प्रकार—शब्दानुवाद, भावानुवाद और अनुकरण को बताया।

एलेक्जेंडर पोप—पोप के विचार ड्राइडन के विचारों से काफी साम्यता रखते हैं, उनके अनुसार कोई भी शाब्दिक अनुवाद मूल का उत्तम अनुवाद नहीं हो सकता और भावानुवाद में भी मूल के किसी तरह का परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

थियोडर सेवेरी ने अपने ग्रंथ में अनुवाद के बारे में लिखा—

1. अनुवाद मूल के शब्दों पर आधारित होना चाहिए।
2. अनुवाद में मूल की शैली प्रतिबिंबित होनी चाहिए।
3. अनुवाद मूल समसार्मायिक रचना जैसा होना चाहिए।
4. अनुवाद में मूल से कुछ भी घटाया या बढाया नहीं जा सकता।

विभिन्न यूरोपीय विद्वानों के विचारों का प्रभाव अनुवाद के सिद्धान्त पर पड़ा है। इसी के रूप में अनुवाद के समकालीन सिद्धान्त, अनुवाद की समस्याओं के भाषावैज्ञानिक अध्ययन की उपज कहा गया है।

'अनुवाद की भाषावैज्ञानिक समस्याएँ—सैद्धांतिक रूपरेखा' अध्याय में लेखक ने अर्थपरक समस्याओं पर विचार किया है। जिनमें सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं। 1 अनुवाद में अर्थ की सबसे बड़ी समस्यां सामाजिक–सांस्कृतिक तत्त्वो के अन्तरण में उत्पन्न होती है। मैलिनोव्स्की आधुनिक युग के प्रसिद्ध नृतत्त्वविज्ञानी है, जिन्होंने अनुवाद प्रक्रिया में शब्दों की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से जुड़ी समस्या पर गंभीरता से विचार किया है। उन्होंने 'साहचर्य का संदर्भ सिद्धान्त' को नया रूप दिया। उनके अनुसार अनुवाद की प्रमुख कठिनाई का कारण शब्दों के पीछे निहित सांस्कृतिक संदर्भ है। यह सांस्कृतिक संदर्भ उसके बोलने वालों के रीति–रिवाज, आचार–विचार आदि पर आधारित है। इस कारण मैलिनोव्स्की के अनुसार अनुवाद से मतलब "सांस्कृतिक संदर्भो का ऐक्य अथवा समतुल्यता" से है।

अनुवाद की शैलीपरक समस्या में लेखक कहते हैं। कि भाषा शैली के सन्दर्भ में अनुवाद की शैलीगत कई सामान्य समस्याएँ आती हैं।, जबकि प्रत्येक लेखक की अपनी अलग शैली होती है। जैसे- प्रेमचन्द, नेहरू या गांधी की रचनाओं के अनुवाद में भिन्न-भिन्न शैलियों को अपनाना पड़ेगा। अनुवाद में कैटफोर्ड ने भी शैली की समस्याएँ में स्वनीम स्तरीय, शब्द स्तरीय, रूप स्तरीय और वाक्य स्तरीय समस्याएँ बतायी हैं।

'अनुवाद की भाषावैज्ञानिक समस्याएँ'–एक अनुप्रयोग' अध्याय में लेखक ने अनुवाद के स्वरूप को स्पष्ट किया है जिसमें हिंदी और मलयालम भाषा के उदाहरण दिए गए है। अनुवाद में अर्थ की समस्या में आने वाले अभिधेय अर्थ से व्यंगार्थ अर्थ की समस्या को उठाया गया है। अनुवाद में कई स्थलों पर अभिधेयार्थ के साथ लक्ष्यार्थ और व्यंगार्थ को भी लक्ष्य पाठ में संप्रेषित करना पड़ता है। उसमें शब्दानुवाद की भी समस्या आती है जिनमें एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। हिंदी 'रंग' शब्द के अनुवाद में 'रंग' शब्द के अनेक प्रयोग होते है, जिनमें से कुछ प्रयोग इस प्रकार दिए गए है– रंग पकड़ना, रंग देना, रंगीन का शब्दानुवाद अन्य भाषाओं में हो सकता है, परंतु अन्य प्रयोगों का शब्दानुवाद करने पर उनमें निहित व्यंगार्थ या ध्वनि नष्ट हो जाती है। जिसके लिए संदर्भ के अनुसार शब्द का चयन करने के लिए लेखक कहते हैं।

भारत में परिवार और उसके विविध रूप अपना विशेष महत्त्व रखते हैं ए 'रिश्ते-नाते' की शब्दावली के अनुवाद में लेखक बताते है कि इस तरह की शब्दावली में एक पूरी सामाजिक व्यवस्था होती है। केरल में मातृ-सत्तात्मक ढाँचे के कारण पहले सम्पति का अधिकारी भानजा या भानजी होती थी। वे अपने मामा के साथ रहते थे, लेकिन अब यह प्रथा बदल रही है, परन्तु विवाह अब भी मामा, फूफी आदि के पुत्र-पुत्री से हो सकता है। इसी प्रकार हिंदी के 'दादा' 'बाबा' का संबोधन मलयालम में नहीं होते। हिंदी समाज में चाचा को अधिक आदर दिया जाता है, जिसमें 'नेहरू चाचा' का प्रयोग करते है, वैसे मलयालम में इसका अनुवाद करते समय 'नेहरू मामन' या 'नेहरू अम्मावन' का प्रयोग करना पड़ेगा क्योंकि मलयालम समाज 'मामा' को अधिक आदर देते हैं।

किसी भी भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों की भूमिका चाहे-अनचाहे रूप में अवश्य ही रहती है। उस भाषा में कहावतें-मुहावरे इत्यादि उसकी भाषिक सुन्दरता का प्रमाण होती हैं। डॉ. गोपीनाथन ने मुहावरों के अनुवाद की समस्याओं के सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप के विश्लेषणपरक समाधान बताया है कि जहाँ

लक्ष्य भाषा में स्रोतभाषा के मुहावरे के लिए समान मुहावरा मिलता हो उसे अनुवादक को प्रयोग करना चाहिए। साथ ही जहाँ पूर्ण रूप से समान मुहावरा न मिले वहाँ पर अर्थ की दृष्टि से लगभग समीप के मुहावरे से प्रतिस्थापन किया जाना चाहिए। लेखक ने लिप्यंतरण में उच्चारण से ज्यादा वर्तनी पर ध्यान दिया है। उदाहरण के लिए मलयालम में 'ट' का उच्चारण हिंदी के 'ड' जैसा होता है, परंतु लिप्यंतरण में भाषा के अनुसार भिन्नता देखने को मिलती है। कुछ शब्दों को हिंदी से मलयालम भाषा में भिन्न-भिन्न रूपों में लिखा जाता है–

1. हिंदी मलयालम
2. थामस तोमस
3. जान जीण
4. कनाड़ा क्यानड़ा
5. वाल्जाक बाल्साक

लेखक ने ध्वन्यानुकुल की समस्या से निपटने के लिए व्यावहारिक समाधान के महत्व पर कुछ विश्लेषणात्मक पहलुओं को बताया है।

1. अनुवादक को आगत शब्दों का अन्तरण करते समय लक्ष्य भाषा में उस शब्द का जो स्वभाविक उच्चारण हो उसे अपनाने को कहा। जैसे शब्द को हिंदी में 'हाई स्कूल' और मलयालम में 'हैस्कूल' लिखना चाहिए।
2. यदि मूल शब्द के वास्तविक उच्चारण से भिन्न उच्चारण लक्ष्य भाषा में पहले से प्रचलित हो तो उसे उसी रूप में लेना चाहिए। यदि ऐसा कोई भी शब्द भाषा में पहले से प्रचालित हो तो उसे उसी रूप में लेना चाहिए।
3. लक्ष्य भाषा में एक से अधिक उच्चारण प्रचालित हों तो उनमें से अधिक प्रचलित उच्चारण को अनुवादक प्रयोग कर सकता है। जैसे, हिंदी में रेस्टोरेंट, रेस्तोरां, रेस्रा आदि प्रचलित है, उनमें से अनुवादक 'रेस्रा' को अपना सकता है।

संक्षेप में अनुवाद की उपर्युक्त अर्थपरक, सांस्कृतिक एवं शैलीपरक समस्याओं में आधुनिक भाषाविज्ञान इन समस्याओं के समाधान करने में अनुवादक की सहायता करता है जिसमें इस समस्या के समाधान के साथ उसके व्यावहारिक प्रयोग को भी स्पष्ट किया है।

क्षेत्र

'यथासम्भव अधिकतम पाठ प्रकारों के लिए एक उपयुक्त तथा सामान्य अनुवाद प्रणाली का निर्धारण' ये अनुवाद के क्षेत्र सम्बन्धित एक विचारणीय प्रश्न

माना जाता है। प्रणाली के निर्धारण के सम्बन्ध में अनुवाद प्रक्रिया की प्रकृति, अनुवाद (वस्तुतः अनुवाद कार्य) के विभिन्न प्रकार, अनुवाद के सूत्र तथा विभिन्न कोटि के पाठों के अनुवाद के निर्देश निश्चित करने के प्रारूप का निर्धारण, आदि पर विचार करना होता है। अनुवाद का मुख्य उद्देश्य, अनुवाद की इकाई, अनुवाद का कला-कौशल-विज्ञान का स्वरूप, अनुवाद कार्य की सीमाएँ, आदि कुछ अन्य विषय हैं, जिन पर विचार अपेक्षित होता है।

मूलभाषा का ज्ञान

अनुवाद कार्य का मेरुदण्ड है मूलभाषा पाठ। इसकी संरचना, इसका प्रकार, भाषाप्रकार्य प्रारूप के अनुसार मूलपाठ का स्वरूप निर्धारण, आदि के साथ शब्दार्थ-व्यवस्था एवं व्याकरणिक संरचना के विश्लेषणात्मक बोधन के विभिन्न प्रारूप, उनकी शक्तियों और सीमाओं का आकलन, आदि के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक चर्चा तथा इनके संक्रियात्मक ढाँचे का निर्धारण, इसके अन्तर्गत आने वाले मुख्य बिन्दु हैं। अनुवाद सिद्धान्त के ही अन्तर्गत कुछ गौण बिन्दुओं की चर्चा भी होती है - रूपक, व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, पारिभाषिक शब्द, आद्याक्षर (परिवर्णी) शब्द, भौगोलिक नाम, व्यापारिक नाम, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के नाम, सांस्कृतिक शब्द, आदि के अनुवाद के लिए कौन-सी प्रणाली अपनाई जाए, साहित्यिक रचनाओं, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय लेखन, प्रचार साहित्य आदि के लिए अनुवाद प्रणाली का रूप क्या हो, इत्यादि।

विविध शास्त्रों का ज्ञान

इसी से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, अनुवाद की विभिन्न युक्तियाँ - लिप्यन्तरण, शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद, शब्दानुगामी अनुवाद, आगत अनुवाद, व्याख्या, विस्तरण, संक्षेपण, सांस्कृतिक पर्याय, स्वभाषीकरण आदि। अनुवाद का काम अन्ततोगत्वा एक ही व्यक्ति करता है। एकाकी अनुवाद में तो अनुवादक अकेला होता ही है, सहयोगात्मक अनुवाद में भी, अन्तिम अवधि में, सम्पादन का कार्य अनुवादक को अकेले करना होता है। अतः अनुवादक के साथ अनेक दायित्व जुड़ जाते हैं और कार्य के सफल निष्पादन में उससे अनेक अपेक्षाएं रहती हैं। भाषा ज्ञान, विषय ज्ञान, अभिव्यक्ति कौशल, व्यक्तिगत गुण आदि की दृष्टि से अनुवादक से होने वाली अपेक्षाओं पर विचार करना होता है। अनुवाद शिक्षा और अनुवाद समीक्षा, दो अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं।

शिक्षा

अनुवाद की शिक्षा भाषा-अधिगम के, विशेष रूप से अन्य भाषा अधिगम के, साधन के रूप में दी जा सकती है (भाषाशिक्षण की द्विभाषिक पद्धति भी इसी के अन्तर्गत है)। इसमें अनुवाद शिक्षण, भाषा-शिक्षण के अधीन है तथा एक मध्यवर्ती अल्पकालिक अभ्यासक्रम में इसकी योजना की जाती है, जिसमें शिक्षण के सोपान तथा लक्ष्य बिन्दु स्पष्ट तथा निश्चित होते हैं। इसमें शिक्षार्थी का लक्ष्य भाषा सीखना है, अनुवाद करना नहीं। शिक्षा के दूसरे चरण में अनुवाद का अभ्यास, अनुवाद को एक शिल्प या कौशल के रूप में सीखने के लिए किया जाता है, जिसकी प्रगत अवस्था 'अनुवाद कला है' की शब्दावली में निर्दिष्ट की जाती है। इस स्थिति में जो भाषा (मूलभाषा या लक्ष्यभाषा) अनुवादक की अपनी नहीं, उसके अधिगम को भी आनुषंगिक रूप में पुष्ट करता जाता है। अभ्यास सामग्री के रूप में पाठ प्रकारों की विविधता तथा कठिनाई की मात्रा के अनुसार पाठों का अनुस्तरण करना होता है। यदि एक सजातीय-विजातीय, स्वेदशी या विदेशी भाषा को सीखने की योजना में उससे या उसमें अनुवाद करने की क्षमता को विकसित करना एक उद्देश्य हो तो अनुवाद-शिक्षण के दोनों सोपानों - साधनपरक तथा साध्यपरक—को अनुस्तरित रूप में देखा जा सकता है।

समीक्षा

अनुवाद समीक्षा, अनुवाद सिद्धान्त का ऐसा अंग है, जिसका शिथिल रूप में व्यवहार, अनूदित कृति का एक सामान्य पाठक भी करता है, परन्तु जिसकी एक पर्याप्त स्पष्ट सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि है। सिद्धान्तपुष्ट अनुवाद समीक्षा एक ज्ञानात्मक व्यापार है। इसमें एक मूलपाठ के एक या एक से अधिक अनुवादों की समीक्षा की जाती है, तथा मूल की तुलना में अनुवाद का या मूल के विभिन्न अनुवादों का पारस्परिक तुलना द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। इसके तीन सोपान हैं - मूलभाषा पाठ तथा लक्ष्यभाषा पाठ का विश्लेषण, दोनों की तुलना (प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समानताओं की तालिका, और अभिव्यक्ति विच्छेदों का परिचयन), और अन्त में लक्ष्यभाषागत विशुद्धता, उपयुक्तता और स्वाभाविकता की दृष्टि से अनुवाद का मूल्यांकन। मूल्यांकन के सोपान पर अनुवाद की सफलता की जाँच के लिए विभिन्न परीक्षण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

3

अनुवाद का स्वरूप

किसी भाषा में कही या लिखी गयी बात का किसी दूसरी भाषा में सार्थक परिवर्तन अनुवाद कहलाता है। अनुवाद का कार्य बहुत पुराने समय से होता आया है।

संस्कृत में 'अनुवाद' शब्द का उपयोग शिष्य द्वारा गुरु की बात के दुहराए जाने, पुनः कथन, समर्थन के लिए प्रयुक्त कथन, आवृत्ति जैसे कई संदर्भों में किया गया है। संस्कृत के 'वद्' धातु से 'अनुवाद' शब्द का निर्माण हुआ है। 'वद्' का अर्थ है बोलना। 'वद्' धातु में 'अ' प्रत्यय जोड़ देने पर भाववाचक संज्ञा में इसका परिवर्तित रूप है 'वाद' जिसका अर्थ है– 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' में 'अनु' उपसर्ग जोड़कर 'अनुवाद' शब्द बना है, जिसका अर्थ है, प्राप्त कथन को पुनः कहना। इसका प्रयोग पहली बार मोनियर विलियम्स ने अँग्रेजी शब्द टांसलेशन के पर्याय के रूप में किया। इसके बाद ही 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग एक भाषा में किसी के द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री की दूसरी भाषा में पुनः प्रस्तुति के संदर्भ में किया गया।

वास्तव में अनुवाद भाषा के इन्द्रधनुषी रूप की पहचान का समर्थतम मार्ग है। अनुवाद की अनिवार्यता को किसी भाषा की समृद्धि का शोर मचा कर टाला नहीं जा सकता और न अनुवाद की बहुकोणीय उपयोगिता से इन्कार किया जा सकता है। के पर्यायस्वरूप 'अनुवाद' शब्द का स्वीकृत अर्थ है, एक भाषा की विचार सामग्री को दूसरी भाषा में पहुँचाना। अनुवाद के लिए हिंदी में 'उल्था' का

प्रचलन भी है। अँग्रेजी में के साथ ही ज्त्ंछैब्त्प्च्ज्प्व्छ का प्रचलन भी है, जिसे हिंदी में 'लिप्यन्तरण' कहा जाता है। अनुवाद और लिप्यंतरण का अंतर इस उदाहरण से स्पष्ट है-

उसके सपने सच हुए।

HIS DREAMS BECAME TRUE & TRANSLATION
USKEY SAPNE SACH HUEY & TRANSCRIPTION

इससे स्पष्ट है कि 'अनुवाद' में हिंदी वाक्य को अँग्रेजी में प्रस्तुत किया गया है जबकि लिप्यंतरण में नागरी लिपि में लिखी गयी बात को मात्र रोमन लिपि में रख दिया गया है।

अनुवाद के लिए 'भाषांतर' और 'रूपांतर' का प्रयोग भी किया जाता रहा है। लेकिन अब इन दोनों ही शब्दों के नए अर्थ और उपयोग प्रचलित हैं। 'भाषांतर' और 'रूपांतर' का प्रयोग अँग्रेजी के शब्द के पर्याय-स्वरूप होता है, जिसका अर्थ है दो व्यक्तियों के बीच भाषिक संपर्क स्थापित करना। कन्नडभाषी व्यक्ति और असमियाभाषी व्यक्ति के बीच की भाषिक दूरी को भाषांतरण के द्वारा ही दूर किया जाता है। 'रूपांतर' शब्द इन दिनों प्राय: किसी एक विधा की रचना की अन्य विधा में प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त है। जैसे, प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का रूपांतरण 'होरी' नाटक के रूप में किया गया है।

किसी भाषा में अभिव्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में यथावत् प्रस्तुत करना अनुवाद है। इस विशेष अर्थ में ही 'अनुवाद' शब्द का अभिप्राय सुनिश्चित है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, वह मूलभाषा या स्रोतभाषा है। उससे जिस नई भाषा में अनुवाद करना है, वह 'प्रस्तुत भाषा' या 'लक्ष्य भाषा' है। इस तरह, स्रोत भाषा में प्रस्तुत भाव या विचार को बिना किसी परिवर्तन के लक्ष्यभाषा में प्रस्तुत करना ही अनुवाद है

हर भाषा की कृति या प्रस्तुति का एक स्वरूप होता है, उसी प्रकार उस कृत्ति या प्रस्तुति के अनुवाद का भी स्वरूप होता है, जिसका अपना भी गठन और सौन्दर्य कभी-कभी इस सीमा तक आनन्ददायक होता है, जो मूल कृति में भी नहीं होता और कभी उसमें विकृतियाँ भी आ जाती हैं, जो खटकती हैं। मूल भाषा में अपरिचित पाठक उसी के अनुसार मूलकृति और कृतिकार का मूल्यांकन करता है। एक परिवेश को देखकर उसके दूसरे परिवेश के प्रति ऐसी स्थिति में पाठक विचार नहीं करता, क्योंकि वह अनुवाद को भी मूलकृति ही मानकर पढ़ता है। उस समय वह यह भूल जाता

है कि प्रत्येक भाषा का अपना अलग परिवेश होता है, उसकी कतिपय निजी-ध्वनिमूलक, शब्दमूक, रूपमूलक, वाक्यमूलक तथा अर्थमूलक--विशेषताएँ होती है, अपने मुहावरे और अपनी लोकोक्तियाँ होती हैं। अतः मूलभाषा में अभिव्यक्त भावों तथा विचारों को दूसरी भाषा में उसी रूप में प्रकट करना कठिन ही नहीं अपितु सही अर्थो में तो असम्भव ही है। अनुवाद के स्वरूप से यही अपेक्षा की जाती है कि मूल अथवा स्रोत भाषा में अभिव्यक्त विचारों को जब लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त किया जाय तो यथासम्भव यही प्रयास रहे कि मूलभाषा को जानने वाला उसमें अभिव्यक्त भाव को जिस रूप में ग्रहण करे, लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त भाव को उस भाषा का ज्ञाता भी ठीक उसी रूप में अथवा उसके यथासंभव निकटतम रूप में ग्रहण करे। यही अनुवाद प्रक्रिया का मूल आधार है।

प्रायः स्रोत भाषा का कथ्य लक्ष्यभाषा में कहीं अपेक्षाकृत विस्तार प्राप्त कर लेता है तो कहीं संकुचित और कही-कहीं स्वरूप भिन्न हो जाता है। अतः इस प्रयास में सदैव सफलता संदिग्ध रहती है। उदाहरणार्थ--अंग्रेजी के **'वार्म रिसिप्शन'** का हिन्दी में अनुवाद **'हार्दिक स्वागत'** ही हो सकता है। अंग्रेजी भाषाभाषी लोग ठण्डे इलाके के रहने वाले हैं अतः उनके लिये गर्मी का अपना एक महत्व है, जबकि भारत जैसे ऊष्ण देश में 'स्वागत' के साथ गर्म शब्द के विन्यास का कोई औचित्य नहीं। उर्दू में इसके लिए 'गर्मजोशी' शब्द गढ़ अवश्य लिया गया है, परन्तु भारतीय भाषाओं में 'तहे दिल' में जो भाव झलकता है, वह गर्मजोशी में नहीं। वास्तव में अनुवाद में एकरूपता आ ही नहीं सकती। कुछ न कुछ भिन्नता का रहना तो आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है। इस भिन्नता का वास्तविक कारण दोनों भाषाओं की अभिव्यक्ति इकाइयों-शब्द, पद, रूप, वाक्य, मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ आदि के प्रसंग-साहचर्य की भिन्नता है। किन्हीं भी दो भाषाओं की ये इकाइयाँ न एक होती हैं और न ही एक हो सकती हैं। उनमें एकता न होती है और न ही प्रयत्न करने पर लाई जा सती हैं। अत्यन्त विरल अपवादों की बात को छोड़ दें तो दोनों--अभिव्यक्ति और अर्थ के--स्तर पर दोनों--स्रोत (मूल) और लक्ष्य (अनुवाद) की--भाषाओं में समानता हो ही नहीं पाती। दोनों को यथासम्भव एक-दूसरे के निकट लाने के प्रयास की सफल्ता का नाम ही समझौता या प्रक्रिया है। यदि ध्यान से देखा जाये तो यह समझौता सदैव सम्भव नहीं होता परन्तु अनुवाद प्रक्रिया द्वारा इसी को सम्भव बनाने का प्रयत्न किया जाता है, क्योंकि यह दो भाषाओं को एक-दूसरे के समीप लाने का प्रयास

है, जिसकी भी एक सीमा है। उदाहरणार्थ--हिन्दी में सहायक क्रियाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति है। अतः यह विभिन्न चेष्टाओं के अन्तर को जिस स्पष्टता से प्रकट किया जा सकता है, उस स्पष्टता से अंग्रेजी भाषा में प्रकट नहीं किया जा सकता क्योंकि इस भाषा में सहायक क्रियाओं का प्रचलन नहीं है। इस तथ्य को निम्नलिखित उदाहरणें से देखा-समझा जा सकता है--

हिन्दी (क) लड़का गिरा।

(ख) लड़का गिर गया।

(ग) लड़का गिर पड़ा।

इन तीनों वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद एक ही होगा--

Boy fell या फिर Boy fell down.

इस अनुवाद में हिन्दी के वाक्यों-गिरना, गिर जाना, गिर पड़ना-के अर्थ के सूक्ष्म अन्तर को नहीं लाया जा सकता। इसी प्रकार हिन्दी के-'आइये', 'आ भी जाइये' इन तीनों वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद- `Come on या `Welcome होगा। हिन्दी के वाक्यों का अर्थ भेद अंग्रेजी अनुवाद में नहीं लाया जा सकता। वस्तुतः जब अंग्रेजी में सहायक क्रियाएँ ही नहीं हैं, तो फिर भाव की समीपता से ही सन्तोष करना पड़ेगा।

उपर्युक्त तथ्य की उपेक्षा करके कुछ अनुवादक अर्थ की समीपता को महत्व देने की दृष्टि से शब्दानुवाद करते हैं, जिससे स्रोत भाषा में न तो मूलभाषा के भाव की रक्षा हो पाती है और न ही अपेक्षित सौन्दर्य आ पाता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनुवाद प्रक्रिया का उद्देश्य है-मूल अथवा स्रोत भाषा के भाव को लक्ष्य भाषा में यथासम्भव तद्वत् प्रस्तुत करने के लिए समान अथवा निकटतम अभिव्यक्ति की खोज करना तथा इस खोज के प्रयास में लक्ष्यभाषा की प्रवृत्ति अथवा सहजता की बलि न चढ़ाकर उसकी पूर्ण रक्षा सुनिश्चित करना, जो काम किसी प्रक्रिया द्वारा ही किया जा सकता है।

अब यह प्रक्रिया क्या हो, इसका निर्धारण 'अनुवाद' की निम्नांकित **जी. सी. कैटफोड** द्वारा दी गयी परिभाषा तथा अन्य परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है--

Translation is the replacement of Testual material from one language (Source language) by equivalent Testual material in another language (Target Language).

अर्थात् किसी एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठ्य-सामग्री को किसी दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में उसी रूप में रूपान्तरित करना अनुवाद है।

पाश्चात्य विद्वान **निदा** (NIDA) ने अनुवाद में अर्थ और शैली को महत्व देते हुए उसे इन शब्दों में परिभाषित किया है- `

Translation consists in producing in the receptor language the close - natural equivalent to the message of the source language first in meaning and secondly in style.

अर्थात् स्रोत भाषा में अभिव्यक्त विचारों को लक्ष्य भाषा में अर्थ और शैली के स्तर पर यथासम्भव सहज और समान स्तर पर अभिव्यक्ति देने का नाम अनुवाद है।

Translation is the transference of the content of test from one language into another bearing in mind that we can, always disassociate the content from the forms.

अर्थात् एक भाषा में अभिव्यक्त पाठ के भाव की रक्षा करते हुए-जो सदैव सम्भव नहीं होता-दूसरी भाषा में उसे उतारने का नाम अनुवाद है।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "किसी एक भाषा में अभिव्यक्त विचारों को यथासम्भव तद्वत् अथवा निकटतम रूप में दूसरी भाषा में सहज भाव से प्रस्तुत करने की चेष्टा अनुवाद है।" लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की छाया का दृष्टिगोचर होना अनुवाद का एक खटकने वाला दोष ही कहा जायेगा।

अंग्रेजी आदि पश्चिमी भाषाओं के कतिपय विद्वानों-निदा, फास्टन तथा कैटार्ड द्वारा प्रस्तुत अनुवाद की परिभाषाओं का विश्लेषण-विवेचन करते हुए डॉ. **भोलानाथ तिवारी** लिखते हैं- " 'अनुवाद' 'निकटतम' 'समतुल्य' और सहज प्रतिप्रतीकन या 'यथासाध्य' 'समानक प्रतिप्रतीकन' है। अर्थात् प्रतिप्रतीकरन (स्रोत भाषा के प्रतीकों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के प्रतीकों को रखना) यथासाध्य ऐसा होना चाहिए कि स्रोत भाषा के कथ्य के लक्ष्य भाषा में आने पर न तो विस्तार हो, न संकोच या अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन। साथ ही स्रोत भाषा में कथ्य और अभिव्यक्ति का जैसा सामंजस्य हो, लक्ष्य भाषा में अनुदित होने पर भी यथासाध्य दोनों का सामंजस्य वैसा ही हो। संभवतः मूल सामग्री पढ़ या सुनकर स्रोत भाषा-भाषी जो अर्थ ग्रहण करता हो, अनुदित सामग्री पढ़ या सुनकर लक्ष्य भाषा-भाषी भी ठीक वही प्रभाव ग्रहण करे।"

डॉ. नगेन्द्र अनुवाद को एक मौलिक उपलब्धि और कला मानते हुए कहते हैं–"अनुवाद–कार्य जब निष्ठापूर्वक और मौलिक सृजन की भाँति शुरू किये जाते हैं तो वे अनुवाद न रहकर कला के स्तर पर सम्पन्न होते हैं।"

एक अन्य स्थान पर **डॉक्टर साहब** लिखते हैं–"एक भाषा में अभिव्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में स्थानान्तरित करना मात्र ही अनुवाद नहीं है। वस्तुतः अनुवाद एक तो सदैव मूल लेखन के समकक्ष होना चाहिए और दूसरे उसमें सहज प्रवाह भी होना चाहिए।"

अनुवाद में विशेष सावधानी बरतने की चेतावनी देते हुए अंग्रेजी के एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है–

Translation is like the custom house. If the custom officers are not alert then none smuggled goods of foreign items get throught like this matter of a language enter in any other lingustic frontier.

अर्थात् जिस प्रकार कस्टम अधिकारियों के असावधान रहने पर तस्करी का विदेशी सामान आसानी से इधर–उधर हो जाता है, उसी प्रकार अनुवादक के असावधान होने पर एक भाषा का मुहावरा दूसरी भाषा में आ जाता है, जो सर्वथा अवांछनीय ही होता है।

हिन्दी में एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में फिर से कहना अनुवाद कहलाता है। किसी लिखी गई बात को समान अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी भाषा में लिखना या इसी प्रकार कही गई बात को लिखना, लिखित या कथन अनुवाद कहे जायेंगे। भावार्थक रूप में भी किसी बात को भाषान्तरित करना अनुवाद की सीमा में आता है। लेकिन मात्र भाव्यान्तरण एक बात है, उसका अनुवाद रूप में भाषान्तरित करना एक विशिष्ट क्रिया है, जो उसको स्वरूप प्रदान करती है, अर्थात् अनुवाद का स्वरूप उसमें एक विशिष्ट प्रकार में सन्निहित है–मात्र भाषान्तरण में नहीं। भाषान्तरण को अनुवाद के क्षेत्र में लाया तो जा सकता है, लेकिन किसी बात को उसके शब्दार्थ मात्र में निहित किये जाने से ही अनुवाद क्रिया के साथ न्याय नहीं किया जा सकता, क्योंकि किसी शब्द के अर्थ कई हो सकते हैं, विषय प्रसंग के अनुकूल उनको अनुवाद कार्य के लिये चयन करना अनुवाद का कार्य होता है, परन्तु अनुवाद का यह भी कर्त्तव्य है कि किसी रचना का अनुवाद करते समय वह इन बातों का ध्यान रखे–

(1) कि क्या रचना के माध्यम से मौलिक लेखक द्वारा अभिव्यक्ति उद्देश्य का उसने ध्यान रखा है ?

(2) कि क्या उसके रचना की भावाभिव्यक्ति को भी वही जीवन प्रदान किया है, जो उसके मूल रचनाकार ने दिया है ?

(3) कि क्या भाषान्तरण करते-करते मूल रचना का अर्थान्तरण तो नहीं हो गया?

(4) कि क्या किसी शब्द के बदले ऐसे शब्द का प्रयोग तो नहीं किया जो मूल लेखक द्वारा प्रयुक्त शब्द की तात्विक गम्भीरता को भंग करता हो या क्षीण करता हो या उसके विपरीत तत्त्व को प्रमाणित करता हो ?

(5) कि क्या मूल रचना विधा में प्रयोग किये जाने वाले पारिभाषिक या निहित अर्थावलम्बी प्राविधिक शब्दों के लिए प्रायोजित भाषान्तरण में भी प्राविधिक शब्दों का प्रयोग किया गया है ?

(6) कि मूल रचना शैली का भी उचित ध्यान रखा गया है। यदि कोई रचना सरल तथा भारी भरकम शब्दावली से रहित है, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसका भाषान्तरण कठिन तथा दुरूह शब्दावली से भर दिया गया हो या मूल रचना के छोटे-छोटे सरल मुहावरेदार वाक्यों का यथाशक्ति सौन्दर्य भाषान्तरण में नष्ट कर दिया गया हो ?

ध्यान देने की बात यह है कि मूल रचना की भावाभिव्यक्ति तथा मूल रचना के उद्देश्य तथा प्रमाणित तत्त्व की रक्षा करते हुए ही अनुवाद को स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इसके लिये किसी रचना को उसके रचना स्वरूप में ही नहीं देखना चाहिए बल्कि वह रचना यदि किसी ग्रन्थ का अंग है तो अनुवाद कार्य में उस पूरे ग्रन्थ के भाव की परीक्षा करके ही उसके प्रत्येक अंग में प्रयोग किये गये शब्दों तथा भाव से प्रमाणित करना ही अनुवाद को स्वरूप प्रदान करना होता है। अनेक अनुवादकों ने हिन्दू-धर्म ग्रन्थों के श्लोकों तथा अंशों के ऐसे अनुवाद किये हैं, जो उन धर्म-ग्रन्थों की समग्र भावना तथा उद्देश्य के विपरीत हैं। ऐसे अनुवादों ने ग्रन्थों के सांस्कृतिक महत्व को ही कलंकित कर दिया है और प्राय: ही निहित उद्देश्यों के लिए इनके उदाहरण देकर असभ्य तथा अशिक्षित लोगों की भावनाओं को भड़काया जाता है। स्वाभाविक बात है कि ऐसे अनुवाद अनुवाद के स्वरूप को विकृत करते हैं।

अत: हम कह सकते हैं कि अनुवाद शब्द के अर्थ में ही उसका स्वरूप निहित है। किसी रचना या उसके अंश को भाषान्तरण या अनुवाद तो कहा जा सका है, लेकिन उसका स्वरूप नहीं। उसका स्वरूप तभी कहा जा सकता है जब

वह मूल रचना की यथारूप में भाव, भाषा, शैली, उद्देश्य के साथ उसके अर्थ की अभिव्यक्ति भी तदनुसार करे।

अनुवाद को कला और विज्ञान दोनों ही रूपों में स्वीकारने की मानसिकता इसी कारण पल्लवित हुई है कि संसारभर की भाषाओं के पारस्परिक अनुवाद की कोशिश अनुवाद की अनेक शैलियों और प्रविधियों की ओर इशारा करती हैं। अनुवाद की एक भंगिमा तो यही है कि किसी रचना का साहित्यिक-विधा के आधार पर अनुवाद उपस्थित किया जाए। यदि किसी नाटक का नाटक के रूप में ही अनुवाद किया जाए तो ऐसे अनुवादों में अनुवादक की अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का वैशिष्ट्य भी अपेक्षित होता है। अनुवाद का एक आधार अनुवाद के गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक होने पर भी आश्रित है। ऐसा पाया जाता है कि अधिकांशतः गद्य का अनुवाद गद्य में अथवा पद्य में ही उपस्थित हो, लेकिन कभी-कभी यह क्रम बदला हुआ नजर आता है। कई गद्य कृतियों के पद्यानुवाद मिलते हैं, तो कई काव्यकृतियों के गद्यानुवाद भी उपलब्ध हैं। अनुवादों को विषय के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है और कई स्तरों पर अनुवाद की प्रकृति के अनुरूप उसे मूल-केंद्रित और मूलमुक्त दो वर्गों में भी बाँटा गया है। अनुवाद के जिन सार्थक और प्रचलित प्रभेदों का उल्लेख अनुवाद विज्ञानियों ने किया है, उनमें शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद, सारानुवाद, व्याख्यानुवाद, आशुअनुवाद और रूपांतरण को सर्वाधिक स्वीकृति मिली है।

शब्दानुवाद

स्रोतभाषा के प्रत्येक शब्द का लक्ष्यभाषा के प्रत्येक शब्द में यथावत् अनुवादन को शब्दानुवाद कहते हैं। 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' पर आधारित शब्दानुवाद वास्तव में अनुवाद की सबसे निकृष्ट कोटि का परिचायक होता है। प्रत्येक भाषा की प्रकृति अन्य भाषा से भिन्न होती है और हर भाषा में शब्द के अनेकानेक अर्थ विद्यमान रहते हैं। इसीलिए मूल भाषा की हर शब्दाभिव्यक्ति को यथावत् लक्ष्यभाषा में नहीं अनुवादित किया जा सकता। कई बार ऐसे शब्दानुवादों के कारण बड़ी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संस्कृत से हिंदी में किये गये अनुवाद को कई बार प्रकृति की साम्यता के कारण सह्य होते हैं, लेकिन यूरोपीय परिवार की भाषाओं से किये गए अनुवाद में अर्थ और पदक्रम के दोष सामान्यतः नजर आते हैं। वास्तव में यदि स्रोत और लक्ष्यभाषा में अर्थ, प्रयोग,

वाक्य-विन्यास और शैली की समानता हो, तभी शब्दानुवाद सही होता है, अन्यथा यंत्रवत् किये गए शब्दानुवाद अबोधगम्य, हास्यास्पद एवं कृत्रिम हो जाते हैं।

भावानुवाद

ऐसे अनुवादकों में स्रोत-भाषा के शब्द, पदक्रम और वाक्य-विन्यास पर ध्यान न देकर अनुवाद मूलभाषा की विचार-सामग्री या भावधारा पर अपने आपको केंद्रित करता है। ऐसे अनुवादों में स्रोतभाषा की भाव-सामग्री को उपस्थित करना ही अनुवादक का लक्ष्य होता है। भावानुवाद की प्रक्रिया में कभी-कभी मूल रचना जैसा मौलिक वैभव आ जाता है, लेकिन कई बार पाठकों को यह शिकायत होती है कि अनुवादक ने मूलभाषा की भावधारा को समझे बिना, लक्ष्य-भाषा की प्रकृति के अनुरूप भाव सामग्री प्रस्तुत कर दी है। जब पाठक किसी रचना को रचनाकार के अभिव्यक्ति-कौशल की दष्टि से पढ़ना चाहता है, तो भावानुवाद उसकी लक्ष्यसिद्धि में सहायक नहीं होता।

छायानुवाद

संस्कृत नाटकों में लगातार ऐसे प्रयोग मिलते हैं कि उनकी स्त्री-पात्र तथा सेवक, दासी आदि जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं, उसकी संस्कृत छाया भी नाटक में विद्यमान रहती है। ऐसे ही प्रयोगों से छायानुवाद का उद्‌भव हुआ है। अनुवाद की प्रविधि के अंतर्गत अनुवादक न शब्दानुवाद की तरह केवल मूल शब्दों का अनुसरण करता है और न सिर्फ भावों का ही परिपालन करता है, बल्कि मूलभाषा से पूरी तरह बंधा हुआ उसकी छाया में लक्ष्यभाषा में वर्व्य-विषय की प्रस्तुति करता है।

सारानुवाद

इस अनुवाद में मूलभाषा की सामग्री का संक्षिप्त और अतिसंक्षिप्त अनुवाद लक्ष्यभाषा में किया जाता है। लंबे भाषणों और वाद-विवादों के अनुवाद प्रस्तुत करने में यह विधि सहायक होती है।

व्याख्यानुवाद

ऐसे अनुवादों में मूलभाषा की सामग्री का लक्ष्यभाषा में व्याख्या सहित अनुवाद उपस्थित किया जाता है। इसमें अनुवादक अपने अध्ययन और दृष्टिकोण

के अनुरूप मूल भाषा की सामग्री की व्याख्या अपेक्षित प्रमाणों और उदाहरणों आदि के साथ करता है। लोकमान्य तिलक ने 'गीता' का अनुवाद इस शैली में किया है। संस्कृत के बहुत सारे भाष्यकारों और हिन्दी के टीकाकारों ने व्याख्यानुवाद की शैली का ही अनुगमन किया है। स्वभावतः व्याख्यानुवाद अथवा भाष्यानुवाद मूल से बहुत बड़ा हो जाता है और कई स्तरों पर तो एकदम मौलिक बन जाता है।

आशु अनुवाद

जहाँ अनुवाद दुभाषिये की भूमिका में काम करता है, वहाँ वह केवल आशुअनुवाद कर पाता है। दो दूरस्थ देशों के भिन्न भाषा–भाषी जब आपस में बातें करते हैं, तो उनके बीच दुभाषिया संवाद का माध्यम बनता है। ऐसे अवसरों पर वे अनुवाद शब्द और भाव की सीमाओं को तोड़कर अनुवादक की सत्वर अनुवाद क्षमता पर आधारित हो जाता है। उसके पास इतना समय नहीं होता है कि शब्द के सही भाषायी पर्याय के बारे में सोचे अथवा कोशों की सहायता ले सके। कई बार ऐसे दुभाषिये के आशुअनुवाद के कारण दो देशों में तनाव की स्थिति भी बन जाती है। आशुअनुवाद ही अब भाषांतरण के रूप में चर्चित है।

रूपान्तरण

अनुवाद के इस प्रभेद में अनुवादक मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में केवल शब्द और भाव का अनुवादन नहीं करता, अपितु अपनी प्रतिभा और सुविधा के अनुसार मूल रचना का पूरी तरह रूपांतरण कर डालता है। विलियम शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'दुर्लभ बन्धु' अर्थात् 'वंशपुर का महाजन' नाम से किया है, जो रूपांतरण के अनुवाद का अन्यतम उदाहरण है। मूल नाटक के एंटोनियो, बैसोलियो, पोर्शिया, शाइलॉक जैसे नामों को भारतेंदु ने क्रमशः अनंत, बसंत, पुरश्री, शैलाक्ष जैसे रूपांतर प्रदान किये हैं। ऐसे रूपांतरण में अनुवाद की मौलिकता सबसे अधिक उभरकर सामने आती है।

अनुवादक के इन प्रभेदों से ज्ञापित होता है कि संसार भर की भाषाओं में अनुवाद की कई शैलियाँ और प्रविधियाँ अपनाई गई हैं, लेकिन यदि अनुवादक

सावधानीपूर्वक शब्द और भाव की आत्मा का स्पर्श करते हुए मूलभाषा की प्रकृति के अनुरूप लक्ष्यभाषा में अनुवाद उपस्थित करे तो यही आदर्श अनुवाद होगा। इसीलिए श्रेष्ठ अनुवादक को ऐसा कुशल चिकित्सक कहा जाता है, जो बोतल में रखी दवा को अपनी सिरिंज के द्वारा रोगी के शरीर में यथावत पहुँचा देता है।

4

कार्यालयीन हिन्दी अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग

अनुवाद की भाषा और स्वरूप

अनुवाद शब्द संस्कृत का है जिसके मूल में 'वद्' धातु है। 'वद' शब्द में छिपे वाद में अनुवर्तिता आदि अर्थो में प्रयुक्त होने वाले 'अनु' उपसर्ग लगने से 'अनुवाद' शब्द बना है। अनुवाद का मूल अर्थ है 'किसी के कहने के पश्चात कहना' अथवा पुन: कथन। कोश के अनुसार अनुवाद का अर्थ है-- ' पहले कहे गये अर्थ को फिर से कहना।' अंग्रेजी में अनुवाद के लिए शब्द का प्रयोग होता है। शब्द लैटिन शब्द (पार) तथा (ले जाना) शब्दों के योग से बना है। जिसका अर्थ एक भाषा के पार दूसरी भाषा में ले जाना। या एक भाषा से दूसरी भाषा में बदलना।

(अ) ए.एच. स्मिथ के अनुसार- 'अर्थ को बनाये रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण कहना अनुवाद है।'

(आ) डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार- 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को, यथासम्भव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।'

प्रारम्भ में अनुवादक को साहित्य की दुनिया में बड़ी हीन-दीन दृष्टि से देखा जाता था उसे पढ़े-लिखे बेकार व्यक्ति के लिए नोन तेल लकड़ी का एक छोटा-मोटा जुगाड़ अनुवाद मानते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता गया लोग जीने और जीवित रहने का संबंध एक प्रान्त, राष्ट्र के बजाय समस्त विश्व प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ गया। भारत में तो प्रयोजनमूलक हिन्दी की संरचना का आधारभूत तत्त्व परिभाषिक शब्दावली के बाद दूसरा अनुवाद ही है। विश्व के विभिन्न भागों, वर्गों, व्यवसायों के लोगों के भीतर एक दूसरे को जानने-समझने की इच्छा बलवती होने लगी जिसके लिए पश्चिम देशों की भाषाओं अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन, जपानी आदि तथा तकनीकी, औधोगिक, चिकित्सा, विधि, वाणिज्य से लेकर सांस्कृतिक और आदान-प्रदान जीवन का मूल हिस्सा बन गया अब विश्व के विभिन्न भूखण्डों में बसने वाले लोग एक परिवार जैसा महसूस करने लगे लोगों की दर्द, बेचैनी, आँसुओं, उल्लासों के बीच एक अजीब सा सामान अहसास होने लगा।

व्यक्ति या राष्ट्र संकट वैश्विक रूप में माना जाने लगा तथा इसका अंतर्राष्ट्रीय समाधान खोजे जाने लगा दूसरी ओर दूरदर्शन, आकाशवाणी, दृश्य-श्रव्य कैसेट, फिल्म, दूरभाष आदि जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् जब चहुदिशाओं में विकास की योजनाएँ बनने लगीं, हिन्दी के राजभाषा के पद पर आसीन होने से प्रशासनिक कार्यों तथा शिक्षा, विधि आदि विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिन्दी दबाव तब यह आवश्यक हो गया कि भारतीय भाषाओं की साहित्यिक के साथ विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए अखिल भारतीय परिभाषिक शब्दावली का निर्माण किया जाए। वस्तुतः किसी भी देश की सांस्कृतिक परम्पराओं, मान्यताओं, वैज्ञानिक शोधों, औधोगिक विकास, चिकित्सा के लिए अनुवाद एक अनिवार्य माध्यम है। अनुवाद की सहायता से प्रतिभाशाली विधार्थी किसी विषय अथवा ज्ञान शाखा का अध्ययन अपनी मातृभाषा में सरलता समझ सकता है।

वही अन्य भाषा में करना पड़े तो शक्ति और समय दोनों का व्यय होता है। अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आता है। किन्तु अनुवाद के प्रकृति के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद हैं। विद्वानों का एक वर्ग अनुवाद को कला मानता है। प्रसिद्ध कवि एजरा पाउण्ड ने अनुवाद को 'साहित्यिक पुनर्जीवन' माना है। वही विद्वानों का दूसरा वर्ग विज्ञान मानता है। आधुनिक युग में जहाँ ज्ञान-विज्ञान के नए-नए क्षेत्र खुल रहे हैं, कम्प्यूटर-तकनालाजी के जाने से वहाँ

अनुवाद विज्ञान माना जाने लगा है। अतः अनुवाद केवल रूपांतरण का माध्यम ही नहीं प्रत्युत एक अर्जित कला है।

आधुनिक युग में अनुवाद मनुष्य की सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जरूरत के साथ ही कार्यालयीन कामकाज की अत्यावश्यक शर्त भी बन गया है। देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले मनुष्य के साथ जीवन के अनेकविध धरातल पर वह एक-दूसरे से सतत सम्पर्क बनाकर व्यक्तिगत तथा सामूहिक सम्बन्धों की कड़ी को मजबूती से जोड़ना चाहता है। अतः भाषाई स्तर पर सम्प्रेषण व्यापार हेतु अनुवाद का प्रयोजन संकुलित कठघरे से हटकर इस वैज्ञानिक युग में बहुआगमी परिप्रेक्ष्य में उजागर हो रहा है। विश्व-पटल पर अवस्थित संस्कृतियों से सम्पर्क तथा सम्प्रेषण व्यवस्था के बीच में अनुवाद मध्यस्थता का महत्वपूण कार्य करता है।

अनुवाद की समस्याएँ और समाधान

एक भाषा में अभिव्यक्त विषयों, भावनाओं तथा संवेदनाओं को जहाँ तक संभव हो उसी की प्रयुक्त भाषा-शैली में दूसरी भाषा में रूपांतरित करना अनुवाद कहलाता है। मगर यह कार्य जितना सरल दिखाई देता है उतना है नहीं। मराठी के प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर ने कहा भी है- 'लेखक होना आसान है, किन्तु अनुवादक होना अत्यन्त कठिन। तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्र्पति राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी कहा है- 'एक प्रकार से मौलिक लेख लिखना आसान है, पर किसी दूसरी भाषा से अनुवाद करना बहुत कठिन होता है। मेरा निजी अनुभव है कि मैं अंग्रेजी से हिन्दी में और हिन्दी से उतनी आसानी से अनुवाद नहीं कर सकता, जितनी आसानी से इन दोनों भाषाओं में लिख या बोल सकता हूँ।' क्योंकि दो अलग-अलग भाषाओं की अपनी-अपनी प्रकृति होती है। अपनी शब्द-संपदा होती है। अपनी विशिष्ट भाषिक संरचना, शैली-भंगिमा होती है।

समस्याएँ

(1) 'शब्द प्रयोग की समस्या- कभी-कभी एक ही भाषाओं के दो शब्द मिल जाते हैं। जिसका अर्थ अलग-अलग होता है। जैसे-मराठी में 'नवरा' का अर्थ पति है जबकि गुजराती में निठल्ले को 'नवरा' कहते है।

(2) मुहावरे-कहावते की समस्या- यद्यापि मुहावरे और कहावतें मनुष्य के जीवन के अनुभावों को संक्षिप्ति, प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त

करने का साधन रही है। परन्तु हर मुहावरे या कहावत एक-सा नहीं हो सकते।

(3) अलंकार की समस्या– एक भाषा के अलंकार उस भाषा के शब्द को सौन्दर्य प्रदान करते है। 'कनक-कनक' में यमक अलंकार दुहरे अर्थ में प्रयोग अनुवाद के लिए एक गंभीर समस्या बन जाती है।

(4)शैली की समस्या– हर भाषा की अपनी शैली होती है। परन्तु अगर एक भाषा में उपलब्ध शैली विशेषताएँ दूसरी में न मिलें तो अनुवाद करने में परेशानी होती है। जैसे, हिन्दी की तीन शैलियाँ संस्कृत-निष्ठ हिदी, हिन्दुस्तानी और बातचीत।

समाधान

(1)भाषा का ज्ञान– अनुवादक की सर्वप्रथम आवश्यकता भाषाओं का समुचित ज्ञान हो क्योंकि उसके सामने दो अलग-अलग भाषाओं की प्रकृति, प्रवृति, संस्कृति, अभिव्यक्ति शक्ति आदि बातों से वाकिफ होना चाहिए जिससे भाषा की वाक्य-रचना, शब्दों की चयन-प्रक्रिया, अभिव्यक्ति की सक्षम परख और वाक्य-विन्यास एवं शैलियों पर सांस्कृतिक प्रभाव का गहन अध्ययन हो ताकि अपने दायित्वों को अच्छी तरह निभा सकें।

(2) विषय का ज्ञान– अनुवादक को अनुवाद सामग्री के विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। अगर उसे विषय का अच्छी तरह ज्ञान नहीं होगा तो वह मूल रचना के साथ सही न्याय नहीं कर पायेगा।

(3) अभिव्यक्तिगत तटस्थता– उत्तम अनुवाद अनुवादक के रूचि के साथ उसकी योग्यता, विषय-वस्तु की समझ, भाषाओं की निपुणता आदि बातों पर बहुत कुछ निर्भर करता है। अच्छे और सफल अनुवाद की पहचान यही कि पाठक को पढ़ते समय ऐसा न महसुस हो अनुवाद पढ़ रहे हैं बल्कि मूल पाठ पढ़ रहे है। उसमें अपने से कुछ न जोड़कर तटस्था का ध्यान रखना चाहिए। जैसे-अंग्रेजी का वाक्य- हिन्दी अनुवाद 'कोरा चेक देना यह गलत है बल्कि 'खुली छूट देना' आदि।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी वैधानिक रूप से आरूढ़ हो गयी। अत: प्रशासनिक कार्यों को, जो अब तक अंग्रेजी में होते चले आ रहे थे, हिन्दी में किये जाने का चलन भी वैधानिक रूप में ही आरम्भ हुआ। अंग्रेजी में जो कार्य हो रहे थे, उन्हें हिन्दी भाषा में कर पाने में, अंग्रेजी में

कार्य करने वाले अभ्यस्त बाबू और अफसर सम्प्रदाय के सामने कठिनाई तो थी, कार्यालयी हिन्दी में अधिकांश ऐसे शब्द आ गये थे जिनके सन्दर्भ, आख्या, प्रयोजन और अर्थान्तर ज्ञान का पूरी कार्यालय व्यवस्था व प्रशासन को ज्ञान ही नहीं था, दूसरे बहुत से लोग तो ऐसे थे जो हिन्दी में कार्य करना बहुत हेय समझते थे। इसके अनन्तर भारतीय गणतन्त्र के बहुत से राज्य भी ऐसे थे जिनको हिन्दी का ज्ञान ही नहीं था। वह या तो अपनी मातृभाषा जानते थे या अंग्रेजी। इस समस्या का निदान वैधानिक रूप से यह किया गया था कि वह अपने यहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाना चाहें तो वह पूर्ववत् अंग्रेजी का ही चलन बनाये रख सकते हैं।

हालांकि इसके लिये प्रशासनिक हिन्दी या भाषा में पुरानी प्रक्रिया, शब्दावली इत्यादि अनुवाद हुए एवं उनका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ, फिर भी एक लम्बे समय तक कठिनाइयाँ तथा हिन्दी में कार्य करने के प्रति उपेक्षा धारण की जाती रही। अंग्रेजी में कार्य करते रहे बाबुओं तथा अफसरों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भी हिन्दी में काम करना पसन्द नहीं था। अन्ततः यह प्रवृत्ति कम हुई। हिन्दी भाषा का व्यवहार आरम्भ हुआ और जहाँ-जहाँ भाषा का व्यवहार किया गया, वहाँ-वहाँ अनुवाद की आवश्यकता हुई। आधुनिक युग में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, विधि आदि क्षेत्रों के प्रमाण ग्रन्थ मुख्यतया अंग्रेजी में रहे हैं। भारत के स्वाधीन होने के बाद इन ग्रन्थों की जगह भारतीय भाषा में ग्रन्थ का प्रयास हुआ है। इस प्रयास में अनुवाद और मौलिक ग्रन्थों का निर्माण सम्मिलित है।

प्रशासन भाषा-व्यवहार का एक मुख्य क्षेत्र है। अतः प्रशासन में भी अनुवाद का प्रसंग आता है। इसे स्पष्ट करने के लिये हमें अपने देश की प्रशासनिक प्रणाली पर प्रकाश डालना आवश्यक है। भारत संसार के प्रजातंत्रवादी देशों में प्रमुख है। यहाँ शिक्षित-अशिक्षित सबको बालिग होने पर मत देने और विधायक बनने का अधिकार है। इसलिये प्रशासन की भाषा भी जनता की भाषा ही हो, यही उचित था, किन्तु प्रशासन विशिष्ट क्षेत्र है अतः प्रशासन की तकनीक की जानकारी पाए बिना कोई व्यक्ति प्रशासनिक कार्य कर नहीं सकता। प्राचीन युग में मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि प्रमाण ग्रन्थ थे। प्रशासन में मौलिक रूप से उन्हीं का आश्रय लिया गया और उनमें उपयुक्त प्रशासनिक शब्दों का चयन किया गया। उन्हीं की व्याख्या भी की गई।

कार्यालयी हिन्दी अनुवाद की समस्या

कार्यालयी हिन्दी की जो प्रवृत्ति है, वह सहज न होकर अनुवाद कार्य के फेर में पड़कर विकृत हुई है, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए था। यही कारण है कि कार्यालयी हिन्दी में की गई बहुत-सी विज्ञप्तियाँ सामान्य लोगों द्वारा समझना टेढ़ी खीर होती है। प्राय: सुशिक्षित लोग भी उन्हें नहीं समझ पाते। इसका कारण अंग्रेजी के प्रति विशेष मोह है तथा कार्यालयी कार्य करने की अंग्रेजी प्रवृत्ति है। इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव किसी भी सरकारी सूचना या सरकारी, अर्द्धसरकारी पत्रों को देखकर किया जा सकता है।

कार्यालय साहित्य की कोई सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि कार्यालय सभी विभागों में हो सकते हैं, (जिनकी गिनती करना भी सम्भव नहीं)। सभी कार्यालयों में कार्य को हिन्दी में करने पर बल दिया जाता है, अत: अनुवाद होता है। यह अनुवाद पुराने साहित्य का भी हो सकता है तथा नये साहित्य का भी। यदि अनुवादक के पास पारिभाषिक शब्दों का पर्याप्त भण्डार हो तो अनुवाद की समस्या एक सीमा तक कम हो सकती है, यदि कार्यालयों में काम करने वाले कर्मी, इस कार्य को करने में कुछ श्रम करें, केवल लकीर न पीटें तथा पारिभाषिक शब्दों का ज्ञानवर्द्धन करें। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत प्रगति का ऐसा चक्र चल रहा है कि एक ही विषय पर किये जाने वाले कार्य करने वाले कार्यालय का विभाजन विषय की जटिलता तथा प्रशासनिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये कर दिया जाता है और उसके अंग-विच्छेदन के फलस्वरूप कार्यालय बढ़ा दिये जाते हैं, विभागों में भी फेरबदल हो जाता है। सभी कार्यालयों के कार्य की प्रकृति निश्चित रूप से समान नहीं होती, अत: हिन्दी में कार्य करने में कठिनाइयाँ आती हैं। इनका कार्य करने के लिये, स्वाभाविक रूप से अंग्रेजी का सहारा लिया जाता है, अत: उनका अनुवाद कार्य सहज नहीं हो पाता। यह भी देखा गया है कि एक ही अंग्रेजी प्रारूप के अनुवाद विभिन्न कार्यालयों में समान रूप से नहीं हो पाते। इसके कई कारण है–

पहला कारण तो यह है कि अभी तक सभी अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी-सम-शब्दों में निर्धारण नहीं हुआ है। बहुतायत में इस सम्बन्ध में समस्या तब उठती है, जब किसी भी नित्य की सामान्य कार्य व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्द की तरह ही हिन्दी में उसी 'वजन' का शब्द नहीं मिलता। जैसे रेल से सम्बन्धित एक प्रचलित शब्द है 'दि ट्रेन'। यह रेल यातायात में सामान्य रूप से प्रयोग में आने वाला शब्द है, लेकिन इसी के वजन तथा प्रवाह को बोध कराने

वाला शब्द हिन्दी में अपनी पहचान नहीं बना सका है, अत: इसी शब्द का सुविधा से प्रयोग होता है। इस शब्द तथा अन्य ऐसे शब्दों का 'हिन्दीकरण' इन्हें हिन्दी में स्वीकार करके किये जाने का चलन आम हो चला है। सामान्य जनता भी ऐसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने लगी है, जिन्हें वह आम बोलचान में बोलना स्तरहीन समझती है या असुविधाजनक प्रवाह से रहित अनुभव करती है, जैसे शौचग्रह या 'शौचालय' बोलचाल में इसका प्रयोग नगण्य है और 'लैट्रीन' शब्द आम प्रयोग में आ गया है, अशिक्षित लोग भी इसका प्रयोग करते हैं।

इसी प्रकृति का एक उदाहरण और दिया जाता है। अंग्रेजी के देशज हैं--Aggression तथा भारत सरकार के शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित वृहत् पारिभाषिक शब्दकोश के परवर्ती संस्करण में इन दोनों शब्दों का (हिन्दी में) प्रतिशब्द आक्रमण दिया गया है। 'आक्रमण' को attack के प्रतिशब्द रूप में ग्रहण किया जाना तो उचित है, लेकिन aggression के लिये नहीं। यदि किसी मूल कत्य में इन दोनों शब्दों का ही प्रयोग होता है, तो हिन्दी में उसके मूल भाव को एक शब्द द्वारा प्रकट करना सम्भव नहीं होगा।

ऐसे ही कुछ शब्दों को और भी उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कार्यालयी अंग्रेजी में प्राय:--Yours faithfully, Yours sincerely, Yours very truly, Yours truly शब्दों का प्रयोग होता है। हम नित्य-प्रति के व्यवहार में भी इनका प्रयोग अंग्रेजी लेखन में करते हैं, लेकिन इनमें से प्रत्येक का पर्याय हिन्दी में नहीं है। कार्यालयी अनुवाद की समस्या केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले 'परिभाषिक' शब्द-संग्रहों को लेकर भी सामने आती है, जिनमें अपने नये संस्करणों में शब्द पर्यायों को बदल दिया जाता रहा है। यह बात सन्1964 तथा 1974 के संस्करणों में लक्ष्य की जा सकती है। वस्तुत: बात यह है कि इन संग्रहों के 'सुयोग्य चिन्तन' के आधार पर तैयार नहीं किया गया है।

प्राय: देश की सभी सरकारें भी एक अंग्रेजी शब्द का समान पर्याय प्रयोग में नहीं ला पायी हैं। प्राय: सभी सरकारों के अंग्रेजी पाठ के अनुवाद पक्ष समान नहीं होते। इसके अतिरिक्त एक ही शब्द का प्रयोग केन्द्र तथा विभिन्न प्रदेशों में समानार्थ रूप में नहीं किया जा रहा है। जैसे हिन्दी में नये-पुराने ज्ञात शब्द काफी मिलते-जुलते हैं--भाग, विभाग, अनुभाग, उपविभाग, अनुविभाग, संभाग, प्रभाग, केन्द्रीय सरकार के लिये भाग--Portion, विभाग--Department,

अनुभाग--Section हैं तथा प्रभाग--Division हैं, लेकिन उत्तर प्रदेश के लिये Section-- खण्ड है, तो मध्य प्रदेश के लिये 'अनुविभाग' और 'उपविभाग' हैं।

वस्तुतः अनुवाद के प्रयोग में शब्द-निर्माण में काफी कठिनाइयाँ हैं। अंग्रेजी में कई ऐसे शब्द कार्यालयी व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं, जो एकार्थक नहीं हैं, जैसे DismissA हिन्दी में इसे बर्खास्त करना भी कहेंगे तथा खारिज करना भी। अब कहाँ इसको किस अर्थ में प्रयोग किया जायेगा, यह अनुवादक के सोचने की बात है। ऐसे शब्दों में इनकी भी गिनती है--

Certificate of Posting = तैनाती का प्रमाण-पत्र, डाक का प्रमाण-पत्र

Capacity = क्षमता (व्यक्ति की), धारिता (डिब्बे आदि की)

Tour = दौरा (Tour Programme), पर्यटन (Tour Publishing Officer)

अतः अनुवादकों तथा शब्द संयोजन या सृजन करने वाले विद्वानों से कार्यालयी हिन्दी में सुधार करने की बहुत आवश्यकता है। निश्चित रूप से ऐसी समस्याओं को निराकरण करना एक दिन में सम्भव नहीं है।

साहित्य तथा साहित्येतर अनुवाद की समस्याएँ

भिन्न-भिन्न आधारों पर अनुवाद में भिन्न-भिन्न भेद किए जा सकते हैं, लेकिन मूलतः अनुवाद के दो प्रकार होते हैं - साहित्यिक अनुवाद व साहित्येतर अनुवाद। इन दोनो प्रकार के अनुवादों में कुछ भूलभूत अंतर हैं - यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है, साहित्येतर अनुवाद में ठीक इसका विपरीत होता है। साहित्यिक अनुवाद में मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नहीं होता है।

दोनो ही तरह के अनुवाद भिन्न-भिन्न स्तरों पर अनुवादकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की चुनौतियां और समस्याएं उत्पन्न करते हैं। इनमें से कुछ समस्याओं का विश्लेषण हम आगे करेंगे। सबसे पहले साहित्य अनुवाद की समस्याएं।

साहित्य अनुवाद व उससे जुड़ी समस्याएं -

स्त्रोत भाषा में लिखित साहित्य को लक्ष्य भाषा में अनुवाद करने को साहित्यिक अनुवाद कहते हैं। साहित्य की विधाओं में कविता, लघुकथा, कहानी,

उपन्यास, अकांकी, नाटक, प्रहसन (हास्य), निबंध, आलोचना, रिपोर्ताज, डायरी लेखन, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, गल्प (फिक्शन), विज्ञान कथा (साइंस फिक्शन), व्यंग्य, रेखाचित्र, पुस्तक समीक्षा या पर्यालोचन, साक्षात्कार शामिल हैं। साहित्यिक कृतियों का अनुवाद, सामान्य अनुवाद से उच्चतर माना जाता है। साहित्यिक अनुवादक कार्य के सभी रूपों जैसे भावनाओं, सांस्कृतिक बारीकियों, स्वभाव और अन्य सूक्ष्म तत्त्वों का अनुवाद करने में भी सक्षम होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यिक अनुवाद वास्तव में संभव नहीं हैं।

दो संस्कृतियों के बीच अनुवाद रूपी पुल के निर्माण में साहित्यिक अनुवाद की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसका सीधा सा कारण यह है कि किसी भौगोलिक क्षेत्र का साहित्य उस क्षेत्र की संस्कृति, कला और रीतियों का प्रतिनिधित्व करता है। कहा भी गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। बस यही वह चीज है, जो साहित्य अनुवाद को बेहद उत्तरदायी और कठिन कर्म बना देती है। किसी भी एक साहित्यिक कृति का उसकी मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय कितनी ही सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। ये सभी सावधानियां सांस्कृतिक भिन्नताओं के चलते समस्याओं का रूप ले लेती हैं। क्योंकि सांस्कृतिक भिन्नता को समाप्त करने के लिए भाषा को मूल रचना की भाषा में व्यक्त प्रतीकों, भावों और उन अनेक विशेषताओं को सटीक तरीके से लक्ष्य भाषा में उतारना होता है और साथ ही यह ध्यान रखना होता है कि लक्ष्य भाषा में उतरी कृति पढ़ने वाले को सहज और आत्मीय लगे।

हम सभी समझ सकते हैं कि यह आसान नहीं है, कारण बहुत सारे हैं, आइये उनकी विवेचना करते है–

काव्यानुवाद की समस्याएं -

काव्यानुवाद एक प्रकार का भावानुवाद है जिसे अधिकांशतः कवि ही करते हैं, क्योंकि इसके लिए कवि की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। इसी कारण से तटस्थता बनाए रखना एक बड़ी समस्या हो जाती है। काव्य में शब्द के स्थान पर प्रतीकों का उपयोग बहुतायत में होता है। इस संकृति के प्रतीक को दूसरी संस्कृति के प्रतीक के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है कारण सांस्कृतिक भिन्नता है।

उदाहरण के लिए गंगा नदी पर लिखी किसी कविता का अंग्रेजी अनुवाद करते समय हमको इंग्लैंड की संस्कृति में गंगा जैसी पवित्र और

मान्य नदी का प्रतीक खोजना होगा। अन्यथा गंगा के प्रतीक को अगर वैसे ही उपयोग किया गया तो लक्ष्य पाठक को भारत में गंगा की महत्ता को अलग से समझाना होगा।

इसी प्रकार से यह कतई आवश्यक नहीं है हिन्दी में "चरण कमल बंदौ हरिराई" में जिस तरह से चरण को कमल की कोमलता का प्रतीक माना गया है वैसा किसी अन्य यूरोपीय या भारतीय भाषाओं में भी हो।

इस सब के अलावा छंदबद्धता, बिम्ब विधान, कल्पना, मधुरता, लय, संरचना, अलंकारादि भी काव्यानुवाद को जटिल कर समस्याएं पैदा करते हैं। अनुवाद करते समय मूल पाठ के इन गुणों को लक्ष्य पाठ में उतारना भी समस्याओं का जनक होता है।

नाट्यानुवाद की समस्याएं -

मंचनीयता की पूर्व-शर्त से जुड़ी यह विधा कभी-कभी काव्यानुवाद जितनी ही जटिल हो जाती है क्योंकि नाट्य विधा का मंचन पक्ष इसे बहुआयामी बना देता है। नाटक का लक्ष्य पूरा हो इसके लिए लेखन से बाहर के कई बाह्य तत्त्व जैसे अभिनेता और निर्देशक भी इसमें शामिल होते हैं। मंचनीयता को पूरा करने के लिए नाटककार को रंगमंच की आवश्यकताओं को दिमाग में रखना पड़ता है। यह इसकी रचना प्रक्रिया को जटिल बना देता है।

नाटक का अनुवाद करने में उसकी संवादात्मक प्रकृति को बनए रखना एक समस्या है क्योंकि उसके पात्रों के समस्त गुणों को लक्ष्य भाषा के पात्रों में ठीक उसी तरह से दिखना चाहिए। समस्या यह है कि वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र संस्कृति की भिन्नता के प्रतीक होते हैं और उनको मूल रचना से लक्ष्य रचना में पुर्नजन्म लेना होता है। यह अनुवादक के लिए समस्याजनक हो जाता है क्योंकि उदाहरण के लिए भारतीय परिवेश में राजा हरिश्चन्द्र के डोम वाले चरित्र को दर्शाने के लिए अंग्रेजी में उसी प्रकार का कोई कार्य प्रतीक खोजना होगा।

नौकर व स्वामी के बीच के संवाद में यूरोपीय भाषाओं में नौकर द्वारा स्वामी के नामाउपनाम के साथ 'मिस्टर' पूर्वसर्ग लगाकर संवादों को प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन हिन्दी में ऐसा संभव नहीं है। बल्कि हिन्दी में ऐसा करना नाटक के प्रवाह को बाधित करेगा व पढ़ने वालों को यह अजीब सी अनूभूति देगा।

मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी नाटकों में भरपूर उपयोग होता है और अनुवाद की समस्याओं पर चर्चा करते समय हम देख चुके हैं कि इनको लक्ष्य भाषा में पुन:निर्मित करना रेढ़ी खीर साबित होता है। नाटक में संवादों के माध्यम से अभिनेता भावों को प्रकट करता है, अर्थात इसमें (संवादों में) शब्दों का चयन यह सोच कर किया जाता है कि अभिनेता संवाद प्रस्तुत करते समय किस शब्द को कैसे बोलेगा(गी) और उच्चारण की ध्वनि के भाव क्या होंगे। अब मूल भाषा के संवादों के इस भाव या विशेषता को अनुवादक द्वारा लक्ष्य भाषा में उतार पाना एक विकट समस्या होती है।

कथानुवाद की समस्याएं -

कविता तथा नाटक की ही तरह कहानी, उपन्यास अथवा कथा साहित्य में सर्जना का स्तर किसी भी तरह से हल्का या कम नहीं होता है, इसीलिए इसका अनुवाद किसी भी तरह से सहज या सरल क्रिया नहीं होती है। कथा का अपना एक विशिष्ट प्रारूप होता है। इसमें साहित्य की अन्य विधाओं के गुण भी अंतर्निहित होते हैं। जिस तरह से नाटक के पात्र अपनी संस्कृति व पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कथा साहित्य में पूरे पाठ को एकल इकाई के रूप में प्रस्तुत व गर्हण करने से ही उसका अर्थ स्पष्ट होता है। अर्थात संपूर्ण पाठ एक श्रंखला जैसा होता है, जो आपस में गुथी होती है और प्रत्येक कड़ी अगली या पिछली कड़ी को अर्थ प्रदान करती है। इस तालमेल को अनुवाद में कायम रख पाना एक समस्या हो सकती है।

साहित्य की अन्य विधाओं के अनुवाद की तरह ही इस विधा में भी अनुवादक को कथ्य के विभाजन तथा शिल्पगत प्रयोग पर चिंतन मनन करना पड़ता है। अनुवादक कभी कुछ जोड़ता(ती) है तो कभी कुछ हटाता(ती) है। इस सारे कार्य और गतिविधि के साथ उसे मूल पाठ के भाव को बनाए रखना पड़ता है। स्त्रोत व लक्ष्य भाषा में सही प्रतीकों का चयन यहां भी उतना ही कठिन और समस्याप्रद होता है। किसी हिन्दी कहानी में हिन्दू विवाह के 'सात फेरों' के साथ लिए जाने वाले सात वचनों को प्रतीक रूप में दूसरी भाषा में उतारना जहां पर इस तरह की संकल्पना भी समस्याजनक हो तो समझा जा सकता है कि प्रतीक खोजना कितनी दुष्कर समस्या हो सकती है। 'चरण स्पर्श' का समतुल्य यूरोपीय भाषा में खोजना एक समस्या है।

अलंकार, मुहावरे और लोकोक्तियां यहां भी अनुवादक को उतनी ही समस्या देते हैं जितनी कि नाटक या अन्य विधाओं में। 'वह गऊ समान है' जैसे मुहावरे के लिए दूसरे देशों में गाय के जैसे सीधे व सम्मानित पालतू प्रतीक को खोजना एक दुष्कर कार्य है। एक बात और, प्राचीन साहित्य का प्रतीक आज के समय में समतुल्य खोजना भी एक समस्या बन सकती है।

सभी साहित्यिक विधाओं के अनुवाद में अनुवादकों को कमोबेश समान समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अनुवाद के दौरान दो भाषाओं का आपसी संचार, अनुवादक की संवेदना तथा स्रोत साहित्य की मूल संस्कृति की समझ, प्रतीकों, मुहावरों व लोकोक्तियों का भरपूर ज्ञान आदि ऐसे गुण हैं, जो साहित्यिक अनुवादक के लिए अपरिहार्य हैं। साहित्यिक अनुवाद के लिए प्रतिभा, क्षमता और अभ्यास तीनों का अत्यधिक महत्व है।

साहित्येतर अनुवाद व उससे जुड़ी समस्याएं -

साहित्य में शामिल समस्त विधाओं के अतिरिक्त शेष विषयों को साहित्येतर विषय कहा जाता है इनमें मानविकी विषय, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कार्यालयीन, वाणिज्यिक, वित्त, कानून आदि विषय शामिल हैं। साहित्यिक और साहित्येतर अनुवादों में मूल अंतर यह है कि साहित्येतर अनुवाद करते समय मूल व स्रोत भाषा के साथ-साथ संबद्ध विषय का भी पर्याप्त ज्ञान आवश्यक होता है। तकनीकी अनुवाद में मूल भाषा में निहित बहुअर्थी तथा संदिग्ध स्थितियों को समाप्त करके लक्ष्य को परिमार्जित करने का प्रयास शामिल रहता है। इन सभी विषयों में अनुवाद की मूल समस्याएं तो वे ही होंगी जो कि किसी साहित्यिक विषय में आती हैं जैसे कि भाषाओं की मूल संस्कृतियों, प्रतीकों, लोकोक्तियों, मुहावरों व विशिष्ट भावों का सटीक प्रस्तुतिकरण। इनमें से प्रत्येक विषय की अपनी विशिष्टताओं के कारण हर एक विषय के अनुवाद में शामिल समस्याएं विषय विशेष से संबंधित भी हो सकती हैं, लेकिन मोटे तौर पर समस्याएं समान ही रहती हैं।

मानविकी विषयों के अनुवाद की समस्याएं

मानविकी वे शैक्षणिक विषय हैं जिनमें प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के मुख्यतः अनुभवजन्य दृष्टिकोणों के विपरीत, मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक, आलोचनात्मक या काल्पनिक विधियों का इस्तेमाल कर मानवीय स्थिति का

अध्ययन किया जाता है। इन विषयों के अनुवाद में भाषाओं (लक्ष्य व स्त्रोत) की महारत के अतिरिक्त निम्नलिखित समस्याएं हमेशा सामने आती रहती हैं–

(i) लक्ष्य भाषा में अनुदित सामग्री का उपयोग क्या होगा? यह जानना इसलिए जरूरी है क्योंकि यह संदर्भित विषय के उस स्तर को निर्धारित करता है जिसका आधार मूल रूप से लक्ष्य पाठक की मानसिक अवस्था तथा विषय विशेष के ज्ञान का स्तर है जिसके लिए अनुवाद किया जा रहा है।

(ii) लक्ष्य भाषा का अपना स्तर क्या होगा? मान लीजिए कि किसी प्रशिक्षण सामग्री का अनुवाद किया जा है, जो कि शिक्षक प्रशिक्षण से जुड़ी है। ऐसी स्थिति में विषय विशेष के ज्ञान के स्तर के साथ अनुवाद में उपयोग की जाने वाली भाषा का स्तर भी मायने रखता है क्योंकि - शिक्षक प्रशिक्षण शिशुशाला के शिक्षकों से लेकर विश्वविद्यालय के शिक्षकों तक, और तो और तकनीकि विषयों के शिक्षकों के भाषा ज्ञान का स्तर भिन्न-भिन्न होगा।

(iii) मानविकी विषयों में यह जरूरी हो जाता है कि यदि मूल भाषा में किसी तरह के भ्रम की संभावना हो तो लक्ष्य भाषा में उसे समाप्त किया जाए। इस कारण से मानविकी विषयों में अनुवाद करना समस्याप्रद हो जाता है। क्योंकि मूल भाषा में उपयोग किए गए कई शब्द या वाक्यांश यदि लक्ष्य भाषा में ठीक उसी प्रकार रख दिए जाएं तो पाठक के लिए भ्रम पैदा हो सकता है इसलिए उस भ्रम की स्थिति का न होना अच्छे मानविकी अनुवाद की विशेषता है।

(iv) मानविकी अनुवाद में एक और समस्या शब्दावली से जुड़ी हुई है क्योंकि हर एक विषय की अपनी एक मानक शब्दावली होती है। यदि अनुवादक मानक और प्रचिलित शब्दावली के सही उपयोग से परिचित नहीं होगा(गी) तो उसका अनुवाद, पाठक की समझ से परे होगा।

(v) मानविकी विषयों का ज्ञान अत्यधिक महत्वपूर्ण है और कई विषय जैसे दर्शन शास्त्र में प्रतीकों आदि की उपस्थिति हो सकती है ऐसे में मानविकी विषय भी साहित्य के विषयों जैसा व्यवहार कर सकते हैं। इन परिस्थितियों में ऐसे मानविकी विषय से संबंधित अनुवाद में वे सारी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जो कि साहित्यिक अनुवाद में होती हैं।

तकनीकि, प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग विषयों के अनुवाद की समस्याएं–

तकनीकि, प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग विषयों के अनुवाद में इन सभी विषयों का पर्याप्त ज्ञान और समझ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन सभी विषयों से संबंधित शब्दावली काफी जटिल हो जाती है। इन विषयों के अनुवाद में अनुवादकों की कुछ आम समस्याएं निम्नलिखित हैं–

(क) मानक तकनीकि शब्दावली का सीमित होना। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उपरोक्त विषयों के अनुवादकों की सबसे बड़ी समस्या मानक शब्दावली का सीमित या अनुपलब्ध होना है। ऐसी स्थिति में बेहद जटिल तकनीकि शब्दों के मामले में लिप्यांतरण से काम चलाया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि पाठक का तकनीकि ज्ञान विशेषज्ञ स्तर का न हो तो अनुवाद अपना मूल्य खो देता है।

(ख) तकनीकी अनुवाद के क्षेत्र में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अधिकांश अनुवादक कई–कई विषयों पर काम करते हैं, लेकिन उस सभी विषयों पर उनकी विशेषज्ञता संभव नहीं होती है, ऐसी स्थिति में औसत गुणवत्ता वाले अनुवाद का जोखिम बना रहता है।

(ग) यदि अनुवादक को उस लक्ष्य की सटीक जानकारी न हो तो अनुवाद का मूल अभिप्राय पूरा नहीं होता है- जो कि संप्रेषण है। मान लीजिए कि चिकित्सा के क्षेत्र में किसी आम बीमारी जैसे - टीबी से संबंधित कोई ऐसा पाठ अनुवाद किया जाए जो कि आम जनता के बीच बीमारी की जानकारी व संदनशीलता बढ़ाने के लिए हो और अनुवादक शीर्षक का अनुवाद कर दे तो ऐसे में इस सूचना या जानकारी वाले पर्चे को आमजन द्वारा समझ पाना असंभव हो जाएगा और अनुवाद अपनी उपादेयता खो बैठेगा।

कार्यालयीन विषयों के अनुवाद की समस्याएं-

भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए यह आवश्यक हो जाता कि सरकारी कामकाज की एक देशव्यापी भाषा हो, जो सभी को स्वीकार्य हो। 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया गया। इसके पश्चात यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी भाषा का प्रचार व प्रसार अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में सुनिश्चित किया

जाएं। इसमें आने वाली समस्याओं के क्रम में द्विभाषा फार्मूला अपनाया गया। केन्द्र सरकार ने यह प्रयास किया कि उसके संचार व कार्य संबंधी व्यवहारों में राजभाषा के रूप में हिन्दी का उपयोग किया जाए तथा हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अलावा जो प्रदेश है वहां पर यथासंभव वहां की भाषा में संवाद भी जारी रखे जाएं। रेलवे तथा राष्ट्रीयकृत बैंक व्यवस्था इसका एक सटीक उदाहरण है। इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अनुवाद एक मुख्य हथियार साबित हुआ है।

(i)इस क्षेत्र में भी समस्या कमोबेश वैसी हैं जैसी कि तकनीकि विषयों के क्षेत्र अनुवाद से संबंधित है। कार्यालय विशेष की शब्दावली की अनुपलब्धता, उसकी दुरूहता, व्यावहारिकता तथा अनुवाद की गुणवत्ता।

वाणिज्यिक विषयों के अनुवाद की समस्याएं-

आज भूमंडलीकरण के दौर में व्यापार भौगोलिक सीमाओं को लांघ गया है। बहुराष्ट्रीय आकार की कंपनियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उनके उत्पाद और उनकी जानकारियां सभी उपभोक्ताओं को उनकी अपनी भाषाओं में उपलब्ध हों। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवाद की सहायता ली जाए। बहुराष्ट्रीय प्रकृति के व्यापार में नियंत्रण के लिए कंपनियों को भिन्न-भिन्न देशों में स्थित अपने परिचालनों उस देश-विशेष का भाषा में संवाद करना होता हैं यहां पर अनुवाद उपयोगी होता है।

(i) वाणिज्य, वित्त एवं बैंकिंग क्षेत्रों में अनुवाद के लिए अनुवादकों को भी क्षेत्र विशेष का ज्ञान होना परम आवश्यक है। वाणिज्यिक पाठ - साहित्यिक, अर्ध-तकनीकी तथा गैर-तकनीकी तीनों तरह का हो सकता है। इनमें शाब्दिक अनुवाद की अपेक्षा अधिक रहती है तथा शब्दावली चयन एक समस्या हमेशा रहती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अनुवाद चाहे साहित्यिक हो या साहित्येतर, मूल इन दोनों प्रकार के अनुवादों में कुछ भूलभूत अंतर हैं - यदि भाव और शब्दपरक अनुवाद के अनुपात को देखा जाए तो साहित्य में भावपरक अनुवाद की मात्रा बहुत अधिक व शब्दपरक अनुवाद की मात्रा बहुत कम या शून्य होती है, साहित्येतर अनुवाद में ठीक इसका विपरीत होता है। साहित्यिक अनुवाद में मूल शब्दों की हानि होने की संभावना प्रबल होती है जबकि साहित्येतर विषयों में आमतौर पर ऐसा नहीं होता है।

शब्दावली ज्ञान, लक्ष्य पाठक के मानसिक स्तर की जानकारी तथा विषय विशेष का अच्छा ज्ञान साहित्येतर अनुवाद के लिए परम आवश्यक है।

5

हिन्दी साहित्य और अनुवाद

कार्यालयी अनुवाद का साहित्य से मीलों का फासला है और इस बात का अंदाजा तब हुआ जब मैं 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों अंक लेकर आया और उन्हें पढ़ा। पढ़ने पर महसूस हुआ कि दोनों पत्रिकाओं में विषय वस्तु के साथ-साथ शीर्षकों में भी काफी अंतर था। अनुवादक ने अनुवाद करते समय सम्पूर्ण वाक्य विन्यास ही बदल दिया था, इतना अंतर ? समझना मुश्किल हो रहा था कि कौन सा मूल है तथा कौन सा अनुवाद। कुछ एक और अनुवाद पढ़े तो लगा कि कई जगह अनुवाद मूल से अधिक सुंदर तथा सरल था। तब समझ आया कि कार्यालयीय अनुवाद तथा साहित्यिक अनुवाद में कितनी भिन्नता है। साहित्यिक अनुवाद जितना कलात्मक और सुंदर है, कार्यालयीय अनुवाद उतना ही नीरस और शुष्क और ऐसा शायद इस लिए भी है क्योंकि साहित्यिक अनुवाद में शब्दों की सीमा नहीं है परंतु कार्यालयीय अनुवाद की अपनी सीमाएं हैं तथा अपनी अलग भाषा शैली है, कार्यालय में प्रत्येक शब्द का एक अलग एवं अद्वितीय अर्थ है।

हिन्दी साहित्य में जितनी सरल, राजभाषा में उतनी ही बोझिल है और वजह है शब्दकोश। दरअसल ये शब्दकोश तैयार करना शब्दावली-आयोग तथा राजभाषा संबन्धित आयोगों आदि का काम था ताकि अभिव्यक्ति कर सकने के योग्य हिन्दी को एक व्यापक स्वरूप के साथ एकरूपता प्रदान की जा सके। अगर डॉ जयंती प्रसाद नौटिया जी के शब्दों में कहें तो "हिन्दी बनाम राजभाषा के

अघोषित शीत युद्ध का श्रीगणेश यहीं से होता है, क्योंकि ऐसे आयोगों में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भाषाविदों, साहित्यकारों को नियुक्त किया गया ताकि परस्पर सहयोग से व्यावहारिक नजरिया अपना कर देश की जनता के अनुकूल हिन्दी का एक सर्वग्राही शब्दकोश तैयार किया जा सके"। लेकिन इस सबके बीच शायद उनका अहम आ गया और इस टकराव में हिन्दी पिस गई और मेरा मानना है कि इसी टकराव के फलस्वरूप ऐसे-ऐसे शब्दों का निर्माण हुआ, जिनके प्रयोग से हिन्दी भाषा का सहज-स्वाभाविक रूप ही खो गया। यही वजह है कि हिन्दी तथा राजभाषा एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न नजर आती है।

यहाँ मैं एक घटना के माध्यम से अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करना चाहूँगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भार में एक स्वतन्त्रता सेनानी को ब्रिटिश न्यायालय के द्वारा फांसी की सजा हुई उस समय फांसी के सजा को सिर्फ लिखा जाता था, सजा का ऐलान हो चुका था अब कुछ भी नहीं हो सकता था,तब चितरंजन दास जी ने अपनी सूझ बूझ से सेनानी को फांसी पर लटकने के तुरंत बाद फांसी से मुक्त करा दिया और वो बच गया, इस प्रक्रिया में न्यायालय के आदेश की तो अक्षरशः पूर्ति हो गई। साथ ही सेनानी को भी बचा लिया गया।

दास जी का तर्क था कि एक ही गलती के लिए किसी भी दोषी को दो बार दंडित नहीं किया जा सकता यह नियमों के विरुद्ध है। अतः उनके तर्क को कोई भी नहीं काट सका और ब्रिटिश न्यायालय को उस सेनानी को मुक्त करना पड़ा। इस घटना के बाद ही जघन्य अपराध के लिए कठोरतम दंड की भाषा में परिवर्तन किया गया तथा उसे "(ज्व इम ंिदहमक) फांसी पर लटकाएँ" से बदल कर "(ज्व इम ंिदहमक जपसस कमंजी) म्रत्यु तक फांसी पर लटकाएँ" किया गया। ठीक इसी प्रकार कार्यालयीय अनुवाद में एक शब्द का अंतर या एक शब्द की कमी अर्थ का अनर्थ कर सकती है। कार्यालयीय अनुवाद में भाषा का अपना एक अलग ही प्रवाह होता है जिसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

जबकि इसके ठीक विपरीत साहित्यिक अनुवाद सिर्फ अर्थ के अंतरण का कार्य नहीं करता बल्कि यह तो पाठ का रूपांतरण करता है और इसी प्रक्रिया में अर्थ भी रूपांतरित हो जाता है। देरिदा ने अनुवाद को एक 'सुव्यवस्थित रूपांतरण' कहा है। इसके साथ एक महत्वपूर्ण बिंदु यह भी है कि साहित्यिक अनुवाद अपनी प्रक्रिया में शामिल भाषाओं को एक समान स्तर पर लाने का प्रयास भी करता है, और ऐसा करते हुए यह किसी भाषा विशेष की प्रभुता को

भी समाप्त करने का प्रयास करता है। इसको समझने के लिए मैं यहाँ पर एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा–

"मुझे लगता है कि मनुष्य के पास एक आस्था होनी चाहिए, और कुछ नहीं तो उसे कोई विश्वास और आस्था खोज लेनी चाहिए वरना उसकी जिंदगी सूनी और खोखली हो जाएगी"।

इस अवतरण में जो बातें ध्यान देने योग्य हैं, वे हैं 'उंद' का अनुवाद यहाँ 'मनुष्य' किया गया और इस तरह से इसे लिंग जनित सीमा से मुक्त किया गया है जिससे अनुवाद का प्रभाव व्यापक हुआ है। अंग्रेजी नाट्यांश में जहाँ शब्द का ही दो बार प्रयोग किया गया है, वहीं हिंदी अनुवाद में उसके लिए अनुवादक ने 'सूनी और खोखली' का प्रयोग कर स्थिति की मार्मिकता को बनाए रखा है।

6

जनसंचार माध्यमों का अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग

पत्रकारिता में अनुवाद

वर्तमान समय में मीडिया की अनुवाद आवश्यकता बन गई है। मीडिया सीमा विहीन है। इसलिए मीडिया को भौगोलिक सीमा को भूलकर अपने पाठ कों की भाषा में समाचारों को प्रस्तुत करना होता है। विश्व और भारत में भाषाई विविधता के कारण यह प्रस्तुतिकरण मात्र अनुवाद से संभव है। सामान्यतः देश विदेश के समाचार वहां के समाचार ऐजेंसियों द्वारा उस देश की अपनी मूल भाषा में विश्व के अन्य देशों के समाचार पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजे जाते हैं। विदेशी भाषा में प्राप्त इन समाचारों को अनूदित करके प्रत्येक देश के समाचार पत्र इसे अपनी भाषा या भाषाओं में प्रकाशित करते हैं।

उदाहारण के लिए रूस, चीन, जापान, फ्रांस, अमेरिका अथवा इंग्लैण्ड से समस्त समाचार न तो अंग्रेजी भाषा में प्राप्त होते हैं, और न हिंदी और भारतीय भाषाओं में। यह उस देश की अपनी-अपनी भाषाओं में लिखे होते हैं। इन सभी समाचारों को अनूदित करके देश-विशेष की भाषा में वहां के समाचार पत्र प्रकाशित करते हैं। इसलिए पत्रकारिता और अनुवाद का अंतरसंबंध बहुत घनिष्ठ और नजदीकी है। विश्वपटल और भारत में भाषाई विविधता होने के नाते

पत्रकारिता में समाचार की सत्यता के लिए अनुवाद का सहारा लेना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। खासकर हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में ''सभी हिंदी में प्रकाशित होनेवाले अखबारों को अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के निरन्तर अद्यतन और सही ढंग से अंकन के लिए अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की सहायता लेनी ही होती है।''

वर्तमान समय तकनीक और प्रौद्योगिकी का समय होने के नाते संचार माध्यमों में काफी बदलाव आया है। पत्रकारिता का चेहरा पूर्ण रुप से बदल गया है। इंटरनेट के माध्यम से आम जनता प्रत्येक समाचार को बहुत ही जल्दी जान रही है। कसी एक खबर को जानने के लिए प्रिंट मीडिया के प्रकाशित समाचार पत्र,टेलीविजन के 7:00 बजे या 9:00 बजे वाले समाचार और रेडियो द्वारा प्रसारित विशिष्ट समय के समाचार पर निर्भर होने की आज आवश्यकता नहीं है। आज आप घटना के कुछ ही घन्टों में तस्वीर के साथ इंटरनेट के माध्यम से एक क्लिक पर सब कुछ देख और जान सकते हैं। ब्लॉग, सोशल नेटवर्किंग और ई–पेपर के माध्यम से पत्रकारिता का विस्तार हुआ है। ये सारे विस्तार और बदलाव सकारात्मक है किन्तु सत्यता और प्रामाणिकता के लिए भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले अखबारों को अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के अखबारों की सहायता लेनी पड़ती है। भारतीय संदर्भ में अग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के अखबारों में प्रकाशित समाचारों को प्रामाणिक मानते हैं तब भारतीय भाषाओं में प्रकाशित अखबारों के लिए अनुवाद की सहायता महत्वपूर्ण बन जाती है।

यह कड़वी सच्चाई है कि, भारतीय भाषाओं में किए गए शोधों की गुणवत्ता अन्य विदेशी भाषाओं में किए गए शोधों की गुणवत्ता से तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर की है। भारत के शोधार्थियों में अपने विषय के तह तक जाने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। इसलिए समाचार पत्रों के लेखों और संपादित लेखों के लिए संपादक महोदय को ही नहीं, तो किसी भी विषय के अध्ययन कर्ताओं को अधिकतर अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के अध्ययन सामग्री पर निर्भर होना पड़ता है। भारतीय भाषाओं में प्रमाणिक संदर्भ पुस्तकें कम होने के कारण अन्य भाषाओं के संदर्भ पुस्तकों का अनुवाद करना आवश्यकता बन जाती है। अनुवाद के कारण ही भारतीय पत्रकारिता में विचारों का परस्पर आदान–प्रदान संभव हुआ है। इसी माध्यम से अलग–अलग संस्कृतियों की जानकारी एवं राज्यों–राज्यों में आपसी तालमेल स्थापित होगा। ऐसे कई संदर्भो में अनुवाद का महत्व बढ़ जाता है।

हर देश में, समय और कालानुरूप अनुवाद होते गए है, खासकर धर्म प्रसार के साहित्य के संदर्भ में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दूसरी और अनुवाद के संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि, ''अनुवाद एक ऐसा माध्यम है, जो परस्पर अपरिचित भाषाओं के संसार को एक-दूसरे के समीप लाता है और एक नई पहचान की सृष्टि करता है। इससे अपरिचित ज्ञान के विविध द्वार खुलते हैं। मनुष्य नई सम्भावनाओं, नई अभिव्यक्तियों और नई दक्षताओं से सम्पन्न होता है।''

उपरोक्त कथन पत्रकारिता में अनुवाद की अनिवार्य भूमिका को स्पष्ट करता है। तो दूसरी और यह कहना उचित होगा कि, पत्रकारिता में अनुवाद के कारण ज्ञान का विस्तार होता है। लोगों को नई-नई सूचनाओं से अवगत करना, अनुवाद के कारण सम्भव हुआ है। इसलिए ''हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का बड़ा हिस्सा अनुवाद पर आधारित रहा है।''

यह बात सच है कि वर्तमान समय में हिंदी में मौलिक सोच और लेखन करने वाले पत्रकार, सम्पादकों की संख्या बढ़ी है किन्तु अन्तर्रा ट्रीय समाचारों, पुस्तक समीक्षा, तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे विषय के लिए आज भी अनुवाद ही सहायक बना हुआ है। क्योंकि ज्यादातर विज्ञान का साहित्य अंग्रेजी भाषा में लिखा जाता है, यह सच्चाई है। तो दूसरी ओर वर्तमान समय और आगे भी भाषाई विविधता जब-तक होगी तब-तक भारतीय भाषायी अखबारों में अंग्रेजी समाचार एजेंसियों से खबरों को हिन्दी या अन्य भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद करना अनिवार्य होगा और भविष्य में इसका महत्त्व कम होने की बजाए बढ़ता जाएगा।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आज यह आवश्यक है कि, भारतीय भाषायी पत्रकारों की अंग्रेजी पर भी अच्छी पकड़ होनी चाहिए। उन्हें अंग्रेजी से अपनी भाषाओं में खबर या लेख का अनुवाद करना आना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि, पत्रकार को अनुवाद के ज्ञान की अनिवार्यता है। तभी वह भाषायी विविधता वाले देश में अपने पाठकों को न्याय दे सकता है।

किसी एक भाषा के ज्ञान की अपनी मर्यादाएं होती है। सोच का एक दायरा होता है। पत्रकारों को इस दायरे से बाहर निकालकर सोचना आवश्यक है। किसी व्यक्ति विशेष के विचारों को अपनी भाषा के समाचार पत्र के माध्यम से प्रेषित करने के लिए अंग्रेजी भाषा पढ़ना तथा उससे अनुवाद करना पत्रकार के लिए आवश्यक है। तभी वह अपने पाठकों कुछ नया विचार, दर्शन दे सकता है। जो सुधी पाठकों की अपेक्षाएं होती हैं।

वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक मीडिया का काफी बोलबाला है। कुछ चैनल चोबीसों घण्टे समाचार तथा उसका विश्लेषण देते हैं। ''इन न्यूज चैनलों के विस्फ्फोट से अनुवाद की भूमिका में एक नया आयाम जुड़ा है।"

जैसे– प्रत्येक चैनल हिंदी और अंग्रेजी में समाचार देता है तब उसे अनुवाद की जरूरत होती है। तो कुछ अंग्रेजी के चैनल अपनी लोकप्रियता बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा में भी अपने अंग्रेजी समाचारों का संक्षेप में हिंदी लिखित रूप प्रसारित करते हैं। तो दूसरी और हिंदी चैनल भी विशिष्ट समय अंग्रेजी में समाचार प्रसारित करते हैं। यह दोनों प्रसारण अनुवाद के मध्यम से ही संभव होते हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि, इलेक्ट्रानिक मीडिया का भी काम अनुवाद के बगैर नहीं चलता। बल्कि उसे तो प्रसारण की समय सीमा ज्यादा होने के नाते ज्यादा अनुवाद करना पड़ता है। जाहिर है ज्यादा कार्यक्रम का प्रसारण याने ज्यादा अनुवाद का कार्य।

सामाचार चैनलों को विदेश से प्राप्त खबरें अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में होती हैं। इसका हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में तत्काल अनुवाद कर समाचार प्रेषित करना होता है। इसलिए पत्रकार महोदय दुभाषी तथा अंग्रेजी से भारतीय भाषा में अनुवाद करने के लिए सक्षम होना आवश्यक है। जनसंचार का क्षेत्र विस्तार बहुत बड़ा है। इसमें सिनेमा, वृत्तचित्र टेलीविजन धारावाहिक, और विभिन्न मनोरंजन कार्यक्रम आते हैं। इन सभी में अनुवाद की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। भाषाई विविधता के कारण मनोरंजनात्मक, शैक्षिक और अन्य कार्यक्रमों को भारत के संदर्भ में भारतीय भाषाओं तथा अन्य देशों तथा राज्यों के संदर्भ में वहां की मातृभाषा में प्रेषित किया जाता है। मनोरंजनात्मक कार्यक्रम प्रसारण के कारण मीडिया एक उदयोग बन चुका है। विश्व प्रसिद्ध चैनल और उत्पाद भारत और अन्य देशों में अपना व्यापार करने हेतु अनुवाद के सहारे उस देश की भाषा में कार्यक्रमों तथा उत्पादों की जानकारी अनूदित करके ही अपने उद्‌देश्य में सफल होते हैं। उदाहारण के लिए विश्व का प्रसिद्ध डिस्कवरी चौनल आज भी अपने सभी कार्यक्रमों को भारत में हिदी भाषा में प्रसारित करता है। इसी तरह कई अंग्रेजी फिल्मों को 'हिन्दी सब टाइटलिंग' तथा प्रोदशिक फिल्मों को 'अंग्रेजी सबटाइटलिंग' के साथ प्रदर्शत किया जाता है। उपर्युक्त सभी कार्य अनुवाद के माध्यम से ही किए जाते हैं।

पत्रकार एक भाषा के माध्यम से अपनी बात जनता के बीच रखता है। जनता भी उसे एक भाषा के माध्यम से ग्रहण करती है। इसलिए यहा यह कहना उचित

होगा की भाषा का अनुवाद से गहरा सम्बन्ध्ध है। तो दूसरी ओर प्रत्येक भाषा की अपनी व्यवस्था होती हैं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ होते हैं। जिनको अन्य भाषाओं में व्यक्त करने के लिए समानार्थी शब्द नहीं होते या दोनों भाषाओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समान नहीं होती। इसलिए अनुवाद कार्य कठिन हो जाता है। और पत्रकारों को भावानुवाद या अन्य अनुवाद प्रकार का सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि पत्रकार महोदय को समाचार को बहुत जल्द प्रकाशन हेतु देना होता है। कई सारे समाचारों के अनुवाद की लम्बी सूची उसके पास होती हैं। कम समय के चलते वह भावानुवाद और सारानुवाद ही कर पाता है। किन्तु यह अनुवाद कार्य कभी-कभी समाचार पत्र में उपलब्ध्ध जगह पर निर्भर करता है।

प्रत्येक विधा की अपनी एक अलग भाषा होती है। जनसंचार माध्यम भी इससे अछूता नहीं है। उसकी भी अपनी एक विशिष्ट भाषा है। यह भाषा सूचना परक और सरल है क्योंकि इसे सामान्य जनों के बीच व्यवहार करना होता है। इसलिए इसके अनुवाद में भी सरलता, सहजता और पठनीयता चाहिए। न कि साहित्य की तरह शैली का विशिष्ट आग्रह। किन्तु हर पत्रकार की अपनी एक अनुवाद करने की शैली जरूर होती है। इसके बावजूद अनूदित समाचार में भी आपको एक लय दिखाई देती है। विशिष्ट भाषा और पदों का सुघड़ संयोजन दिखाई देता है। जो अनुवाद होकर भी अनुवाद नहीं लगता। यह पत्रकार के अनुवाद कार्य के लम्बे अनुभव से सम्भव होता है।

पत्रकारिता और अनुवाद : परस्पर सम्बन्ध

पत्रकारिता और अनुवाद का परस्पर सम्बन्ध घनिष्ट है, क्योंकि देश दुनिया की खबरों के लिए पत्रकार को अनुवाद का सहारा लेना ही पड़ता है। इसका कारण देश दुनिया कि भाषाएं अलग-अलग है। हम सब यह जानते है कि, 'पत्रकारिता का पहला उद्देश्य है पाठकों को उनके चारों और घट रही घटनाओं, पनप रही प्रवृततियों, हो रहे शोधकार्यों, वैज्ञानिक प्रगति और आसन्न खतरों से अवगत कराना है। इसी के साथ घटनाओं, प्रवृत्तियों और मानव को प्रभावित करने वाले मुद्दों का अर्थ बताना भी उसका कर्तव्य है। संक्षेप में, जो जानने योग्य है उसे प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य है।'

उपर्युक्त सभी चीजों से अवगत कराने के लिए पत्रकार को अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति तथा शोधकार्य जैसे विषयों की जानकारी अंग्रेजी या अन्य-अन्य भाषाओं में उपलब्ध होती रहती हैं।

समाचार पत्र को मुख्य उद्देश्य जनता कों देश–विदेश में घटित घटनाओं से अवगत कराना है। जनता को अवगत करने के लिए पत्रकार की भाषा सरल, सुलभ, सूचनापरक, प्रवाही होनी चाहिए। इसलिए पत्रकार को अनुवाद करते समय ''सटीक और सहज'' अनुवाद करने के लिए अर्थ विज्ञान और दोनों भाषाओं की विषमताओं की जानकारी होनी चाहिए। इसके न होने से अनायास ही अनुवाद अटपटा लगता है।

निम्नलिखित उदाहरणों से हम इसे समझ सकते हैं–

राजधानी से एक दैनिक पत्र के प्रथम पृष्ठ में छपे कुछ वाक्य इस प्रकार है। जैसे- यह वाक्य (1) गोर्बाचोव ' स्वास्थ्य कारणों' से अपना कार्य संचालन करने में असमर्थ है। इस वाक्य में 'स्वास्थ्य कारणों से' 'रिजंस आफ हेल्थ' का शाब्दिक अनुवाद है। इसका उचित अनुवाद है 'अस्वस्थता के कारण'। दूसरा वाक्य है- (2) प्रवक्ता ने कहा गोर्बाचोव अपने सरकारी निवास पर ' गिरफ्तारी की अवस्था' में हैं। इस वाक्य में 'गिरफ्तारी की अवस्था' का कहीं पर भी अर्थ नहीं लग रहा है। 'गिरफ्तारी की अवस्था' यह वाक्य संरचना ही अपने आप में इस वाक्य में ठीक नहीं बैठती। इसका अनुवाद होना चाहिए 'नजरबन्द' है। इस तरह पत्रकारिता के अनुवाद की गड़बड़िया पत्रकार को अर्थ विज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान के ज्ञान के अभाव के कारण होती है। अनुवाद के लिए इन दोनों का ज्ञान होना पत्रकार के लिए आवश्यक है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुवाद करने वाले सभी पत्रकार तथा अनुवादकों को स्थान भेद की जानकारी होना भी आवश्यक होता है। क्योंकि एक ही तरह के काम करने वाले व्यक्तियों को अलग–अलग देशों में अलग–अलग नाम हैं। जैसे - (1) भारत में 'वित्तमन्त्री' जो काम करते हैं वह काम ब्रिटेन में 'चांसलर और एक्सचेकर' करता है। (2) अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत मंत्रियों को 'सेक्रेटरी' कहा जाता है उसे भारत में हम मंत्री ही कहेंगे, 'सचिव' नहीं।

पत्रकारिता के अनुवाद का व्याकरण

पत्रकारिता के अनुवाद में व्याकरणिक कोटियों का बड़ा महत्व है। जैसे- वचन का ज्ञान होना आवश्यक है। हिन्दी और अंग्रेजी में दो वचन है। एकवचन और बहुवचन किन्तु प्रयोग और वर्तनी के कारण कई असंगतियाँ दिखाई देती है। जैसे - सम्मान देने के लिए क्रिया का बहुवचन रूप प्रयोग किया जाता है। उदाहरण–(1) पिता आए हैं। (2) कल गोर्बाचोव भारत से रवाना हो रहे हैं

आदि। दूसरी और कभी-कभी बहुवचन की जगह एकवचन अच्छा लगता है। उदाहरण- (1)भारतीय विदेश में भी अपने देश को नहीं भूलता। इस वाक्य में 'भारतीय समस्त देशवासियों के लिए है। इसी के समान कारक चिन्ह और उपपद को भी अनुवाद करते समय ध्यान में रखना आवश्यक है। दूसरी ओर कभी-कभी अनुवाद करते समय कुछ छोड़ना पड़ता है तो कुछ अपनी ओर से जोड़ना पड़ता है। जैसे- अंग्रेजी का यह वाक्य 'राइट नाउ, आई कान्टप्रामिज एनी थिंग'- का हिन्दी अनुवाद - 'अभी मैं कुछ नहीं कह सकता' है। इसमें अनुवादक को कुछ छोड़ना पड़ा है। तो दूसरा अंग्रेजी का वाक्य- ' ही लेट-आउट हिज हाऊस' का हिन्दी अनुवाद हैं 'उसने अपना मकान किराए पर दिया'। इसमें अपनी आर से अनुवादक ने कुछ जोड़ा है।

अनुवाद में विशेषण का भी विशेष ध्यान देना होता है। जैसे - अमेरिका का विशेषण अमेरिकी होगा। इसी तरह इटली का इलातवी और यूनान का यूनानी। और उदाहरणों में गुलाब का गुलाबी, मामा का ममेरा, साल का सालाना और रंग का रंगीन आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियां

मुहावरे और लोकोक्तियों कें संदर्भ में अनुवादक को विशेष सावधानी बरतनी होती है। क्योंकि स्थान और सांस्कृतिक विविधता के कारण एक भाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों का वैसे ही अर्थ देनेवाले मुहावरे और लोकोक्तियाँ दूसरी भाषा में हो यह जरूरी नहीं है। खासकर अंग्रेजी से अनुवाद करते समय इसके मुहावरों के भाषिक इकाईयों की पहचान सही ढँग से होना आवश्यक है। वरना गलत अनुवाद की पूर्ण सम्भावना होती है। अंग्रेजी मुहावरों के अर्थ के समान भारतीय भाषाओं में समान मुहावरें न मिले यह सम्भव है। ऐसी स्थिति में अनुवादक सरल भावानुवाद करके काम चला सकता है। जैसे- 'ऑल इज वेल दैट एंड्स वेल' - का अनुवादक 'अन्त भला तो सब भला' या 'नेसेसिटी इज द मदर ऑफ इनवेशन' का सरल अनुवाद 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है'। इस तरह से करना उचित है। तो 'ए ड्राप इन द ओशन' का 'उँट के मुँह में जीरा' सही अनुवाद है।

वाक्य रचना

अनुवाद में वाक्य रचना या पठनीयता का अनुवादक को ज्यादा ध्यान रखना होता है। किसी भी एक भाषा के शब्दों और पदों की समानार्थी और निकटार्थी

अभिव्यक्तियों की सरंचना मिलने पर कभी–कभी स्त्रोत भाषा के वाक्य की बनावट अनुवादक को संकट में डालती है। तो दूसरी और स्त्रोत भाषा की वाक्य रचना अनुवादक पर इतनी हावी हो जाती है कि उस वाक्य में निहित अर्थभेद के व्यतिरेक की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। जैसे– अंग्रेजी का यह वाक्य लीजिए– ''प्रेजिडेंट जिया कैननॉट फील सिक्योर इन इस्लामाबाद इफ ए सेकुलर रेजीम रूल्स इन काबूल।' इसका सही अनुवाद है 'यदि काबुल में धर्मनिरपेक्ष सरकार बनती है तो इस्लामाबाद में राष्ट्रपति जनरल जिया सुरक्षित अनुभव नहीं करेंगे।' यह नहीं की प्रेजिडेंट जिया 'अस्वस्थ होगें'। दूसरा वाक्य अंग्रेजी वाक्यरचना के अनुसार अनूदित है। जैसे '' आज यहाँ बीस आदमी मारे गए जबकि रेलगाड़ी पटरी से उतर गई।' सही अनुवाद है– 'रेलगाड़ी के पटरी से उतर जाने पर आज यहाँ बीस आदमी मारे गए।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि, अनुवादक को स्त्रोत भाषा के वाक्य रचना को बहुत सूक्ष्मता से समझकर लक्ष्य भाषा में वाक्य रचना हो सकती है या नहीं इसपर ध्यान देना आवश्यक होता है। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होता है तथा अनुवाद अटपटा लगता है।

पत्रकारिता के अनुवाद में यह ध्यान रखना अतिआवश्यक है कि, लक्ष्य भाषा की प्रकृति क्या है ? लक्ष्य भाषा के अनुवाद में भी सहज प्रवाह और लोच आना चाहिए। इस लोच और प्रवाह के लिए अनुवादक को विशिष्ट जगहों पर शब्दों और पदों के चयन पर ध्यान देने की जरूरत होती है। तो कहीं लक्ष्य भाषा के व्याकरण और उसकी प्रकृति पर। किंतु पत्रकार अनुवादक समय और व्यस्तता के कारण ध्यान नहीं दे पाते। कुछ जगहों पर स्त्रोत भाषा के कुछ शब्द लक्ष्य भाषा में ज्यों के त्यों रख सकते हैं, खास कर अंग्रेजी, हिंदी, मराठी अनुवाद के संदर्भ में। जैसे – अंग्रेजी के ये शब्द रेल, स्कूल, पुलिस, सीमेंट, बस साईकिल, मोटर, पेट्रोल, डीजल आदि। इनका अनुवाद हिंदी, मराठी में वैसा ही होगा क्योंकि जनमानस में यहीं शब्द दोनों भाषा में वैसे के वैसे रूढ़ हो गए हैं।

वर्तनी–

पत्रकारों के सामने अनुवाद करते समय ज्यादातर समस्या व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के वर्तनी की आतीहै। खासकर अंग्रेजी से अनुवाद करते समय। क्योंकि अंग्रेजी के नामों के अनुवाद के समय गलती की गुंजाइश बनती है। ये गड़बड़ अंग्रेजी वर्तनी के कारण हिंदी और मराठी अनुवाद में होती है। जैसे – अंग्रेजी का

हिंदी, मराठी में कमाल हासन बनता है, तो का मिठुन चक्रवर्ती। किन्तु सही अनुवाद कमल हसन और मिथुन चक्रवर्ती है।

पत्रकारिता के अनुवाद ने अपनी समस्या को कम करने के लिए अंग्रेजी के ढेरों शब्दों को हिन्दी में वैसे-के-वैसे लाया और ये सभी शब्द जनमानस ने स्वीकार किए है। जैसे- टेलीफोन, कूलर, अपार्टमेंट, पेन, टेबल, रोड आदि। ये शब्द हिंदी भाषा के आम प्रचलन में आने से हिंदी के लगने लगे है। तो दूसरी और अंग्रेजी में भी हिंदी के शब्द चल रहे हैं। और इनको शब्दकोश में प्रवेश भी मिला है। जैसे- लाठीचार्ज, आचार, चटणी, घेराव आदि। यह सब पत्रकारिता के अनुवाद के कारण ही हुआ है। अब अंग्रेजी अंग्रेजी न रहकर हिंगलिश या हिंग्रेजी बन गई है।

हम अखबारी भाषा पर नजर डालने से यह समझते हैं, कि इसकी भाषा सरल होती है। इसलिए जब इसका अनुवाद होगा तो वह भी सरल होना चाहिए। इसलिए ''अखबारी अनुवाद में तो सरलता एक अपरिहार्य तत्व है।'

इस तत्व के पालन में अखबारी अनुवाद सरल है। क्योंकि अखबारों में सीमित संख्या में शब्दों का प्रयोग होता है। ज्यादातर पत्रकार अनुवाद करते समय इन्हीं सीमित शब्दों के साथ अनुवाद में नए-नए प्रयोग करते हैं। जो अपने पाठकों की पढ़ने की रुची को बढ़ाते हैं। क्योंकि आज के समय में अनुवाद शाब्दिक अनुवाद न रहकर उससे काफी आगे जा चुका है। इतना कि उसमें सम्पादन-विवेक आ गया है। ज्यादातर अखबार अनुवाद से निकल रहे हैं - किन्तु लग रहे हैं जैसे मूल लेखन है। यह सब संभव होने के पीछे अनुवादक को आज उपलब्ध सुविधाओं में अच्छे शब्दकोश सहज सुलभ हो गए हैं। तो दूसरी ओर इंटरनेट पर उपलब्ध्ध परिभाषा कोश, थिसारस आदि से सहायता मिल रही है। ये सभी उपकरण अनुवाद को मददगार सिद्ध हो रहे हैं।

जनसंचार से जो सामान्य अर्थ बोध होता है, वह है जनता में सूचना संप्रेषण। सूचना सम्प्रेषण की प्रक्रिया 'मानव जीवन' की शाश्वत आवश्यकताओं में से एक रही है। 'प्रत्यक्ष वार्तालाप' मूल रूप में प्रारम्भिक सम्प्रेषण क्रिया थी। इसके बाद ही सूचना सम्प्रेषण के माध्यमों की क्रिया में विकास हुआ, क्योंकि सूचनाओं का आदान-प्रदान मानव जीवन की एक व्यावहारिक आवश्यकता थी। वैज्ञानिक युग के आगमन से पूर्व मनुष्य के पास जैसे साधन उपलब्ध थे उन सभी का प्रयोग मनुष्य ने किया। वैज्ञानिक आविष्कारों ने संचार प्रक्रिया में उसी तरह की नई क्रान्ति की, जैसी उसने वर्तमान सांसारिक जीवन

के हर क्षेत्र में कर दी है। रेलगाड़ियों तथा प्रेस के प्रादुर्भाव ने सूचना-वाहकता तथा समाचार सम्प्रेषणता में क्रान्तिकारी कार्य किया। समाचार-पत्रों ने समाचार और वैचारिक संप्रेक्षण को जल्दी से जल्दी हर सुबह आम जनता के द्वार पर पहुँचा देने वाला बना दिया। इसी कड़ी में बिना तार का तार, दूरभाष, चलचित्र, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का विकास हुआ। सम्प्रेषण के क्षेत्र में मोबाइल, फैक्स ने तो मनुष्य को विराट् बना दिया और संसार को अत्यन्त लघु।

इन वैज्ञानिक आविष्कारों में मनुष्य के कार्यक्षेत्र को चूँकि विराट आयाम दे दिये हैं, अतः वह विराट हो गया है तथा संचार-माध्यमों ने मनुष्य के कार्य-व्यापार को इतना गतिशील कर दिया है कि उसकी दृष्टि, उसकी श्रवणेन्द्रियाँ वाणी और उसकी भौतिक क्रियाएँ संसार के हर कोने में ही नहीं दूर अन्तरिक्ष तक क्षणमात्र में पहुँचने में सक्षम हों गई हैं, अतः संसार उसके लिये अत्यन्त छोटा, जैसे उसके हाथ में एक गेंद के समान आ विराजा है। वह बिना कहीं जाये किसी से भी साक्षात्कार कर सकता है, उससे बात कर सकता है, उसे आदेश और निर्देश दे सकता है।

आज संसार के मानव को एक ऐसे युग में जीने का अवसर प्राप्त हुआ है, जैसा उसे ज्ञात इतिहास ने कभी पहले नहीं दिया, इसलिये वह एक-दूसरे से किसी न किसी रूप में जुड़ गया है। वह एक-दूसरे के दुख-सुख में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में एक-दूसरे का भागीदार हो गया है, इसीलिये तो वह संसार के समाचार जानने को लालायित रहता है, समाचार-पत्र भी उसे सुबह होते ही चाहिए, रेडियो सुनना और दूरदर्शन देखना उसकी प्रथम आवश्यकताओं में शामिल हो चुका है। कभी एक साधारण व्यक्ति को जरा-भी इच्छा नहीं होती थी कि वह अपने राज्य की राजधानी के समाचारों की ही टोह लेता, लेकिन आज उसे यह जानने की ललक रहती है कि अमेरिका ने सद्दाम हुसैन को गिरफ्तार किया है, तो उसके साथ क्या व्यवहार किया जायेगा। ब्रिटेन में क्या हो रहा है। यदि कोई ऐसी धार्मिक घटना घटित होती है, जो इस्लाम के लिये अपमानजनक हो तो संसार का हर मुसलमान उसे सिर्फ पन्द्रह-बीस मिनट में जान लेगा और अगले 24 घण्टे में सभी मुसलमान उसकी भर्त्सना करते दिखाई देंगें। ऐसे राजनीतिज्ञ जिन्हें मुस्लिम मिल्लत से कुछ स्वार्थ साधने हैं तो वह भी उस घटना को लेकर बवाल मचा डालेंगे। यही बात ईसाई समुदाय की भी है। यह विश्व की वर्तमान संचार व्यवस्था की ही देन है।

आज के युग में एक साधारण किसान भी जिसे राजनीति का 'क ख ग' भी नहीं मालूम, प्रेसीडेण्ट बुश, प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेई, मायावती तथा जयललिता की बात करता दिखाई दे सकता है। इसका मूल कारण है कि आज के युग का मनुष्य राजनीति का खिलाड़ी नहीं है तो क्या हुआ, वह राजनीति का समालोचक तो है। यदि गहराई से देखा जाय तो यह समझने, कहने और जान लेने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए कि वर्तमान युग केवल संचार चक्र के नियन्त्रण में आ चुका है। संचार माध्यम राई को पर्वत और पर्वत को राई बनाने में सक्षम हो चुके हैं। यह आमतौर से अनुभव करने की बात है कि कोई समाचार, या कोई अन्य प्रसारण चाहे वह कोई अचम्भीय समाचार या प्रसारण ही क्यों न हो, जन-जनार्दन के लिये वेदवाक्य की तरह स्वीकार्य होता है। कारण--संचार माध्यमों की विश्वसनीयता और यह भी लक्ष्य करने की बात है कि सूचना प्रदायकों के रूप में संचार माध्यम एक से एक बढ़कर इस क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने की स्पर्द्धा में लगे हुए हैं। अर्थार्जन का भी वह भीमकाय उद्योग बन चुका है। जनता के ज्ञान की भूख मिटाने को उसे नित्य ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सामग्री चाहिए। इस कार्य में अनुवाद कार्य उसका सबसे बड़ा साधन है। जनता को राजनेताओं के और अभिनेताओं के वचनों, घोषणाओं, जीवन-चर्याओं, भेदों और रहस्यों की जानकारी उनकी अपनी भाषा में चाहिए। स्वाभाविक बात है कि इस जरूरत की पूर्ति अनुवाद कार्य से ही हो सकती है। आज हर चिन्तन और समाचार का अनुवाद हर भाषा की व्यावसायिक आवश्यकता है। समाचार, विज्ञान, प्रवचन, नाटक, वार्ता, साक्षात्कार आदि, कौन सी ऐसी विधा कही जा सकती है, जिसके अनुवाद की संचार माध्यमों को आवश्यकता नहीं हैं। महत्वूपर्ण बात यह है कि यह अनुवाद अन्य अनुवादों की अपेक्षा यांत्रिक वेग की अपेक्षा रखता है। चाहे दैनिक पत्रों का अनुवाद हो या रेडियों, दूरदर्शन आदि का, अनुवादक के पास कम समय रहता है और उसे उतने ही समय में सारी सामग्री का अनुवाद करना पड़ता है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अनुवाद एक साथ करोड़ों पाठकों एवं श्रोताओं के पास पहुँचता है, इसलिये उसमें संप्रेषणीयता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता आदि गुण सहज में ही होने आवश्यक होते हैं।

जनसंचार माध्यमों में अनुवाद की प्रयोजनीयता

उपर्युक्त सभी साधन संचार माध्यम है। इनके द्वारा जिस सामग्री का प्रयोग होता है, उसमें मौलिक तथा अनुवादित सामग्री, दोनों ही होती हैं।

समाचार-पत्रों में अनुवाद कार्य की विशेष व्यवस्था होती है। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के समाचार बुलेटिनों में भी ऐसी व्यवस्था होती है। समाचार-पत्रों में यह कार्य इस प्रकार होता है—

समाचार प्रमुख रूप से समाचार एजेन्सियों एवं संवाददाताओं से प्राप्त होते हैं, जो देश-विदेश की अनेक भाषाओं से अनुदित होकर विभिन्न भाषाओं के समाचार-पत्रों के सम्पादकों के पास पहुँचते हैं। प्रायः समाचार पत्रोत्तर भाषा में मिले समाचारों का सम्पादकों को अनुवाद करना पड़ता है। संवाददाताओं द्वारा भेजे गये समाचार-प्रायः इस समाचार पत्र की भाषा में ही होते हैं, परन्तु इन समाचारों का संपादक कभी-कभी इस सीमा तक पहुँच जाता है कि वह एक प्रकार से भाषा का भाषा में ही अनुवाद कहा जा सकता है।

समाचार दूरमुद्रक द्वारा भी प्राप्त होते हैं। अनुवाद करते समय आवश्यक सम्पादन भी किया जाता है। इस तरह समाचारों के अनुवाद में सम्पादनकला एवं अनुवादकला का संगम होता है। विषयों का व्यापक ज्ञान, समकालीन घटनाओं के प्रति सजगता, व्यापक अध्ययन, शब्दों का अजस्र भण्डार, शीघ्र अनुवाद करने की क्षमता एवं अनुभव समाचारों के अनुवादकों के लिए अपेक्षित गुण हैं। सभी विषयों की सामान्य जानकारी रखते हुए भी कुछ विषयों में उसकी गहरी पैठ भी होना चाहिए क्योंकि आजकल दूर-संचार के क्षेत्र में भी विशेषज्ञता का प्रवेश हो रहा है, जैसे--राजनीतिक समाचार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियाँ, खेलकूद, व्यापार मण्डी, सांस्कृतिक समाचार, फिल्म समाचार आदि। चूंकि उसको अपने अनुवाद के संशोधन के लिए अधिक समय नहीं मिलता इसलिये उसे सतर्क रहना पड़ता है। कि कहीं जल्दबाजी में कोई ऐसी त्रुटि तो न आ जाए जिससे समाचार-पत्र की साख पर आँच आ जाए।

समाचार के अनुवाद में सबसे बड़ी कठिनाई उसकी भाषा के सम्बन्ध में होती है। समाचार सम्पादक प्राप्त सूचनाओं में उलट-फेर तो नहीं करते, लेकिन समाचार के शब्दानुवाद का प्रयास गड़बड़ी का कारण हो सकता है। अंग्रेजी में प्राप्त समाचारों के साथ अक्सर यही कठिनाई होती है। अक्सर इन समाचारों का भाव लेकर उसे सरल एवं स्पष्ट भाषा में लिख देना ही सबसे उत्तम उपाय होता है। परन्तु कठिनाई तो नये-नये शब्दों एवं प्रयोगों के अनुवाद के सम्बन्ध में होती है। कोश आदि से परामर्श करने का समय भी अक्सर नहीं मिलता और अनेक नये शब्द तो कोश में भी नहीं मिल पाते क्योंकि वे दुनिया की दूर-दूर की भाषाओं से आते हैं।

प्रामाणिकता लाने के लिए उद्धरण, कानूनी व्यवस्था आदि का शब्दानुवाद अपेक्षित होता है। समाचारों के अनुवाद में प्रायः भाव एवं विचारों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। शब्दानुवाद तभी किया जाता है, जब ऐसा करना अपरिहार्य हो।

दूरसंचार के अनुवाद आकाशवाणी और दूरदर्शन, श्रव्य और दृश्य स्थितियों से सामंजस्य रखने के कारण एक विशेष तकनीक की अपेक्षा करते हैं। एक प्रकार से इनकी रूपान्तरण क्रिया में सृजनात्मक तत्त्व भी मिले होते हैं और संपादकीय तत्त्व भी। अतः वर्तमान में दूरसंचार माध्यमों की तकनीक ने अनुवाद क्रिया को एक नई कला का ही रूप दे दिया है।

कई विदेशी भाषाओं जैसे जापानी आदि की ध्वनियों को अंग्रेजी के बजाय यदि उन भाषाओं से सीधे भारतीय भाषाओं में लिखा जाय तो ज्यादा सहज लग सकता है। रोमन के कारण बड़ी गड़बड़ी होती है, जैसे मलयालम के पट्टम ताणु पिल्लै को अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त समाचारों के कारण 'पोथम थाणु पिल्ललाई', लिखा जाता है और हिन्दी का लाठी शब्द मलयालम में 'लाती' बन जाता है। शीर्षकों के अनुवाद में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह उत्सुकता और कौतूहलवर्द्धक हों, उनके साथ दी गई समाचार सारीय पंक्तियाँ भी वैसी ही भाषा में होनी उपयुक्त होती हैं। शीर्षकों को अंग्रेजी आदि से नकल न करे स्वतन्त्र रूप से रचित होना शीर्षकानुवाद में उत्तम होता है। यह लक्ष्य-भाषा के अनुरूप होना चाहिये। वाक्य-रचना में भी लक्ष्य-भाषा की स्वाभाविक वाक्य-रचना को अपनाना चाहिए। जटिल वाक्य-रचना की अपेक्षा सरल एवं लघु वाक्य समाचारों को सहज रूप से गेय करते हैं।

प्रायः हर रचनाकार की यह धारणा रहती है कि उसका लेखन दृश्यसिद्ध भी है, और श्रव्यसिद्ध भी, परन्तु ऐसा नहीं होता, उसको भव्य और दृश्य सिद्ध करने के लिये उसका रूपान्तरण करना ही पड़ता है, जिसे न तो शब्दशः अनुवाद ही कहा जा सकता है और न दृश्यतः ही। उसमें स्वयमेव सृजन के तत्त्व आ जाते हैं, क्योंकि प्रायः बहुत से वर्णनात्मक कथ्य को श्रवणात्मक और दृश्यात्मक भी बनाना पड़ता है। इस स्थिति में अनुवादक की सक्षम कल्पनाशीलता ही दृश्य को सशक्त बना पाती है।

निष्कर्ष

समाचारों के अनुवाद के समय कथ्य के अलावा भाषा की सरलता और शैली की रोचकता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। पत्रकार स्त्रोत भाषा और

लक्ष्य भाषा के मर्म से अच्छी तरह से परिचित हो, तथा उसे दोनों भाषाओं के मुहावरों, लोकोक्तियों को समझने की शक्ति हो। तथा उसे दोनों भाषाओं की व्याकरणिक, सांस्कृतिक और अर्थगत भिन्नताओं का ज्ञान अवश्य हो तभी वह सरल, स्वाभाविक और मूल के करीब याने सूचना परक अनुवाद कर सकता है। जो पत्रकारिता के अनुवाद की अनिवार्य आवश्यकता है।

7

विज्ञापन में अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग

वर्तमान युग में विज्ञापन को विशेष रूप से व्यापार और उद्योग से संयुक्त हुआ अनुभव किया जाता है। जब हमारे सामने 'विज्ञापन' शब्द प्रकट होता है, हमें यही अनुभूति होती है कि वह किसी विपणनीय वस्तु से सम्बन्धित है, परन्तु यह एक भ्रम है, जिसे विपणन क्षेत्र में विज्ञापन के भारी प्रवेश ने पैदा कर दिया है। वस्तुतः विज्ञापन तो मनुष्य की सहज प्रवृत्ति में ही सन्निहित होकर उसके आत्म प्रकाशन की भावना से सम्बद्ध है।

मनुष्य सदैव और निरन्तर अपने विषय में दूसरों को ज्ञान कराना चाहता है, क्योंकि वह दूसरों के बीच रहता है। उसकी आन्तरिक प्रेरणा उसे दूसरों को विशेष रूप से अपने गुणों अर्थात् अच्छाइयों (जिन्हें सामाजिक रूप में स्तुत्य और आदर्श समझा जाता है) के बारे में जानकारी कराने के प्रच्छन्न और अप्रछन्न कार्य कराती रहती है। यह विज्ञापन का आदिम रूप है, जो विज्ञापन के साधनों के साथ शाश्वत रूप से सम्बन्धित रहा है और जाने-अनजाने एक कला के रूप में विकसित भी हुआ है।

वस्तुतः मनुष्य की समस्त सृजनक्रिया विज्ञापन कला का ही परिणाम है। अतः मानव जीवन में विज्ञापन की ऐसी भूमिका रहती है, जिसे वह कभी स्वयं से अलग नहीं कर सकता। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य को

ब्रह्यचर्योपासना, तपस्या, पूजा अर्थात् अध्यात्म चिन्तन एकान्त में करना चाहिए, कहीं निर्जन वन में जाकर करना चाहिए, जन-संकुल संसार से दूर रहकर मनुष्य को ब्रह्य के प्रति समर्पित होना चाहिए तभी उसे मोक्ष अर्थात् ब्रह्यलीन होने का मार्ग प्राप्त हो सकता है, लेकिन प्रायः इस समाज-संकुल संसार में मनुष्य ऐसा नहीं कर पाता, कभी तो वह अपनी तपस्या के चमत्कारी परिणामों से ससांर का भछण करने समाज के रंगमंच पर उतर आता है, कभी अपने दार्शनिक चिन्तन ज्ञान से प्रेरित उपदेशक का रूप धारण कर भीड़ से भरे पंडालों की शोभा बनकर प्रकट होता रहता है। यह सभी बातें उसकी आत्मप्रवृत्ति की परिचायक हैं जिनकों हमे विज्ञापन के क्षेत्र में अलग नहीं कर सकते। कोई विरला ही इनसे मुक्त रह सकता है।

आमतौर से मनुष्य जब कोई सामाजिक भलाई के लिये कार्य करता है, जैसे मंदिर, धर्मशाला, विद्यालय, अनाथालय आदि का संस्थापन। प्रायः देखा जाता है कि वह उसमें अपने नामपट्ट आदि को लगवाकर उस कार्य का श्रेय लेना नहीं भूलता, परन्तु इस प्रकार के आत्म-प्रकाशन को 'विज्ञापन' शब्द से अलग समझा जाता है। इसी प्रकार मनुष्य जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित करने के लिए राजाज्ञाओं से नियमों के प्रकाशन को भी मूलतः विज्ञापन शब्द में अभिहित नहीं किया गया, परन्तु वह भी विज्ञापन के ही क्षेत्र में आते हैं। वस्तुतः विज्ञापन शब्द तब प्रचलित हुआ जब समाचार-पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ और व्यवसायी अपने उत्पादों के विपणन कार्य की अभिवृद्धि करने के लिये उनकी गुणवत्ता आदि से सम्बन्धित विज्ञप्तियाँ छपवाने लगे। इसके बाद समाचार-पत्र एक लम्बे समय तक ऐसी विज्ञप्तियों के साधन रहे, और जब ऐसी विज्ञप्तियों को जनता की जानकारी तक पहुँचाने के लिये और साधन प्रकट हुए तो वह भी इनके माध्यम बनते चले गये।

प्राचीनकाल में विज्ञापन का सबसे सरल उपाय था जगह-जगह जाकर डुगडुगी, ढोल, घण्टे आदि की ध्वनि करके लोगों को इकट्ठा करना और अपनी बातें उनके सामने कहना। भाषण कला का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार हुआ। यायान, खेल-तमाशे, आदि भी इसी विधा से किये गये विज्ञापनों द्वारा आहूत किये जाते थे, सरकारी आज्ञायें भी लोगों को बताई जाती थीं, समाचार-पत्रों के प्रकाशन के साथ यह कार्य उनमें विज्ञप्तियाँ देकर होने लगे। कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञापन जितने रूपों में प्रकट हुए, विज्ञापन की कला भी उतने ही रूपों में प्रकट हुई। विभिन्न भाषाओं के समाचार-पत्रों में एक ही बात की विज्ञप्ति प्रकाशित कराने के

लिए, विज्ञप्ति के भाषा रूपान्तरण का कार्य जब आरम्भ हुआ तो विज्ञापन संसार में अनुवाद की आवश्यकता हुई। प्राचीनकाल में भी सरकारी नियमों का विज्ञापन सरकारी भाषा में न कराकर ऐसी भाषाओं में किया जाता था, जिसे आम जनता जानती हो, जैसे सम्राट अशोक ने अपनी विज्ञप्तियाँ संस्कृत में अंकित न कराकर 'पालि' भाषा में अंकित करायीं। निश्चित रूप से इनका पहले संस्कृत से अनुवाद कराया गया होगा। खेल–तमाशे वाले लोग भी जिस भाषा–भाषी प्रदेश में अपने खेल–तमाशे लेकर जाते होंगे, अपने खेल–तमाशे का विज्ञापन वहीं की भाषा में करते रहे होंगे। यही बात विभिन्न समाचार–पत्रों के माध्यम से प्रकट हुई। व्यावसायिक युग के विकास के साथ ऐसी विज्ञप्तियों के क्षेत्र को विभिन्न भाषाओं के सीमा क्षेत्र में पहुँचने के लिए अनुवाद के आश्रित होना स्वाभाविक था। अनुवाद कला में इससे प्रखरता उत्पन्न हुई, एक ही सामग्री का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद इस तरह किया जाने लगा कि वह जनता को अपनी ओर आकर्षित कर सके और उसकी विपणन क्षमता में विकास हो। वर्तमान युग में जब आकाशवाणी का प्रादुर्भाव हुआ तो विज्ञापन कार्य भी आकाशवाणी से होने लगा। फिर उसने दूरदर्शन का पल्ला भी पकड़ लिया। विभिन्न भाषाओं के कार्यक्रमों के साथ विज्ञापनों को भी उन्हीं भाषाओं में देने की आवश्यकता हुई और अनुवाद का क्षेत्र और विकसित हो गया। विज्ञापन कला अब केवल लेखन तक सीमित नहीं रही, दृश्य रूप में आकर वह नाट्याभिमुखी हो गई। परिणाम यह है कि अनुवाद भी नाट्याभिमुखी हो गया। अब तो 'मोबाइल', दूरभाष' और 'इण्टरनेट' के चलन ने विज्ञापन की अनुवाद कला को और भी परिष्कृत कर दिया है, इसमें सृजन की काल्पनिकता तथा रूपान्तर में संक्षिप्तीकरण का कलापूर्ण प्रवेश हो गया है। वह चित्रकला के क्षेत्र में भी बहुत पहले से ही प्रवेश कर चुकी थी। अतः नई विज्ञापन प्रविधियाँ विकसित हुईं, परन्तु अनुवाद का महत्व प्रत्येक प्रक्रिया का आधार है। यदि विज्ञापनकर्ता को अपने उत्पाद की विशेष्ताएँ प्रकट करनी हैं तो उसे निश्चित रूप से ही भाषा का सहारा लेना पड़ेगा। अतः विज्ञापन और अनुवाद का संबंध उसी तरह श्रृंखलित है, जिस प्रकार और विज्ञापन एक–दूसरे से श्रृंखलित है।

यदि हम दूसरे शब्दों में कहें तो यह कहना उचित होगा कि विज्ञापन कला को अनुवाद कला ने प्रत्येक रूप में अनुरंजित कर दिया है। कोई भी बात जो चाहे जिस भाषा में विपणन उत्पादों की कहानी कहती हो, बिना किसी भाषा के भी अनुवाद कला मात्र से भी केवल दृश्य रूप में प्रकट की जा सकती है, अतः अनुवाद कला का यह ऐसा उत्कर्ष बिन्दु है, जो यह प्रकट करता है कि भाषाओं में लिखे गये आलेख भी दृश्यानुवादों में रूपान्तरित किये जा सकते हैं।

उद्योग और व्यापार, वर्तमान अर्थव्यवस्था के सबलतम स्तम्भों के रूप में स्थापित हो चुके हैं। मनुष्य को भोजन, वस्त्र तथा आवास की मूल आवश्यकताओं के साथ-साथ उसकी परम आवश्यकता का एक रूप और प्रकट हुआ-सा प्रतीत होता है--वह है दर्शनीयता का। मनुष्य की प्रवृत्ति दर्शनीय वस्तुओं की उपयोगिता, उपयोग के बन्धन में आबद्ध हो गयी-सी प्रतीत होती है, परन्तु यह बात नयी-सी लगने पर भी नयी नहीं है। आदिकाल से ही मनुष्य सौन्दर्य के प्रति आसक्त रहा है, परन्तु इस काल में उसकी यह प्रवृत्ति विज्ञापन-प्रचुरता और उनकी कलात्मकता ने बहुरंजित कर दी है, क्योंकि इस प्रकार की बहुरंजना नये-नये उत्पादों के भौतिक उपयोग की ओर उसे लालायित करती है। इसका श्रेय अनुवाद कला को ही जाता है। विज्ञापन कला ने जिसका सहारा लेकर सामाजिक अभिरुचि को ही बदल दिया है। हम जानते हैं कि दूरदर्शन और समाचार-पत्र विज्ञापनों का मूल्य तो वसूल करते ही हैं, लेकिन उनमें कितना कलात्मक आकर्षण है, वह यह भी देखने लगे हैं। जिस तरह किसी दूरदर्शन कार्यक्रम का समाचार-पत्रों के समाचारों को पढ़ने के लिए लोग इच्छुक होते हैं, वह विशेष विज्ञापनों को भी देखना पसन्द करते हैं। वस्तुतः ऐसे विज्ञापन कलात्मक अनुवाद होते हैं, जो किसी भी भाषा का परोक्ष सहारा नहीं लेते, लेकिन बात वही कहते हैं, जो कभी किसी भाषा में किसी विज्ञापन-विशेषज्ञ ने सृजित की होगी। इसे हम चित्रात्मक अनुवाद कह सकते हैं।

वर्तमान युग में विज्ञापन-मात्र उत्पादकों के सोच और उनके द्वारा ही निर्माण करने की वस्तु नहीं रह गयी है, बल्कि वह विज्ञापन विशेषज्ञों के पाले में पहुँच चुकी है। सैकड़ों विज्ञापन संस्थाएं इस क्षेत्र में उतर चुकी हैं और अब उत्पादकों को अपने उत्पादों के विज्ञापन स्वयं तैयार करने की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

विज्ञापन संस्थाएँ रोज हजारों विज्ञापनों का निर्माण कर रही हैं। ये विज्ञापन संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में कराये जाते हैं। इन विज्ञापन कम्पनियों में बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक और साहित्य सृजन शक्ति से सम्पन्न लोग, कई-कई भाषाओं के ज्ञान से सम्बद्ध है। समाचार-पत्रों और उसके अतिरिक्त हजारों-लाखों पत्र-पत्रिकाओं में जो दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं में अनूदित विज्ञापन हिन्दी में भी पढ़े या देखे जा सकते हैं। विदेशी प्रसाधनों, वस्तुओं के विज्ञापन हिन्दी में अनुदित होकर ही प्रकाशित होते हैं। ये विज्ञापन अन्य पुस्तकों, चलचित्रों, समाचार के

मध्य में, विभिन्न कार्यक्रमों में, दूरदर्शन और आकाशवाणी द्वारा किये जा रहे हैं। इनका विवरण सम्भव नहीं है। इनमें सदैव ही मनोरंजक तत्त्व डालने की चेष्टा की जाती है। इनकी कलात्मकता से आकर्षित होकर जहाँ समाचार-पत्र अपनी रूप-सज्जा में चार चाँद लगाते है, वहीं इनसे पाठक भी मनोरंजन का आनन्द लेते हैं। ऐसा नहीं है कि यह विज्ञापन दोषमुक्त ही होते हों, लेकिन दर्शक और पाठक ऐसे दोषों का भी आनन्द लेते हैं। इनमें अतिशयोक्ति भी होती है, परन्तु विज्ञापन ऐजेन्सियाँ इनमें यह तत्त्व भी जान-बूझकर डालती हैं। इन विज्ञापनों के लेखक बड़ी चतुराई से शब्द चयन करते हैं एवं दूरदर्शन के लिये इनकी पटकथाएँ लिखते हैं।

प्राय: कला का विकास अनुकरण से ही होता है, चाहे वह कोई भी कला हो, साहित्यकार भी अनुकरण करता है। दूसरे शब्दों में यह अनुकरण उसके सृजन तत्त्वों को जाग्रत भी करता है और उसके सृजन को पुष्ट भी बनाता है, नई कल्पनाओं को जन्म भी देता है। यदि हम इसे भी अनुवाद के क्षेत्र में ले आयें तो कहेंगे कि यह कार्य सृजनात्मक अनुवाद का है, जो कला के हर क्षेत्र में विद्यमान है। विज्ञापन कला में भी देश-विदेश तथा अन्य भाषाओं में विज्ञापन, दूसरी भाषाओं में सृजनात्मक वृद्धि करते हैं। आज इसी का बोलबाला है।

विज्ञापन और अनुवाद के सम्बन्ध

आज मनुष्य अपने आपको और अपने कार्यों को अधिक से अधिक लोगों को बताना चाहता है। कार्य बाद में आरम्भ होता है, पर विज्ञापन पहले से आरम्भ हो जाता है। पहले धार्मिक कार्य, भजन-पूजन आदि शान्त वातावरण में किये जाते थे। आज उनका विज्ञापन करने के लिए जगह-जगह बोर्ड लगाये जाते हैं और पर्चे बाँटे जाते हैं। कार्यक्रम दूर के लोगों को भी सुनाई पड़े, इसके लिए लाउडस्पीकर लगाये जाते हैं।

विज्ञापन का सम्बन्ध भाषा से है, इसलिये इसमें अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। अगर किसी वस्तु का विज्ञापन करना है और उसे मुसलमानों के क्षेत्र में परिचित कराना है तो उसका विज्ञापन करने वाले हिन्दी छपे पर्चे का उर्दू में अनुवाद करके बाँटना पड़ेगा। भारतवर्ष में अनेक प्रान्त ऐसे हैं, जहाँ समझी और बोले जाने वाली भाषाएं अलग-अलग हैं। इनके निवासियों को अपनी वस्तुओं से परिचित कराने के लिए उनकी भाषा में विज्ञापन का अनुवाद कराया जाता है।

8

वाणिज्यिक अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग

वर्तमान संसार को आर्थिक सम्पन्नता वाणिज्य ने ही प्रदान की है। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने सबसे पहले औद्यौगिक क्षेत्र को अपना वरदान दिया था, जिसे वाणिज्य हेतु संसार में मारे-मारे फिरते यूरोपीय देशों ने नये-नये बाजारों से अलंकृत कर दिया। इसी प्रवाह में ऐसे आविष्कार भी आविर्भूत हुए, जिन्होंने ज्ञान के अपरिचित क्षेत्र को आप्लावित करने का बीड़ा उठाया। उसने मनुष्य के बौद्धिक चिन्तन और ऊहापोही जिज्ञासाओं को वैचारिक क्रांन्ति के पथ पर भी ला खड़ा किया। औद्योगिक विकास के सन्दर्भ में मनुय के आर्थिक व्यवहार के सामाजिक स्वरूप और मानवता पर उसके प्रत्यक्ष प्रभाव की गहरी गवेषणा हुई जिसने राजनीति को भी शृंखलाबद्ध कर लिया। स्वाभाविक था कि यूरोपियन उपनिवेश, यूरोप की औद्योगिक उन्नति के कारण बने, क्योंकि वह यूरोप के राजनीतिक रूप से ही आधीन नहीं हुए, उसकी वैज्ञानिकता के भी आधीन हो गये और व्यापारिक राजनीति से पूरा विश्व घटाटोप हो गया। संसार के प्राय: सभी देश यूरोप के व्यापारिक अंकुश से प्रचालित होने लगे, जो देश 17वीं-17वीं शताब्दी के बाद भी यूरोपीय सत्ताधीनता से विमुक्त रहे वह भी, तथा जो नहीं रहे वह भी। यथार्थ में वह यूरोप के व्यापारिक अंकुश तथा ज्ञान के आधीन हो गये थे। औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति का जो प्रभाव यूरोप के सामाजिक और

सांस्कृतिक चिन्तन तथा व्यवहार पर पड़ा, उसे प्रभाव से भी विश्व का कोई देश नहीं बच सका। यदि गहराई से देखा जाय तो इस प्रभाव का मूल कारण यूरोपीयन व्यापारिक चेतना का विज्ञापन ही था, जो साहित्य का सहारा लेकर प्रकट हुआ था। यूरोपीय साहित्य एक प्रकार से संसार को प्रभावित करने वाली विज्ञापन प्रक्रिया थी अर्थात् औद्योगिक तथा व्यापारिक विज्ञापन का अब तक के औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में ज्ञात यह सबसे प्रारम्भिक रूप था, परन्तु सबसे गम्भीर रूप भी था, इतना गम्भीर कि उसका प्रभाव पूरी तरह स्थायी हुआ–सा प्रतीत होता है।

यह कहावत भी है कि बाप भला न भइया सबसे बड़ा रुपइया। आज धन–वैभव या अर्थ भगवान का दूसरा रूप है। अर्थ प्रधान युग में वाणिज्य या व्यापार प्रमुख हैं। लोगों ने लिखा है––व्यापारे वसति, लक्ष्मीः अर्थात् व्यापार या वाणिज्य में लक्ष्मी का निवास है। व्यापार एवं व्यवसाय के अनेक या असंख्य साधन हैं, जैसे पहले कभी नहीं थे। व्यवसाय के लिये विश्व में अनेक कारखाने, व्यापारी समुदाय या कम्पनियाँ, यातायात, औषधि या स्वास्थ्य सेवाएँ, सभी कुछ इसके अन्तर्गत आता है। यहाँ तक कि शिक्षा एवं धर्म भी व्यवसाय बन गये हैं। शिक्षा की लाखों संस्थाएँ आज व्यावसायिक बन गई हैं। अब शिक्षा प्राप्त करना उतना सरल नहीं रहा, और न शिक्षादान का दृष्टिकोण ही इतना मानवीय नहीं रहा जितना व्यावसायिक युग से पहले का था। आज के युग में सभी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की धूम मचने का सबसे बड़ा कारण ही यह है कि प्रत्येक व्यक्ति इस युग में अपनी व्यावसायिक पहचान बनाने को तत्पर हो गया है। उसकी सोच ही व्यावसायिक हो गई है। शिक्षा, तकनीकी, शिक्षा, प्रौद्योगिकी शिक्षा, इंजीनियरिंग शिक्षा, कम्प्यूटर शिक्षा, होटर व्यवस्था शिक्षा इत्यादि अनेक पाठ्यक्रमों का चरित्र पूर्णरूपेण व्यावसायिक है। यह उस व्यावसायिक साहित्य में वैचारिक चिन्तन का परिणाम है, जिसने मनुष्य जीवन को पूरी तरह अर्थलाभ से संयुक्त कर दिया हैं निश्चित रूप से यह ऐसी भयावह स्थिति है, जो चिन्तन की भौतिक सीमाओं तक पहुँचने की लालसा जागृत करने वाली यूरोपियन साहित्यसृजन के कारण हुई है। हालांकि ज्ञान की अपरिचित सीमा रेखाओं तक पहुँचने की यह भी मनुष्य की चेष्टा कही जा सकती है, परन्तु इसने जीवनदर्शन को एकांगी बनाने का जो काम किया है, वह इस प्रकार के साहित्य प्रसार के कारण ही हुआ है, जिसने बौद्धिक सोच को ग्रस्त कर लिया है ऐसा प्रचार का श्रेय इस विज्ञान विधि को है जो क्रियात्मक रूप में औद्योगिकता का विकास

बनकर प्रकट हुई थी। औद्योगिक विकास के कारण जो सामाजिक प्रभाव हुए, उन्होंने भौतिक जीवन और मानवीय संस्थाओं के परम्परात्मक महत्व के सन्दर्भ में कुछ भी विचार नहीं किया। विद्या संस्थानों में इसको निरन्तर पढ़ाया गया। आज के प्रत्यक्ष रूप से होने वाले व्यापार और उद्योग सम्बन्धी विज्ञापन इसके सामने कुछ भी नहीं है।

महाविद्यालय, विश्वविद्यालय इस औद्योगिकीय और व्यापारिक विज्ञापनी विचारधाराओं को अभी भी अपने पाठ्यक्रमों का भाग बनाये हुए हैं। यह मान लिया गया है कि भारत एवं विदेशों में स्थित हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए वाणिज्यिक शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं व्यवसाय के क्षेत्र में भी हिन्दी बहुत महत्वपूर्ण है। उसके लिए हिसाब या एकाउण्ट, पत्र व्यवहार, लेन-देन सभी कुछ हिन्दी में होता है और यह कार्य अनुवाद के माध्यम से ही होता है। वैसे जब से औद्योगिक संस्कृति आरम्भ हुई है, ऐसा तभी से होता रहा है। पहले विचारधारित साहित्य का अध्ययन अंग्रेजी में ही होता था। परन्तु अनुवाद की कृपा से वह हिन्दी में भी उपलब्ध है, जो भारतीय बौद्धिक के लिए सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का माध्यम है। अनुवाद कार्य के उक्त अध्याय के साथ-साथ भारत में तथा विदेशों में जमे हुए औद्योगिक प्रतिष्ठान अपने उत्पादों के लिए विज्ञापन के जो तरीके अपनाते हैं, उनमें भी अनुवाद प्रक्रिया बड़ी महत्वपूर्ण है। जनता के सामने निरन्तर चलने वाली विज्ञापन व्यवस्था अनुवाद कार्य का व्यापक महत्व होता है, भारतीय व्यापारिक संस्कृति भी अपने औद्योगिक उत्पादानों के विज्ञापन कार्य में इसी नीति को अपना चुकी है, जो बहुत कारगार और प्रभावी है। भारत की सभी भाषाओं में होने वाले व्यापारिक कार्यों के संचालन में अनुवाद कार्य की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो चुकी है। ऐसी स्थिति में हिन्दी का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। ये संस्थाएँ अपने कार्य हेतु अनुदित हिन्दी का प्रयोग करते हैं एवं पत्र व्यवहार करते हैं। तात्पर्य यह है कि वाणिज्यिक अनुवाद का भी कोई सीमा नहीं है। देश-विदेश की बहुसंख्यक वाणिज्यिक संस्थाओं में अनूदित हिन्दी का प्रयोग होता है। वाणित्ज्यिक विषय के लिए अनेक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है। विदेशी वाणिज्यिक पुस्तकों का प्रकाशन भी हिन्दी में अनुवाद के द्वारा हुआ है।

9

वैज्ञानिक एक तकनीकी क्षेत्र में अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग

तकनीकी अनुवाद एक विशेष प्रकार का अनुवाद है जिसमें तकनीकी विषयों से सम्बन्धित दस्तावेजों का अनुवाद करना होता है। उदाहरण के लिये स्वामी का मनुअल, प्रयोक्ता मार्गदर्शिका आदि। इसमें तकनीकी विषयों के शोधपत्र, तकनीकी पुस्तकों का अनुवाद आदि भी सम्मिलित है। इस प्रकार के अनुवाद की मुख्य विशेषता इसमें विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का होना है। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित विषय की जानकारी भी वांछित है अन्यथा कई जगह अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

तकनीकी अनुवाद के लिये अनुवाद स्मृति (ट्रांसलेशन मेमोरी) बहुत उपयोगी है क्योंकि इसमें प्रयुक्त शब्दावली सीमित होती है, दोहरायी गयी होती है, तथा उसमें एकरूपता (कांसिस्टेन्सी) होती है। तकनीकी अनुवाद का तकनीकी संचार से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (सीएसटीटी) हिन्दी और अन्य सभी भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों को परिभाषित एवं नए शब्दों का विकास करता है। भारत की स्वतंत्रता के बाद वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली के लिए शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1950 में बोर्ड की स्थापना की। सन् 1952 में बोर्ड के तत्त्वावधान में शब्दावली निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। अन्ततः

1960 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और 1961 ई. में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई। इस प्रकार विभिन्न अवसरों पर तैयार शब्दावली को 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' शीर्षक से प्रकाशित किया गया, जिसका उद्देश्य एक ओर वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के समन्वय कार्य के लिए आधार प्रदान करना था और दूसरी ओर अन्तरिम अवधि में लेखकों को नई संकल्पनाओं के लिए सर्वसम्मत पारिभाषिक शब्द प्रदान करना था।

स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान के निर्माताओं का ध्यान देश की सभी प्रमुख भाषाओं के विकास की ओर गया। संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई और केंद्रीय सरकार को यह दायित्व सौंपा गया कि वह हिंदी का विकास-प्रसार करें एवं उसे समृद्ध करें। तदनुसार भारत सरकार के केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने संविधान के अनुच्छेद 351 के अधीन हिंदी का विकास एवं समृद्धि की अनेक योजनाएँ आरंभ कीं। इन योजनाओं में हिंदी में तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्यक्रम भी शामिल किया गया ताकि ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं में हिंदी के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन हो सके। शब्दावली निर्माण कार्यक्रम को सही दिशा देने के लिए 1950 में शिक्षा सलाहकार की अध्यक्षता में वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की गई।

पहले यह कार्य शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत हिंदी एकक द्वारा किया जाता था किन्तु बाद में विभिन्न विषयों की हिंदी शब्दावली का निर्माण करने के दौरान यह ज्ञात हुआ कि यह काम बहुत ही अधिक विशाल, गहन और बहुआयामी है। इसके पूरे होने में बहुत समय लगेगा और इस कार्य के लिए सभी विषयों के विशेषज्ञों एवं भाषाविदों की आवश्यकता होगी। अतः भारत सरकार ने 1 अक्तूबर, 1961 को प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की ताकि शब्दावली निर्माण का कार्य सही एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य में कार्यान्वित किया जा सके।

परिचय तथा इतिहास

हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रशासन, शिक्षा तथा परीक्षा का माध्यम बनाने का सपना तथा संकल्प स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान निर्माताओं ने बहुत सूझ-बूझ तथा विधार मथन के पश्चात् भारत की जनता के सम्मुख रखा। यह संकल्प, यह सपना भारत की सांस्कृतिक तथा भाषायी विविधता को ध्यान में रखकर लिया गया एक आदर्श ऐतिहासिक फैसला

था। यह एक ऐसा संकल्प था, जो भारत की मिट्टी में जन्मी प्रज्ञा को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में मौलिकता प्रदान करने तथा भारतीयता को सुरक्षित रखने के लिए लिया गया था। यह राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक विकास के लिए आवश्यक था तथा एक ऐसा भविष्यगामी फैसला था जिसमें 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' की भावना निहित थी।

जब कोई सपना देखा जाता है, जब कोई संकल्प लिया जाता है, जब कोई आदर्श सामने रखा जाता है, तो उसे मूर्तरूप देने के लिए कारगर योजनाओं और उनके क्रियान्वयन की आवश्यकता भी होती है। संविधान की 351वीं धारा में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए जो विधान किए गए, उन्हें कार्यरूप देने के लिए सरकार ने कई योजनाएं बनाईं जिसमें वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास, मानकीकरण तथा एकरूपता की महत्वाकांक्षी योजना भी थी जो बाद में चलकर भारत सरकार की शिक्षा नीति में भी सम्मिलित की गई।

स्वतंत्रता के समय ज्ञान की विभिन्न विधाओं में अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व था तथा पश्चिम से लिए हुए उधार के ज्ञान के लिए एक ऐसी शब्दावली भारतीय भाषाओं में विकसित करनी थी जिसका जन्म भारत की मिट्टी में नहीं हुआ था। इसी कारण यह एक सहज प्रयास न होकर कुछ अप्राकृतिक स्वरूप ग्रहण करने के लिए बाध्य थी। इस सायास और नियोजित प्रयास में तकनीकी पर्यायों या समानर्थी शब्दों का विधान किया जाना था। ऐसे पर्याय, जो अन्वेषक या विद्वान की कृति नहीं, बल्कि विषय विशेषज्ञ तथा भाषाविद् द्वारा मूल तकनीकी संकल्पना की सूचना अनूदित भाषा में संप्रेक्षित कर सके।

शब्दावली निर्माण की इस असहज प्रक्रिया ने उस समय कई विसंगतियों को जन्म दिया। कई विद्वानों ने उस समय वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के विकास का काम प्रारंभ कर दिया। कुछ विद्वानों ने शब्दावली को संस्कृतनिष्ठ करना चाहा, तो कुछ ने इसे उर्दू-फारसी और हिन्दुस्तानी कही जाने वाली भाषा में ढालना चाहा। उस समय कुछ ऐसे भी विद्वान थे जिन्होंने अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों को देवनागरी में लिप्यांतरण करके स्वीकार करने की पेशकश रखी परंतु इन सबसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों के बहुयामी तथा विशाल शब्द भंडार को अपनी भाषा के व्याकरण, उसकी प्रकृति तथा विद्यार्थियों, प्राध्यापकों, शोधार्थियों, अनुवादकों, ग्रंथ लेखकों की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो रही थी और जिस ढंग से लोग शब्दावली का निर्माण कर रहे थे उससे संविधान की गरिमा में निहित आशय की पूर्ति भी नहीं हो रही थी। एक ही तकनीकी शब्द

के कई-कई पर्याय उपलब्ध होने से एक ऐसी अराजक स्थिति उत्पन्न हो गई जिसने शब्दावली निर्माण के नियोजन तथा प्रबंधन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। ऐसे में भारत सरकार ने यह कार्य अपने हाथ में लेना ही उचित समझा और 1 अक्टूबर 1961 को स्थाई आयोग के रूम में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना राष्ट्रपति के आदेश के अधीन की गई।

पद्‌म विभूषण प्रोफेसर दौलत सिंह कोठारी जैसे स्वप्नद्रष्टा, प्रसिद्ध शिक्षाविद्‌ तथा मूर्धन्य वैज्ञानिक को आयोग का पहला अध्यक्ष बनाकर भारत सरकार ने यह सिद्ध किया कि वे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के विकास हेतु गंभीर प्रयास के लिए कटिबद्ध है।

प्रो. कोठारी ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाया तथा शब्दावली निर्माण, उसकी समीक्षा एवं समन्वयन के लिए कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों का निरूपण किया जिसके पालन करने से भारत की सामसिक संस्कृति भाषायी विविधता, राष्ट्रीय एकता तथा अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की आधुनिक तथा आधुनिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली को विकसित करने में किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं आ सहती थी।

अपनी स्थापना से अब तक के वर्षों में शब्दावली आयोग ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं, यथा-विज्ञान, मानविकी, समाजशास्त्र, कृषि, आयुर्विज्ञान तथा इंजीनियरिंग इत्यादि में लगभग 8 लाख तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित कर उन्हें विभिन्न शब्द संग्रहों तथा परिभाषा कोशों के रूप में प्रकाशित किया है। साथ ही साथ सन्‌ 1968 में ग्रंथ निर्माण की योजना के अंतर्गत 15 राज्यों में 'ग्रंथ अकादमी' तथा 'पाठ्‌य पुस्तक मंडलों' की स्थापना की है जिससे कि हिंदी के साथ-साथ भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं में तकनीकी शब्दावली का विकास तथा पाठ्‌य-पुस्तक का प्रकाशन किया जा सके। शब्दावली आयोग तथा विभिन्न राज्यों में स्थापित ग्रंथ अकादमियों तथा पाठ्‌य-पुस्तक मंडलों के समन्वित प्रयास से अब तक लगभग 12 हजार पाठ्‌य-पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त पूरक सामग्री के रूप में ग्रंथ मालाओं, चयनिकाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं की एक लंबी सूची प्रस्तुत की जा सकती है। अखिल भारतीय शब्दावली, विभागीय शब्दावलियाँ तथा प्रशासनिक शब्दावली अपने आप में आयोग के अनूठे प्रयास हैं। शब्दावली आयोग ने कप्यूटरीकृत राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना भी की है।

विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला अब ऐसा कोई विषय नहीं होगा या प्रयोजनमूलक हिन्दी की ऐसी कोई विधा अब नहीं बची है जिसकी अंग्रेजी आधारित संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले हिन्दी पर्याय स्थिर न हो गए हों। आयोग की अखिल भारतीय शब्दावली योजना के अंतर्गत 18 शब्दावलियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं जिसमें 20,000 ऐसे शब्दों को विषयवार संकलित किया गया है जिन्हें अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

विज्ञान में उच्च-स्तरीय लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए आयोग विज्ञान की त्रैमासिक पत्रिका 'विज्ञान गरिमा सिंधु' का प्रकाशन करता है। मानविकी तथा समाज विज्ञान विषयों में इसी उद्देश्य से 'ज्ञान गरिमा सिंधु' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी जनवरी 2000 से प्रारंभ किया गया है।

आयोग के पूर्णकालिक अध्यक्ष

डॉ. दौलत सिंह कोठारी (1961-1965)
डॉ. निहालकरण सेठी (1965-1966)
डॉ. विश्वनाथ प्रसाद (1966-1967)
डॉ. एस. बालसुब्रह्मण्यम् (1967-1968)
डॉ. बाबूराम सक्सेना (1968-1970)
डॉ. कृष्ण दयाल भार्गव (1970)
श्री गंटि जोगि सोमयाजी (1970 से 1971 तक)
डा. पी. गोपाल शर्मा (1971 से 1975 तक)
डॉ. हरबंश लाल शर्मा (1975-1980)
डा. कपिला वात्स्यायन (1980 से 1983 तक)
प्रो. मलिक मोहम्मद (1983-1987)
प्रो. सूरजभान सिंह (1988-1994)
प्रो. प्रेम स्वरूप सकलानी (1994-1998)
डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव (1998 से 2001 तक)
डॉ. हरीश कुमार (2001 से 2003 तक)
डॉ. पुष्पलता तनेजा (2003 से 2005 तक)
प्रो. के. बिजय कुमार (2005 से 2012 तक)
प्रो. केशरीलाल वर्मा (2012 से 2015 तक)

प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय (2015 से 2017 तक)

प्रो. अवनीश कुमार (फरवरी 2017 से अब तक)

आयोग के कार्य एवं उद्देश्य

आयोग जो कार्य कर रहा है वे इस प्रकार हैं–

हिंदी के संदर्भ में

1. वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के सिद्धांतों का निर्धारण करना तथा तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में अब तक किए गए कार्य का पुनरीक्षण, समन्वय तथा समेकन।
2. विभिन्न विषयों की मानक वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण, प्रकाशन, प्रचार-प्रसार एवं प्रशिक्षण।
3. आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग को परिलक्षित करते हुए विभिन्न पारिभाषिक शब्दकोशों का निर्माण एवं प्रकाशन।
4. पाठमालाओं, मोनोग्राफ, चयनिकाओं (डाइजेस्ट) एवं पाठ-संग्रहों (रीडिंग्स) का निर्माण एवं प्रकाशन।
5. विज्ञान तथा मानविकी आदि में उच्च स्तरीय विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्य ग्रंथों के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए सभी हिंदी-भाषी राज्यों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों/विश्वविद्यालय एककों की स्थापना करना, उन्हें अनुदान देना एवं मार्गदर्शन प्रदान करना।
6. अखिल भारतीय शब्दावली का संकलन, प्रकाशन, प्रचार एवं अनुप्रयोग।
7. विज्ञान तथा मानविकी में उच्च स्तरीय लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए क्रमशः त्रैमासिक पत्रिकाओं 'विज्ञान गरिमा सिंधु' तथा 'ज्ञान गरिमा सिन्धु' का प्रकाशन।
8. विश्वविद्यालयों एवं उच्च तकनीकी संस्थानों के प्राध्यापकों/वैज्ञानिकों आदि को आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रशिक्षण देने तथा हिंदी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन करना।
9. आयोग द्वारा निर्मित समस्त शब्दावली का कंप्यूटरीकरण करते हुए कंप्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना करना ताकि देश भर में सभी विषयों की अद्यतन मानक शब्दावली सर्वसुलभ हो जाए।

10. कृषि, आयुर्विज्ञान एवं इंजीनियरी के सभी विषयों में विश्वविद्यालय-स्तरीय पाठ्यपुस्तकों, संदर्भ-ग्रथों एवं सहायक सामग्री का निर्माण एवं प्रकाशन।
11. शब्दावली का मानकीकरण तथा प्रयोक्ताओं के बीच सर्वेक्षण कार्य।

अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में

12. अहिंदी-भाषी राज्यों में स्थापित पाठ्य पुस्तक मंडलों के माध्यम से पाठ्य पुस्तकों के निर्माण, शब्दावली निर्माण एवं अन्य संदर्भ-ग्रंथों के निर्माण आदि के लिए केंद्रीय अनुदान, मार्गदर्शन, परामर्श एवं विशेषज्ञता प्रदान करना, उनके कार्यों का अखिल भारतीय स्तर पर समन्वय एवं पुनरीक्षण करना।
13. तकनीकी शब्दावली के अभ्यास, प्रशिक्षण एवं पुनरीक्षण के लिए इन अहिंदी-भाषी राज्यों के पाठ्य पुस्तक मंडलों को तकनीकी शब्दावली कार्यशाला के आयोजन के लिए आर्थिक सहायता, मार्गदर्शन एवं विशेषज्ञता प्रदान करना।
14. आयुर्विज्ञान के शब्दों और वाक्यांशों के द्विभाषी संस्करण अर्थात् तमिल-हिंदी, मराठी-हिंदी, गुजराती-हिंदी आदि संस्करणों का निर्माण एवं प्रकाशन।

विविध कार्य

आयोग के कार्यों का व्यापक प्रचार-प्रसार, विज्ञापन, प्रकाशनों का मुद्रण, बिक्री, वितरण, प्रदर्शनियों का आयोजन, विशेषज्ञ समितियों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, समीक्षा समितियों, मूल्यांकन समितियों आदि की बैठकों का आयोजन आदि विविध कार्य करना।

शब्दावली निर्माण में आयोग की अधिकारिता

राष्ट्रपति के 27 अप्रैल, 1960 के आदेश के अनुसार सभी विषयों की शब्दावली के हिंदी पर्यायों के निर्माण का उत्तरदायित्व केवल वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया है। अत: शिक्षा, प्रशासन, अध्यापन आदि सभी क्षेत्रों में सभी पर यह बाध्यता है कि केवल शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित मानक शब्दावली का ही सर्वत्र प्रयोग किया जाए। वस्तुत: पूरे देश में मानक शब्दावली के प्रयोग की वांछनीयता और एकरूपता की दृष्टि से यह अनिवार्य भी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी सभी विश्वविद्यालयों आदि

को यह निर्देश दिया है कि हिंदी तथा अन्य भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों में केवल शब्दावली आयोग की शब्दावली का ही प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने भी प्रशासन के क्षेत्र में आयोग द्वारा निर्मित प्रशासनिक तथा अन्य शब्दावलियों के प्रयोग की बाध्यता का निर्देश दिया है।

आयोग की प्रगति तथा उपलब्धियाँ

विभिन्न विज्ञानों, मानविकी तथा सामाजिक विज्ञानों की मूलभूत शब्दावली के निर्माण का कार्य सन् 1971 में पूरा कर लिया गया। तत्पश्चात् उक्त शब्दावली के समन्वय तथा समेकन का कार्य प्रारंभ हुआ। इन सभी शब्द संग्रहों की स्थिति इस प्रकार है–

क्र.म.	नाम	शब्द संख्या
1	वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह (विज्ञान खंड)	1,30,000
2	वृहत् पारिभ आषइक शब्द संग्रह (मानविकी खंड)	80,000
3	वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह (आयुर्विज्ञान)	50,000
4	वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह (इंजीनियरी)	50,000
5	वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह (रक्षा)	40,000
6	वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह (कृषि)	17,500
7	समेकित प्रशासन शब्दावली (प्रशासन)	8,000
8	योग	2,75,500 शब्द

हिंदी की तकनीकी शब्दावली का निर्माण

विभिन्न विषयों की तकनीकी शब्दावली का निर्माण सन् 1950 से ही शिक्षा मंत्रालय के हिंदी एकक में शुरू हो गया था। मंत्रालय ने विविध विषयों की अनेक आरंभिक और अनंतिम शब्दावलियाँ छापीं और उन्हें निःशुल्क विश्वविद्यालयों आदि के प्राध्यापकों को वितरित किया। इसके बाद अनेक विषयों की अंतिम रूप से स्वीकृत शब्दावली भी अलग-अलग छापी गई। सन् 1962 में इन सभी शब्दों को एकत्र कर 'पारिभाषिक शब्द-संग्रह' के नाम से पहली बार छापा गया। इस शब्द-संग्रह में लगभग 9000 शब्द थे। शब्दावली आयोग की स्थापना के बाद इस कार्य में बहुत गति आई। तब से आयोग ने विभिनन विषयों की शब्दावलियों को अनेक शब्द संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया है। अब तक कुल मिलाकर लगभग 35 शब्द-संग्रह/शब्दावलियाँ छापी

जा चुकी हैं, जिनमें कुल मिलाकर लगभग 8.5 लाख तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं।

आयोग ने अब तक ज्ञान-विज्ञान की लगभग सभी आधुनिकतम शाखाओं की अधिकांश शब्दावलियों के हिंदी पर्याय बना दिए हैं।

प्रशासनिक शब्दावली

संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई है। तदनुसार हिंदी की प्रशासनिक शब्दावली की मानकता, एकरूपता और सर्वत्र स्वीकार्यता की दृष्टि से आयोग ने प्रशासन से संबंधित लगभग 15000 शब्दों का संकलन 'प्रशासनिक शब्दावली' के नाम से किया है। अब तक इस पुस्तक के आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह शब्दावली सभी सरकारी विभागों, कार्यालयों आदि को दस रुपये के शुल्क पर उपलब्ध है। अन्यों के लिए यह बीस रुपये की दर पर उपलब्ध है। इसके अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी दोनों ही संस्करण आयोग ने प्रकाशित किए हैं।

विभागीय शब्दावली

विश्वविद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषयों के साथ-साथ आयोग विभिन्न सरकारी विभागों के अनुरोध पर उन विभागों की तकनीकी शब्दावली के हिंदी पर्यायों के निर्माण का भी कार्य करता है। विभागीय शब्दावलियों में अब तक डाक-तार शब्दावली, रेलवे शब्दावली, रक्षा शब्दावली, राजस्व शब्दावली, वैमानिकी शब्दावली, वानिकी शब्दावली, मौसम विज्ञान शब्दावली, स्वास्थ्य भौतिकी तथा विकिरण जैविकी शब्दावली। रेशम शब्दावली, कपास शब्दावली, कोयला शब्दावली, इलेक्ट्रॉनिकी शब्दावली, पेंशन शब्दावली, आसूचना ब्यूरो शब्दावली, आदि का प्रकाशन किया जा चुका है। दूर संचार शब्दावली (15000 शब्द), नाभिकीय भौतिकी आदि के पर्यायों को अंतिम रूप दे दिया गया है। कुछ विभागीय शब्दावली को संबंधित विभागों को प्रकाशनार्थ भेज दी गई हैं तथा कुछ विचाराधीन हैं। विभिन्न विभागों से हिंदी पर्यायों के निर्माण के लिए तकनीकी शब्दों की सूचियाँ आयोग में समय-समय पर प्राप्त होती हैं तथा इनके हिंदी पयार्यों का निर्धारण यथा समय कर दिया जाता है।

शब्दावली का अद्यतनीकरण

शब्दावली निर्माण एक निरंतर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। हर साल विश्व में विविध विषयों में हजारों नए शब्द प्रयोग में आते हैं जिनमें से कुछ हजार शब्द ही वैज्ञानिकों द्वारा स्थायी रूप से अपनाए जाते हैं। इन शब्दों के हिंदी पर्याय बनाने का कार्य भी आयोग के विभिन्न विषय एकक निरंतर करते रहते हैं। इस प्रकार सभी विषयों की शब्दावलियों में संशोधन, परिवर्धन एवं अद्यतनीकरण निरंतर होता रहता है।

विषयवार शब्दावलियाँ तथा विषय-समूहवार शब्दावलियाँ

प्रारंभ में आयोग ने अलग-अलग विषयों की शब्दावलियाँ छापी थीं। काफी शब्दों के निर्माण के बाद उन्हें विषय-समूहवार बृहत् शब्द-संग्रहों के रूप में छापा गया। विज्ञान के शब्दों को एक संकलन में और मानविकी के शब्दों को अन्य संकलन में छापा गया। बाद में इंजीनियरी, आयुर्विज्ञान, कृषि, पशु-चिकित्सा, लोक प्रशासन, रक्षा, वाणिज्य, प्रशासन, कम्प्यूटर-विज्ञान, अंतरिक्ष-विज्ञान, मुद्रण इंजीनियरी, धातुकर्म आदि विषयों के अनुसार इन्हें अलग-अलग भी छापा गया। वस्तुत: अनेक शब्दावली की मांग काफी समय से होती रही है। ताकि वह प्रयोक्ता को कम मूल्य में ही प्राप्त हो जाएं। तदनुसार अब आयोग अपनी एक योजना के अंतर्गत विषयवार शब्दावलियाँ ही परिवर्धित रूप में प्रकाशित कर रहा है।

मूलभूत शब्दावलियाँ

1994 से आयोग ने विज्ञान तथा अन्य विषयों की महत्वपूर्ण शाखाओं में विकसित शब्दावलियों में प्रकाशित आमतौर पर प्रयोग किये जाने वाले शब्दों का चयन कर 'मूलभूत शब्दावली' के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया है। इन शब्दावलियों को विद्यार्थियों/अध्यापकों तथा अन्य प्रयोक्ता वर्ग में नि:शुल्क वितरित किया जाता है जिससे हिंदी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा मिल सके तथा वह लोकप्रिय हो सकें। इन शब्दावलियों में ऐसे शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान रखा जाता है, जो स्नातक तथा परास्नातक स्तर के विद्यार्थी, शोध छात्र तथा प्राध्यापक सामान्यत: प्रयोग करते हैं। आयोग ने अब तक कम्प्यूटर विज्ञान, गणित, भूगोल, भूविज्ञान, भौतिकी, पशुचिकित्सा विज्ञान, यांत्रिक इंजीनियरी जैसे विषयों की मूलभूत शब्दावलियॉं प्रकाशित की हैं तथा

इलेक्ट्रानिक्स, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, वास्तुकला, पुरातत्त्व, इतिहास, रक्षा, राजनीति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, कृषि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा सूत्र कृमि विज्ञान की मूलभूत शब्दावलियाँ प्रकाशनार्थ तैयार की जा रही हैं।

शब्दावलियों के अंग्रेजी-हिंदी, हिंदी-अंग्रेजी एवं द्विभाषी संस्करण

आयोग के सभी शब्द-संग्रह मूलतः अंग्रेजी-हिंदी में हैं, क्योंकि स्रोत भाषा अंग्रेजी रही है। आयोग ने इनमें से अनेक शब्द-संग्रहों के हिंदी-अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित किए हैं। इनमें विज्ञान के विषयों का शब्द-संग्रह, मानविकी के विषयों का शब्द-संग्रह, आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी शब्द-संग्रह एवं प्रशासनिक शब्दावली के हिंदी-अंग्रजी संस्करण अब तक प्रकाशित किए जा चुके हैं। भाषाविज्ञान शब्दावली का द्विभाषी संस्करण (अर्थात् एक ही जिल्द में अंग्रेजी संस्करण) भी प्रकाशित किया गया है। शेष सभी शब्दावलियों के हिंदी-अंग्रेजी संस्करण) भी प्रकाशित किये गये हैं।

राष्ट्रीय शब्दावली बैंक

आयोग ने अपनी शब्दावलियों के प्रस्तुतीकरण एवं प्रकाशन की प्रक्रिया का आधुनिकीकरण करने के लिए कंप्यूटर-आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक की स्थापना की है ताकि आयोग की शब्दावली सभी प्रयोगकर्ताओं को तुरंत उपलब्ध हो सके। इस कंप्यूटरीकृत शब्दावली बैंक से यह लाभ होगा कि-

1. नए शब्दों को उनके अपने अकारादि क्रम में तत्काल भरा जा सकता है।
2. शब्दों में कभी भी संशोधन-परिवर्धन किया जा सकता है अथवा उन्हें हटाया जा सकता है।
3. शब्दों के हिंदी पर्याय तत्काल मालूम किए जा सकते हैं।
4. शब्दावली के तत्काल मुद्रण के लिए लेसर प्रिंट तैयार किए जा सकते हैं।
5. शब्दों को विषयवार या विषय-समूहवार या समेकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।
6. शब्दों के अंग्रेजी-हिंदी संस्करण या हिंदी-अंग्रेजी संस्करण या द्विभाषी संस्करण प्राप्त किए जा सकते हैं।
7. शब्दावलियाँ फ्लापियों तथा सीडी के रूप में प्राप्त की जा सकती हैं तथा बेची जा सकती हैं।

आयोग का वेबसाइट

फरवरी 2000 में आयोग ने राष्ट्रीय सूचना केन्द्र के सर्वर पर वेबसाइट प्रारम्भ किया है। इस वेबसाइट पर आयोग के विषय में अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों भाषाओं में पूरी जानकारी दी गई है तथा कई महत्वपूर्ण विषयों की शब्दावलियाँ भी उपलब्ध करायी गयी हैं।

अखिल भारतीय शब्दावली की पहचान और प्रकाशन

सभी शिक्षाविदों, भाषाविदों एवं विद्वानों की यह धारणा है कि भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिसमें सभी भाषाओं में परस्पर समरूपता हो ताकि उच्च शिक्षा, अनुसन्धान, विज्ञान के आदान-प्रदान एवं संप्रेषण में सुविधा रहे तथा उनमें अखिल भारतीय स्तर पर एकरूपता एवं समानता स्थापित हो। सभी भारतीय भाषाओं में समानता का पहला आधार यह है कि हमारी अधिकांश भाषाएँ संस्कृतमूलक हैं। संस्कृत मूल के शब्द बहुतायत राज्यों में आसानी से स्वीकृत किए जाते हैं। फिर प्रशासन एवं उच्च तकनीकी शिक्षा में अंग्रेजी के शब्द और अदालतों आदि के काम में उर्दू के शब्द सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार सभी राज्यों के लिए समान तकनीकी शब्दावली की खोज करना भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का एक उत्तरदायित्व रहा है। तदनुसार 1980 से आयोग ने अखिल भारतीय शब्दावली योजना शुरू की जिसके अंतर्गत सभी राज्यों की भाषाओं से ऐसे शब्दों का संकलन किया गया जिन्हें अखिल भारतीय प्रयोग के लिए स्वीकार किया जा सकता था। इन शब्दों की सूचियों के निर्माण में विभिन्न भाषाओं के विद्वानों, वैज्ञानिकों एवं भाषाविदों की सहायता ली गई और उन्हें विषयवार सूचीबद्ध किया गया। इन शब्द-सूचियों को सभी राज्यों में भेजकर उनके पाठ्य पुस्तक निर्माण मंडलों में काम करने वाले वैज्ञानिकों/भाषाविदों से उनकी भाषा में उन शब्दों के मानक पर्याय मँगाए गए। विभिन्न राज्यों के बोर्डों से सभी भाषाओं के पर्याय प्राप्त हो जाने के बाद आयोग ने विभिन्न स्थलों पर अखिल भारतीय संगोष्ठियाँ आयोजित कीं जिनमें सभी राज्यों के विषयविदों एवं भाषाविदों को आमंत्रित किया गया। इन संगोष्ठियों के परिणमस्वरूप विभिन्न विषयों के लगभग 20,000 ऐसे शब्द संकलित कर दिए गए हैं जिन्हें अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इन शब्दों को आयोग ने विभिन्न विषयों की अखिल भारतीय शब्दावली के रूप में विषयवार प्रकाशित किया है। अब तक ऐसी 19

शब्दावलियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं। जिन विषयों में अखिल भारतीय शब्दावली की पहचान की जा चुकी है, उनका विवरण निम्नलिखित है–

1. अर्थशास्त्र और वाणिज्य
2. आयुर्विज्ञान (शल्य विज्ञान)
3. खगोलिकी
4. गणित
5. जीवविज्ञान
6. प्राणिविज्ञान
7. प्रायोगिक भूगोल
8. भाषाविज्ञान
9. भूगोल
10. भूविज्ञान (संशोधित)
11. भौतिकी
12. मानव भूगोल
13. रसायन विज्ञान-1
14. वनस्पतिविज्ञान
15. शिक्षा, मनोविज्ञान तथा मनोरोग विज्ञान
16. समाजविज्ञान एवं सांस्कृतिक नृविज्ञान
17. समुद्रविज्ञान
18. सांख्यिकी
19. सिविल इंजीनियरी।

ये शब्दावलियाँ विश्वविद्यालय के विभिन्न विषयों के प्राध्यापकों, भाषाविदों, लेखकों, अनुवादकों, कोशकारों, पत्रकारों एवं राज्यों के पाठ्य पुस्तक निर्माण बोर्डों को निःशुल्क वितरित की जाती है। आयोग की यह योजना है कि सभी विषयों की अखिल भारतीय शब्दावली को अब एक ही संग्रह में प्रकाशित कर दिया जाए ताकि शब्द-निर्माताओं को ये शब्दावलियाँ एक ही ग्रंथ में उपलब्ध हो सकें।

आयुर्विज्ञान से संबंधित अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली एवं वाक्यांश

सन् 1982 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुरोध पर आयोग ने आयुर्विज्ञान के आम प्रयोग के शब्दों और वाक्यांशों के दक्षिण भाषायी

पर्यायों का संकलन करके उन्हें हिंदी के साथ प्रकाशित करने की योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत लगभग 5-6 हजार शब्दों का संकलन किया जा चुका है। पहले चरण के रूप में अंग्रेजी शब्दों और वाक्यांशों के हिंदी पर्याय निश्चित करने के बाद उनके तमिल पर्याय तैयार कर लिए गए हैं तथा बंगला, पंजाबी, मराठी तथा उड़िया भाषाओं के पयार्यों को अंतिम रूप दिया जा रहा है।

तकनीकी शब्दावली कार्यशालाएँ

आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उद्देश्य शब्द-संग्रह तक सीमित रहना नहीं है बल्कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण में उसका प्रयोग होना भी उसका अंतिम लक्ष्य है। सभी पाठ्य ग्रंथों में आयोग की शब्दावली का ही प्रयोग हो, सभी मौलिक लेखक, अनुवादक तथा संदर्भ-साहित्य के निर्माता, छात्र एवं प्राध्यापक आयोग की शब्दावली का प्रयोग करें, इसके लिए आयोग ने अनेक योजनाएँ चालू की हैं। इनमें से एक प्रमुख योजना तकनीकी शब्दावली कार्यशालाओं के आयोजन की है।

शब्दावली कार्यशाला योजना के अंतर्गत आयोग विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं उच्चतर तकनीकी संस्थाओं में विभिन्न विषयों में ऐसी कार्यशालाओं का आयोजन करता है जिनमें आयोग के संकाय के सदस्य अथवा विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वान, भाषाविद् एवं शब्द-निर्माता आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का परिचय देते हुए तथा उनकी व्याख्या करते हुए उनके संबंध में कार्यशाला में उपस्थित प्राध्यापकों, वैज्ञानिकों, लेखकों, अनुवादकों से विचार-विमर्श करते हैं। इन कार्यशालाओं में प्राय: दो-तीन विषयों को एक-साथ रखा जाता है और इनमें उन विषयों से संबंधित आसपास के महाविद्यालयों के प्राध्यापक सहभागी के रूप में आमंत्रित किए जाते हैं।

यह देखा गया है कि ये कार्यशालाएँ अपने उद्देश्य में बहुत ही सफल रही हैं क्योंकि इन कार्यशालाओं में विचार-विमर्श के माध्यम से आयोग द्वारा निर्मित तकनीकी शब्दावली के प्रयोग की परीक्षा हो जाती है, सभी सहभागी प्राध्यापकों को आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली की मानकता की जानकारी देने से उन्हें अपने विषयों के अध्यापन में मानक शब्दावली का प्रयोग करने की दिशा प्राप्त हो जाती है और अपने विषय को हिंदी माध्यम से पढ़ाने में उनका संकोच समाप्त हो जाता है। शब्दावली-निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी सक्षम विद्वानों से प्राप्त होने के बाद उन प्राध्यापकों को आयोग की शब्दावली स्वीकार करने में सुविधा होती है।

उन्हें यह भी ज्ञान हो जाता है कि तकनीकी शब्दों के लिए सर्वत्र एक समान हिंदी पर्यायों का प्रयोग अनिवार्य है ताकि एक ही संकल्पना के लिए विभिन्न शब्दों के प्रयोग से अराजकता उत्पन्न न हो। कार्यशाला में विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप अनेक शब्दों के हिंदी पर्यायों पर पुनर्विचार भी किया जाता है।

परिभाषा-कोशों का निर्माण

विभिन्न विषयों में तकनीकी शब्दावली के निर्माण के बाद आयोग ने परिभाषा-कोशों के निर्माण की योजना भी शुरू की। शब्दावली या शब्द-संग्रहों में अंग्रेजी तकनीकी शब्दावली तथा उनके हिंदी पर्याय मात्र होते हैं, किंतु परिभाषा-कोशों में अंग्रेजी तकनीकी शब्द, उसका हिंदी पर्याय और उसके बाद तीन-चार पंक्तियों में हिंदी में उसकी परिभाषा दी जाती है। परिभाषा-कोश किसी भी विषय के तकनीकी शब्द की संकल्पना को सही रूप से समझने में छात्र, अध्यापक अथवा अनुसंधानकर्ता की बहुत सहायता करते हैं। वस्तुतः परिभाषा के आधार पर ही किसी शब्द को उपयुक्त ठहराया जा सकता है। साथ ही परिभाषाओं से तकनीकी शब्दों के प्रयोग की क्षमता भी स्पष्ट हो जाती है। इस तरह परिभाषा-कोश एक प्रकार से शब्दावली-निर्माण की प्रक्रिया के ही विस्तार के रूप में है क्योंकि तकनीकी शब्दों को उनकी परिभाषाओं अथवा व्याख्याओं के माध्यम से ही ठीक से समझा जा सकता है।

शब्दावली आयोग ने अब तक लगभग 56 परिभाषा कोश प्रकाशित किए हैं। इनका संबंध समाजविज्ञान एवं मानविकी, मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान आदि सभी से है। इनमें विज्ञान के नवीनतम विषय, उदाहरणार्थ- अर्थमिति, इलेक्ट्रॉनिकी, तरल यांत्रिकी, मानचित्र-विज्ञान, शैल विज्ञान, पादप आनुवंशिकी, कृषि-कीट विज्ञान आदि भी शामिल हैं। इन परिभाषा-कोशों की उपयोगिता की दृष्टि से अनेक विषयों के एक से अधिक परिभाषा कोश भी प्रकाशित किए गए हैं। उदाहरणार्थ, वनस्पति विज्ञान के पांच परिभाषा-कोश, रसायन विज्ञान के तीन परिभाषा-कोश, शिक्षा के दो परिभाषा-कोश आदि।

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथों का निर्माण

तकनीकी शब्दावली का निर्माण हिंदी में पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का पहला चरण है। माध्यम परिवर्तन के पूर्व यह अनिवार्य है कि प्रत्येक विषय में उचित संख्या में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किया जाए।

ये पुस्तकें न केवल विषय की दृष्टि से उच्च स्तरीय हों अपितु इनकी शब्दावली भी मानक हो और उनमें सर्वत्र एकरूपता हो। तदनुसार शिक्षा मंत्रालय ने 1959 से ही हिंदी में ग्रंथ-निर्माण योजना का सूत्रपात किया। इस योजना के अंतर्गत स्वयं आयोग द्वारा एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों, अकादमिक संस्थाओं और राज्य सरकारों के माध्यम से और साथ ही निजी प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकों के अनुवाद, मौलिक लेखन एवं प्रकाशन का कार्यक्रम आरंभ किया गया। शब्दावली आयोग ने अनुवाद, मौलिक लेखन एवं प्रकाशन का कार्यक्रम आरंभ किया। शब्दावली आयोग ने अनुवाद, मौलिक लेखन के लिए शीर्षकों का चुनाव करने के उद्देश्य से विविध विषयों में 16 विशेषज्ञ समितियों का गठन किया और उनके परामर्श से इस कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं।

सन् 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए तेजी से प्रयास करने पर बल दिया गया। तदनुसार शिक्षा मंत्रालय ने प्रत्येक राज्य सरकार को विश्वविद्यालय स्तर के ग्रंथों के निर्माण के लिए एक-एक करोड़ रुपए देने की मंजूरी दी। तब से ही इस योजना के अधीन विभिन्न राज्यों को आर्थिक सहायता दी जा रही है। इस योजना पर पुनर्विचार करने के लिए 1987 में दलाल समिति तथा 1994 में कोलहाटकर समिति का गठन किया गया।

विश्वविद्यालय ग्रन्थ-निर्माण योजना की वर्तमान स्थिति
संक्षेप में इस प्रकार है–

1. प्रत्येक हिन्दी-भाषी राज्य (उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा) में एक-एक हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना हुई है, जो विभिन्न उच्चस्तरीय पाठ्य पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद कर रही है।
2. उपर्युक्त हिंदी-भाषी राज्यों की हिंदी ग्रंथ अकादमियों के साथ ही गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, तथा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा हिसार कृषि विश्वविद्यालय भी इस योजना के अंतर्गत केंद्र सरकार की आर्थिक सहायता से पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कर रहे हैं।
3. हिमाचल प्रदेश में हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना विचाराधीन है।
4. अहिंदी भाषी राज्यों (आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, पंजाब, पश्चिमी बंगाल तथा तमिलनाडु) में ग्रंथ निर्माण कार्यक्रम के लिए संस्थाएँ स्थापित की गई हैं।

5. असम में गुवाहाटी विश्वविद्यालय तथा डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय एवं कर्नाटक में बंगलुरु विश्वविद्यालय, कृषि-विज्ञान विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय तथा कर्नाटक विश्वविद्यालय भी इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता से पाठ्यपुस्तकों का निर्माण कर रहे हैं।

पाठमालाएँ, चयनिकाएँ तथा पाठ-संग्रह

विश्वविद्यालय-स्तरीय उच्च विषयों में अध्ययन तथा अध्यापन के लिए पाठ्य पुस्तकें ही पर्याप्त नहीं होतीं। अनेक गहन विषयों को ठीक से समझने के लिए उच्च स्तरीय पत्रिकाओं एवं संदर्भ-ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री को पाठमाला, मोनोग्राफ, चयनिका (डाइजेस्ट) एवं पाठ-संग्रह के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। पाठमाला एक लेखक द्वारा एक ही विषय में लिखित पुस्तिका के रूप में होती है जबकि पाठ-संग्रह में एक ही विषय पर विभिन्न लेखकों के लेख संकलित किए जाते हैं। चयनिकाओं में भी अनेक शीर्षकों के अंतर्गत किसी विषय या विषय-समूह की अद्यतन जानकारी प्रस्तुत की जाती है।

शब्दावली आयोग ने ज्ञान-विज्ञान की अनेक पाठमालाओं, चयनिकाओं और पाठ-संग्रहों का निर्माण और प्रकाशन 1980 से आरंभ किया था। अब तक लगभग 10 पाठमालाओं/पाठ-संग्रहों एवं 10 चयनिकाओं का प्रकाशन हो चुका है।

त्रैमासिक पत्रिकायें

विज्ञान गरिमा सिंधु

विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों एवं उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान कार्य में रत छात्रों को उनके विषय की अद्यतन जानकारी देने, हिंदी में मौलिक विज्ञान लेखन एवं स्तरीय अनुवाद को प्रोत्साहित करने तथा वैज्ञानिक लेखन में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए एवं हिंदी के विज्ञान लेखकों को स्तरीय मंच प्रदान करने तथा विज्ञान लेखन के क्षेत्र में हिंदी को सशक्त माध्यम बनाने के लिए आयोग 1986 से 'विज्ञान गरिमा सिंधु' नामक त्रैमासिक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन कर रहा है। इस पत्रिका में उच्च स्तरीय लेख प्रकाशित किए जाते हैं।

ज्ञान गरिमा सिन्धु

हाल ही में ऐसा अनुभव किया गया कि सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के क्षेत्र में भी पाठ्य सामग्री के अतिरिक्त ऐसे पूरक एवं लोकप्रिय साहित्य की आवश्यकता है, जो उच्च शिक्षण के स्तर पर हिंदी माध्यम से पठन-पाठन करने वालों के साथ-साथ सामान्य जन को भी अपने चारों ओर के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों, नए सिद्धान्तों, विचारों तथा अन्य अवयतन जानकारी से अवगत करा सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आयोग ने 'ज्ञान गरिमा सिंधु' नामक त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन का कार्य जनवरी 2000 से प्रारम्भ किया है। पत्रिका का उद्देश्य हिंदी में लेखन की तकनीकी शैली को प्रोत्साहन देना तथा सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के क्षेत्र से संबंधित अद्यतन उपयोगी बौद्धिक जानकारी को हिंदी माध्यम से पठन पाठन करने वालों के साथ-साथ सामान्यजन को सुलभ कराना है।

अन्य पत्रिकाएँ

आयोग ने समय-समय पर शिक्षा माध्यम परिवर्तन की सरलता के लिए अनुसंधानात्मक/विवरणात्मक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया था। इनके नाम इस प्रकार हैं–

1. आयुर्विज्ञान पत्रिका
2. इंजीनियरी पत्रिका
3. चिकित्सा सेवा
4. शिल्पी मित्र
5. पुस्तक प्रदर्शनियाँ एवं बिक्री आदि।

आयोग ने अब तक हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हजारों पुस्तकें प्रकाशित कर ली हैं और अनेक शब्द-संग्रह, परिभाषा-कोश, पाठमालाएँ, चयनिकाएँ, अखिल भारतीय शब्दावलियाँ, वैज्ञानिक पत्रिका आदि भी। आयोग के प्रकाशनों एवं अन्य कार्यों के उचित प्रचार-प्रसार के लिए आयोग का प्रदर्शनी एकक समय-समय पर प्रदर्शनियों का आयोजन करता रहता है। ये प्रदर्शनियाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा उच्च तकनीकी संस्थाओं की माँग पर अथवा अखिल भारतीय प्रदर्शनियों एवं आयोग द्वारा आयोजित तकनीकी शब्दावली

कार्यशालाओं, संगोष्ठियों एवं बैठकों के अवसर पर विभिन्न स्थलों पर आयोजित की जाती हैं। आयोग का वितरण एकक प्रशासन शब्दावली तथा विभिन्न विषयों की अखिल भारतीय शब्दावलियों तथा मूलभूत शब्दावलियों का निःशुल्क वितरण भी करता है। आयोग इनकी बिक्री स्वयं भी करता है और ये पुस्तकें भारत सरकार के प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110006 से भी उपलब्ध होती हैं।

पूर्वोत्तर राज्यों में शब्दावली आयोग का योगदान

सन् 1994 में शिक्षा विभाग द्वारा 'कोल्हाटकर समिति' का गठन किया गया तथा हिंदी प्रदेशों की ग्रंथ अकादमियों तथा अहिंदी भाषी राज्यों के पाठ्य-पुस्तक मंडलों के क्रिया-कलापों की समीक्षा का कार्य सौंपा गया था। कोल्हाटकर समिति ने मणिपुरी, नेपाली तथा कोंकणी भाषाओं में पाठ्य-पुस्तक मंडलों की स्थापना की संस्तुति दी।

पूर्वोत्रर राज्यों में भाषागत विविधताओं, अंग्रेजी को कई राज्यों द्वारा राज्य की भाषा घोषित किया जाना तथा शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं की शैशव अवस्था को देखते हुए आयोग ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया है तथा सर्वप्रथम मणिपुर राज्य में मई 1999 में 7 दिनों की एक कार्यशाला मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फाल में राज्य के शिक्षा निदेशालय के भाषा प्रभाग के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित की गई।

आयोग द्वारा शब्द-निर्माण की प्रक्रिया

शब्दावली आयोग में विभिन्न विषयों के एकक एवं अधिकारी हैं, जो अपने-अपने विशिष्ट विषय की पाठ्य पुस्तकों, अद्यतन शब्दकोशों, विश्वकोशों एवं संदर्भ-ग्रंथों की सहायता से पर्यायों का चयन करते हैं। पर्यायों को अंतिम रूप देने के लिए आयोग के ये अधिकारी अपने-अपने विषयों/उपविषयों/विषय की शाखाओं के विशिष्ट विद्वानों, विश्वविद्यालय एवं उच्चतर तकनीकी संस्थानों के विशेषज्ञों आदि को परामर्श के लिए आमंत्रित करते हैं। इन विशेषज्ञों एवं अनुभवी भाषाविदों के परामर्श से ही प्रत्येक विषय के पर्याय को अंतिम रूप दिया जाता है ताकि आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली को मानक स्वीकृति प्राप्त हो। इन शब्दावलियों पर समय-समय पर अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों एवं बैठकों में पुनर्विचार भी किया जाता है और आवश्यकतानुसार संशोधन एवं परिवर्धन भी।

शब्दावली निर्माण के लिए स्वीकृत सिद्धान्त

आयोग द्वारा शब्दावली निर्माण के लिए स्वीकृत सिद्धांतों का सार इस प्रकार है–

(1) अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए तथा हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं–

- (क) तत्त्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि,
- (ख) तौल और माप की इकाइयाँ तथा भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे डाइन, कैलरी, ऐम्पियर आदि,
- (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गेरीमैंडर (मिस्टर गेरी), एम्पियर (मिस्टर एम्पियर), फारेनहाइट तापक्रम (मिस्टर फारेनहाइट) आदि,
- (घ) वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली,
- (ङ) स्थिरांक, जैसे च, ह आदि,
- (च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि,
- (छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

(2) प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों से भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे सेन्टीमीटर का प्रतीक हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे बउ ही प्रयुक्त करना चाहिए।

(3) ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे क, ख, ग, या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय फलनों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे आदि।

(4) संकल्पनाओं (कांसेप्ट) को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

(5) हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार–विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

(6) सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो –

(क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

(ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

(7) ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे के लिए तार, के लिए महाद्वीप, के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

(8) अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

(9) अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरण–अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

(10) लिंग–हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

(11) संकर शब्द–पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे के लिए 'गारंटित', के लिए 'क्लासिकी', के लिए 'कोडकार' आदि, के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों

को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

(12) पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास–कठिन संधियों का यथासम्भव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन (-) लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित आदिवृद्धि का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है। परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

(12) हलन्त–नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलन्त का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

(14) पंचम वर्ण का प्रयोग–पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परन्तु, आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट/पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

विश्व के ज्ञात ऐतिहासिक युग में कुछ ऐसे अवशेष अभी भी इस धरती पर विद्यमान दिखाई देते हैं, जिनका काल निर्णय इतिहासकार अनुमान के आधार पर करते हैं, परन्तु जो अनुमान वह लगाते हैं, वह भी इतना प्राचीन है कि मिस्र के पिरामिडों को देखकर यह आश्चर्यजनक लगता है कि इतने बड़े-बड़े विशाल शिलाखण्ड पिरामिडों की चोटी तक कैसे पहुँचाये गये होंगे। इसके अतिरिक्त उस समय की निर्माण कला क्या सचमुच उन्नत थी? सम्भवतः मिस्र में पिरामिड न पाये जाते, भले ही साहित्य में उनका उल्लेख भी होता तो भी आज का इतिहास ऐसे आलेख को शायद ही स्वीकार करता। सम्भवतः जब पिरामिड बनाये गये तब भी वैज्ञानिक युग ही रहा होगा, परन्तु उस समय का विज्ञान ऐसे युग से सूत्रपात का कारण नहीं बना था, जैसा 16वीं-17वीं शताब्दी का वैज्ञानिक युग, जिसका जन्म यूरोप में हुआ। इस वैज्ञानिक युग में मनुष्य ने उन्नति के वह आयाम छुए, जिनको मनुष्य द्वारा छूने का कोई प्रकरण इससे पहले का नहीं मिलता। इसी कारण विज्ञान आधुनिक सभ्यता और संस्कृति को नये क्षितिज तक ले पहुँचा है। 19वीं शताब्दी तक विज्ञान का विकास पूरे संसार में फैल गया। वैज्ञानिक क्रान्ति के इस युग ने वह साधन ही उपलब्ध कराये, जो विज्ञान के मर्म को अपने साथ लेकर विश्व के कोने-कोने में पहुँचे। उनमें शिक्षा और ज्ञान का बड़ी सहजता से विस्तार कर दिया। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान केवल एक भाषा से दूसरी, दूसरी

से तीसरी और तीसरी से चौथी भाषा की गोद में कूदता हुआ संसार की प्रायः सभी उन्नत भाषाओं की गोद में खेलने लगा। विज्ञान को एक भाषा से दूसरी तीसरी, चौथी आदि भाषाओं की गोदों को पवित्र करते हुए अग्रसर होने की शक्ति अनुवाद ने दी थी। विज्ञान की पुस्तकों तथा विज्ञान साहित्य का अनुवाद जिस प्रकार संसार की भाषाओं में किया गया, उसने अनुवाद की भूमिका को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया, और अनुवाद को एक नया क्षेत्र प्राप्त हुआ।

उद्योग और व्यापार ही नहीं वैज्ञानिक अनुसंधानों ने कृषि क्षेत्र से लेकर अन्तरिक्ष तक अपने पाँव फैला दिये। निर्माण और विनाश, संचार और बौद्धिक सूक्ष्मता को विज्ञान ने आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ कराई। राजनीतिक और सामाजिक संस्कृति में क्रान्किारी परिवर्तन आया, तो संसार में विकसित तथा विकासशील देशों के नवीन सम्बन्धों का जन्म हुआ। वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त करना विकासशील देशों की अनिवार्य आवश्यकता हो गई तो अनुवाद ने ही इसे पूरा करने का दायित्व ग्रहण किया। नित्य नये अनुसंधान और उपलब्धियाँ विकसित देशों के लिए साधारण बात बन गयी थी, जबकि विकासशील देशों को अभी उनके स्तर तक पहुँचने में देरी थी, परन्तु विकासशील देशों को उस स्तर तक पहुँचने की लगन और प्रयत्नों का रुख सीधा था। इसलिए वे विकसित देशों से शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने में आज भी लगे हुए हैं। सभी विकासशील देश यह समझते हैं कि विभिन्न देशों के वैज्ञानिक अनुसंधानों से जीवन्त और तात्कालिक परिचय रखने के लिए विज्ञान एवं टैक्नोलॉजी का अनुवाद नितान्त आवश्यक है। जो देश जितना प्रगतिशील है वह उतना ही लगन और तत्परता से इस काम में लगा हुआ है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का अनुवाद कार्य बहुत सावधानी और सूक्ष्म ध्यान का विषय है। स्रोत-भाषा में व्यक्त वैज्ञानिक और तकनीकी सूचनाओं का लक्ष्य-भाषा में इस प्रकार अन्तरण करना आवश्यक होता है कि मूल स्रोत-भाषा में अनुवाद करते हुए नष्ट न हो जायें या वह दिग्भ्रमित करने वाली बनकर न रह जाये। अतः वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद करना भी एक प्रकार से वैज्ञानिक कार्य है।

साहित्यिक एवं वैज्ञानिक तकनीकी अनुवाद के बीच मूलभूत अंतर यह है कि साहित्यिक अनुवाद में प्रमुखता उसकी शैली, अभिव्यंजना, भाव-भंगिमा के लिए है जबकि वैज्ञानिक अनुवाद में अभिव्यक्त विचार ही प्रमुख हैं। वैज्ञानिक अनुवाद में 'कैसे' की अपेक्षा 'क्या' का अधिक महत्व है। यही विषय मुख्य है

और शैली गौण। वैज्ञानिक पुस्तकों के पाठकों की रुचि केवल उसमें दी गयी सूचनाओं, संकल्पनाओं तथा तथ्यों तक ही सीमित रहती है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का अनुवाद प्रायः वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषय के विद्वानों एवं छात्रों के लिए ही होता है। उनके लिए महत्वपूर्ण तो केवल उसमें अभिव्यक्त विचार ही हैं। शैली पर बल केवल कुछ लोकप्रिय वैज्ञानिक तकनीकी रचनाओं के अनुवाद में होता है, जो साहित्यिक कोटि में आने के कारण वैज्ञानिक तकनीकी सामग्री से भिन्न प्रकृति की रचनाएँ होती हैं। उनमें कल्पना एवं भावना का समावेश होने के कारण शैली की रंगीनी भी आ जाना स्वाभाविक है।

वैज्ञानिक तकनीकी अनुवाद में अनिवार्य शर्त यह है कि अनुवादक विषय का सम्यक जानकार हो। अतः वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों में प्रशिक्षित व्यक्ति ही अनुवाद कर पाते हैं। उसका क्षेत्र वास्तव में विशेषज्ञता को क्षेत्र है अतः दुनिया में वैज्ञानिक तकनीकी अनुवादकों का जो विशिष्ट वर्ग विकसित हो गया है, उसका प्रमुख कारण यही विशेषज्ञता है। अनूदित सामग्री जितनी विशिष्ट होगी, अनुवादक को भी उतना ही विशेष होना पड़ेगा। इसलिए हर वैज्ञानिक तकनीकी विषय विषय के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता है। भारत में दिल्ली का वैज्ञानिक अनुवादकों का संगठन (ISTA) तथा यूरोप के अनेक वैज्ञानिक तकनीकी अनुवादकों के संगठन ऐसे ही विशेषज्ञ अनुवादकों की सूची अपने पास रखते हैं। अभिव्यक्त विचारों की प्रामाणिकता इस तरह के अनुवादों का अनिवार्य तत्त्व है और प्रामाणिक अनुवाद तो केवल विषय के अधिकारी अनुवादक ही प्रस्तुत कर सकते हैं।

विषय ज्ञान की तरह महत्वपूर्ण है वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा। वैज्ञानिक भाषा की सबसे बड़ी विशेषता तो उसकी वस्तुनिष्ठता एवं तथ्यपरकता है, यह तो स्वयंसिद्ध है। तकनीकी भाषा की प्रकृति को उसके तकनीकी शब्दों एवं मुहावरों से समझा जा सकता है। साहित्यिक भाषा में अर्थ की संदिग्धता सम्भव है जबकि वैज्ञानिक तकनीकी अनुवाद में अर्थ की स्पष्टता एवं सुबोधता में संदिग्धता अनुवाद के प्रयोजन को ही नष्ट कर देती है, इसलिए सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग वैज्ञानिक अनुवाद में मूल शर्त होती है।

वैज्ञानिक-तकनीकी अनुवाद में पारिभाषिक शब्द किसी विशिष्ट शब्द किसी विशिष्ट क्षेत्र में किसी विशिष्ट अर्थ या संकल्पना को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इसलिए उनके अनुवाद की समस्याओं के कारक बन जाते हैं। वैज्ञानिक सूत्रों, संकेताक्षरों एवं अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रयोग

वैज्ञानिक अनुवादकों के संरचना में होना अनिवार्य है। अन्य तरह के पारिभाषिक शब्दों के निर्माण एवं अनुकूलन वैज्ञानिक-तकनीकी अनुवाद की सबसे बड़ी समस्या है। भारत में शब्दावली निर्माण के प्रारम्भिक कार्य हो चुके हैं। परन्तु इस शब्दावली के प्रयोग एवं उपयोगिता की समस्याएँ समाप्त हो गई हों, ऐसा सम्भव नहीं हुआ। लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य में पारिभाषिक शब्दावली की बहुलता नहीं होती, लेकिन विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी विषयों *के अनु*वाद में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग ही सम्भव है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि यह कहा जाए कि विज्ञान की भाषा की एक अलग भाषा है, अर्थात एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा। इसको अपनाना ही वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद के लिये श्रर्यास्कर है। वैसे भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाला सामाजिक संक्रमण इस मार्ग को स्वाभाविक रूप से खोलता है। अतः विज्ञान के क्षेत्र में भारत को शब्द-ग्रहण एवं अनुकूलन की दिशा में उदार नीति अपनानी होगी।

चूँकि वैज्ञानिक अनुवाद कार्य का आधार तत्त्व स्पष्टता और बोधगम्यता है, अतः अनुवाद को हर प्रकार से अभिव्यक्त विचारों को सुबोधता देने का ध्यान रखते हुए स्पष्ट रूप से व्यक्त करना एक ऐसी आवश्यकता है, जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। इसके लिए पहली आवश्यक बात यह है कि संकल्पनाओं और विचारों को हू-ब-हू लक्ष्य पाठ में उतारने की आवश्यकता होते हुए भी शब्दानुवाद की प्रवृत्ति से बचा जाए। यहाँ तक कि आवश्यक स्थलों पर व्याख्या, पाद टिप्पणी आदि देकर तथ्यों को समझाना भी अनुवादक के लिए आवश्यक हो जाता है, क्योंकि नियत अर्थ पर बल देने पर भी कभी-कभी मूल विचार शब्दानुकरण से स्पष्ट नहीं हो पाते यहाँ पर अनुवादक व्याख्याता बन जाता है। मूल की वाक्य रचना का अंधानुकरण न कर स्रोत-भाषा की सहज अभिव्यक्तियों एवं वाक्य-विन्यास के अनुसार विचारों को गूँथने का कौशल भी वैज्ञानिक अनुवादक की विशेषता माना जाता है। यूनेस्कों के एक प्रकाशन में इस तथ्य पर विशेष जोर दिया गया है कि मूल की जो बातें मूल भाषा-भाषी प्रदेश के विद्वानों के लिए स्पष्ट हों और लक्ष्य भाषा-भाषियों के लिए स्पष्ट नहीं हो, उनको स्पष्ट बनाना अनुवादक का कर्तव्य है।

अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की जटिल वाक्य रचना भी अनुवाद में दुरूहता का एक कारण बन जाती है। जहाँ तक भारतीय भाषाओं में इन विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्या है, वाक्य-रचना की दृष्टि से सरलता एवं स्पष्टता

का मानदण्ड ही अनुवादक को अपनाना चाहिए। अतः अनुवादक का विषय-ज्ञान के साथ ही लक्ष्य-भाषा की सहज गति से परिचित होना बहुत आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इसी बात का स्पष्टीकरण इस रूप में किया जा सकता है। साहित्यिक अनुवाद के सौन्दर्यानुभूतिपरक महत्व की तुलना वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों के अनुवाद के व्यावहारिक एवं तथ्यात्मक लक्ष्यों से की जा सकती है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद में किसी भी विषयगत सूचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपित करना यथार्थता एवं परिशुद्धता से सम्बन्धित होता है। यदि अनुवादक मूल कथ्यों से हट जाता है तो उसकी यह गलती कदापित क्षम्य नहीं हो सकती। दूसरी ओर साहित्य के अनुवादक को कुछ अंश तक स्वतन्त्रता होती है कि उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि का अनुवाद करते समय वह मौलिक कल्पना का सहारा ले ले।

यह सत्य है कि तकनीकी विषय के अनुवादक को भाषा के साथ वैसा श्रम नहीं करना पड़ता जैसा कि साहित्य के अनुवादक को करना पड़ता है। अतः वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों का अनुवाद साहित्य के अनुवाद की तुलना में अपेक्षाकृत सरल प्रक्रिया कही जा सकती है जिसके लिए अनुवादक को विषय की शब्दावली का ज्ञान होना मात्र पर्याप्त है, किन्तु यह बात पूर्ण सत्य नहीं है। इस बात को अपने आप में अन्तिम समझ लेना भारी भूल होगी। किसी वैज्ञानिक अनुसंधान की जटिल विकास-प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करने वाले किसी लेख या उद्योग सम्बन्धी नवीन तकनीकी कार्य के आरम्भ करने के सम्बन्ध में किसी लेख (जिसमें उस तकनीक विशेष की प्रक्रिया को प्रस्तुत करने के लिए व्यापक तर्क प्रस्तुत किए गए हों) का अनुवाद करने के लिए भाषा पर वैसा ही सहज और समृद्ध अधिकार अपेक्षित होगा जैसा कि किसी अच्छी साहित्यिक कृति के अनुवाद के लिए अपेक्षित है। इसके विपरीत ऐसी अनेक साहित्यिक कृतियाँ होती हैं। जिनमें विधि, युद्ध, खेलकूद, जैविकी आदि अनेक विषयों का सम्मिश्रण होता है। ऐसी स्थिति में इनका अनुवाद भी उन विशेष विषयों की जानकारी के बिना सम्भव नहीं होता।

प्रत्येक प्रकार का अनुवाद--चाहे वह साहित्यिक हो अथवा वैज्ञानिक या तकनीकी--विशेष प्रकार के मानदण्डों द्वारा नियन्त्रित होता है। वे मानदण्ड मूल पाठ के स्वरूप एवं प्रकार पर आधारित होते हैं और कोई भी मानदण्ड इतने जड़ एवं स्थिर नहीं होते कि उनमें कोई परिवर्तन ही सम्भव न हो। परिस्थिति के अनुकूल इनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

यूनानी गणितज्ञ यूक्लिड ने अपनी `Elements of Geometry नामक पुस्तक में अनेक पारिभाषिक शब्दों को ठोस और मूर्त रूप में प्रयुक्त किया। स्वयं **अरस्तू** विज्ञान के अन्य क्षेत्रों की शब्दावली गढ़ते रहे थे। आज के वैज्ञानिकों ने विकास–परम्परा में यह बात गाँठ बाँध ली है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद की भाषा सहज, सरल तथा अभिधाप्रधान होनी चाहिए। इस भाषा में लक्षणा तथा व्यंजना लाने का प्रयास आद का नहीं, निन्दा का अधिकारी बनता है। पुराने जमाने में वैज्ञानिक साहित्य भारत, अरब, यूरोप आदि देशों के पद्य में लिखा जाता था। चिकित्सा आदि पर मध्यकाल में लिखे गए छन्दोबद्ध ग्रन्थ मिलते हैं। छन्द को याद रखने में सुविधा होती थी, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे वैज्ञानिक साहित्यिक छन्द लिखते थे या उनके छन्दों का प्रसाधन साहित्यिक दृष्टि से होता था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस व्यर्थ की छन्दबद्धता पर प्रहार किए और रॉयल सोसाइटी की यह बात मान ली गई कि वैज्ञानिक अनुवाद की भाषा स्पष्ट एवं तार्कित गद्य में होनी चाहिए।

वस्तुतः वैज्ञानिक विषयों के अनुवादक को साहित्यकार की भाँति शब्द–चयन के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। उसे दृढ़ता के साथ केवल वे ही शब्द चुनने चाहिए जिनका अर्थ भ्रमित करने वाला न होकर निश्चित हो। पूरे अनुवाद के एक निश्चित शब्दावली को तार्किक वैज्ञानिकता के लिए प्रयोग करना अभीष्ट होता है। प्रतीक चिह्न दृढ़ रूप में रखना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे कि स्रोत–भाषा में निहित अर्थ लक्ष्य–भाषा में प्रस्तुत होने पर समझने में देर न लगे और यदि कोई नया प्रतीक चिह्न है तो विशेष टिप्पणी द्वारा उसे स्पष्ट करके अनुवाद में सुबोधता तत्त्व को निहित करना चाहिये। इस प्रकार स्रोत–भाषा का सम्पूर्ण कथ्य लक्ष्य–भाषा में सम्पूर्णता से लाया जाता है। जैसे–जैसे विश्व में वैज्ञानिक जानकारी के प्रति आद बढ़ता जा रहा है वैसे–वैसे अनुवाद कार्य भी प्रगति कर रहा है। लैटिन, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, जापानी आदि भाषाओं में ज्ञान के साहित्य (Literature of knowledge) का बहुत अनुवाद हुआ है और हो रहा है। लम्बे समय तक दासता में जकड़े रहने के कारण भारतवर्ष में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति बड़ी देर से आरम्भ हो सकी जिसका सीधा परिणाम यह हुआ है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक अनुवाद का कार्य अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ, किन्तु आज स्थिति वैसी नहीं रही है और यह कार्य बहुत अधिक गति पकड़ गया है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद सूचना प्रधान होने के कारण इसमें शैली की कलात्मकता वांछित नहीं होती है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति-प्रधान साहित्य की तुलना में वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद समस्याएँ उत्पन्न नहीं करता।

विश्व की प्रायः समृद्ध भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों का अभाव नहीं है, क्योंकि इन भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की समृद्ध परम्परा विद्यमान है। इसलिए परम्परागत विज्ञान और नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सन्दर्भ में ये भाषाएँ पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से समर्थ एवं सम्पन्न रहीं और इन भाषाओं का अनुवादक विषय की भीतरी जानकारी प्राप्त करता हुआ अपने अनुवाद के क्षेत्र को समृद्ध करता रहा।

वस्तुतः वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद आधुनिक जीवन की प्रगति परक चेतना है, वह विश्व सन्दर्भ में जीवन-मूल्यों का निर्धारण करता है। भाषाओं के माध्यम से मनुष्यों को एक-दूसरे से जोड़ता है। चूँकि विज्ञान और तकनीक वर्तमान जीवन की आधारशिला के रूप में स्थापित हो चुकी है, इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय और भाषाई स्तर पर संसार के मानव-समाज को अलग-थलग रह पाना सम्भव नहीं रहा है। स्वाभाविक है कि विज्ञान और तकनीकी अनुवाद कार्य शिक्षा और प्रशिक्षण का अंग बनकर बिना किसी भेदभाव के दूसरे देशीय और भाषाई मनुष्यों को निकट लाने का एक सशक्त सहारा बन गया है।

10

प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में अनुवाद: सिद्धांत एवं प्रयोग

अनुवाद के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों से शीघ्र गति से विकास हुआ है। यह मनुष्य को सोचने विचारने और संप्रेषण करने के लिए तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत कंप्यूटर के साथ-साथ माइक्रोइलेक्ट्रोनिक्स और संचार प्रौद्योगिकियाँ भी शामिल हैं और इसके विकास का नवीनतम रूप हमें इंटरनेट, मोबाइल, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, उपग्रह प्रसारण, कंप्यूटर के रूप में दिखाई देता है। इन सबके द्वारा आज सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरे विश्व को अपने आगोश में ले लिया है।

कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ जिनकी भाषा मुख्यत: अंग्रेजी थी। यही कारण है कि रोमनेतर लिपियों में कंप्यूटर पर कार्य कुछ देरी से आरंभ हुआ। ऐसा कोई तकनीकी कारण नहीं है कि अंग्रेजी कंप्यूटर के लिए आदर्श भाषा समझ ली जाए। कंप्यूटर की दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है और उसी में वह हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने समस्त कार्य करता है। कंप्यूटर टेक्नोलॉजी के अंतर्गत प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में विश्व भर में अनेक विशेषज्ञ प्रणालियों का विकास किया गया है, जिनके

माध्यम से कंप्यूटर साधित भाषा शिक्षण, मशीनी अनुवाद और वाक्र-संसाधन से संबंधित विभिन्न अनुप्रयोग विकसित किए गए हैं।

हिंदी में कंप्यूटरीकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकारी स्तर पर ही नहीं बल्कि गैरसरकारी स्तर पर भी अनेक संस्थाओं द्वारा हिंदी सॉफ्टवेयर के निर्माण में सक्रिय रूप से कार्य प्रगति पर है। सरकारी और गैरसरकारी प्रयत्नों के कारण हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ जन सामान्य तक पहुँचा है। हिंदी में अनेक पोर्टल भी प्रारंभ हो गए हैं। पोर्टल के माध्यम से देश-विदेश की खबरें, वर्गीकृत विज्ञापन, कारोबार संबंधी सूचनाएँ, शेयर बाजार, शिक्षा, मौसम, खेलकूद, पर्यटन, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आज इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही हैं कि उपयोगकर्ता को इनका समुचित प्रशिक्षण दिया जाए।

भारतीय भाषा कंप्यूटिंग या हिंदी भाषा कंप्यूटिंग का अंतिम लक्ष्य यह निश्चित करना है कि सूचना प्रौद्योगिकी जनमानस तक उसकी अपनी भाषा में पहुँचे ताकि वह नई टैकनोलॉजी से काम करने में अधिक आसानी महसूस करे। हमारे देश में सूचना प्रौद्योगिकी की विकासात्मक और सामाजिक दोनों ही भूमिका हैं। विकासात्मक भूमिका में इसका संबंध विभिन्न अनुप्रयोग के लिए नई टेक्नॉलॉजी का डिजाइन और विकास करने से है, किंतु सामाजिक भूमिका में यह भाषिक अवरोध को तोड़ती है और हिंदी भाषा या अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग करके सूचना की प्राप्ति से समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अन्तर को कम करती है। इस दिशा में शोध कार्यों के विकास और प्रसार का कार्य बड़े पैमाने पर किया गया है, जिसका प्रभाव पूरे समाज पर व्यापक रूप से पड़ना चाहिए। आज जरूरत है अपने प्रयासों को तेजी से अमल में लाने की तथा संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने की।

राजभाषा विभाग सी-डैक, पुणे के माध्यम से कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग को सरल व कुशल बनाने के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयरों द्वारा हिंदी भाषा को तकनीकी से जोड़ने का सफल प्रयास 'प्रगत संगणन विकास केन्द्र (सी-डैक), पुणे' ने किया है। 'एप्लाइड आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस ग्रुप, प्रगत संगणन विकास केंद्र, पुणे' द्वारा निर्मित सॉफ्टवेयर में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से इंटरनेट पर हिंदी सीखने के लिए लीला सॉफ्टवेयर विकसित किया है। लीला सॉफ्टवेयर के माध्यम से हिंदी प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रम असमी, बांग्ला, अंग्रेजी, कन्नड़ मलयालम, मणिपुरी, मराठी, उड़िया तमिल,

तेलुगू, पंजाबी, गुजराती, नेपाली और कश्मीरी के द्वारा इंटरनेट पर सीखे जा सकते हैं। हिंदी प्रबोध, प्रवीण एवं प्राज्ञ पाठक्रम के प्रशिक्षण के मूल्यांकन हेतु ऑन लाइन परीक्षा प्रणाली का विकास भी किया जा रहा है। इंटरनेट के माध्यम से ही परीक्षा दी जा सकेगी। द्विभाषी-द्विआयामी अंग्रेजी-हिंदी उच्चारण सहित ई-महाशब्दकोश का विकास किया गया है। ई-महाशब्दकोश में हर शब्द का उच्चारण दिया गया जो कि किसी और शब्दकोश में नहीं मिलता। हिंदी शब्द देकर भी उसका अंग्रेजी में अर्थ खोज सकते हैं। प्रत्येक अंग्रेजी और हिंदी शब्द के प्रयोग भी दिए गए हैं।

आज सूचना प्रौद्योगिकी की विस्तृत भूमिका को देखते हुए विश्व स्तर पर हिंदी भौगोलिक सीमाओं को पार कर सूचना टेक्नोलॉजी के परिवर्तित परिदृश्य में विभिन्न जनसंचार माध्यमों तक पहुँच रही है। हिंदी के नए सॉफ्टवेयर हों या इंटरनेट, कंप्यूटर टेक्नोलॉजी अनेक चुनौतियों को स्वीकार कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जनमाध्यमों में अपनी मानक भूमिका के लिए संघर्षरत है।

आज के दौर में इंटरनेट पर सभी तरह की महत्वपूर्ण जानकारियाँ व सूचनाएँ उपलब्ध हैं जैसे परीक्षाओं के परिणाम, समाचार, ई-मेल, विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य, अति महत्त्वपूर्ण जानकारी युक्त डिजिटल पुस्तकालय आदि। परन्तु ये प्राय: सभी अंग्रेजी भाषा में हैं। अत: कई हिंदी भाषी लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करने में भाषाई कठिनाई महसूस करते हैं और कम्प्यूटर के उपलब्ध होते हुए भी वे कम्प्यूटर व इंटरनेट का उपयोग करने से वंचित रह जाते हैं। यदि इंटरनेट एक्सप्लोरर का संपूर्ण इंटरफेस हिंदी (देवनागरी लिपि) में होने के साथ-साथ इसमें वेबपृष्ठ के अंग्रेजी-पाठ को माउस क्लिक के माध्यम से हिंदी में अनुवाद करने की सुविधा सहित हो तो अंग्रेजी भाषा की बाधा हिंदी भाषी कम्प्यूटर उपयोक्ताओं के काम में बाधा नहीं रहेगी। वेबपृष्ठ पर अनुवाद सुविधा कम्प्यूटर उपयोक्ताओं के लिए इंटरनेट पर उपलब्ध सूचना को उनकी अपनी ही भाषा में समझने में सहायक होगी।

मुझ जैसे करोड़ो हिंदी भाषी कम्प्यूटर उपयोक्ताओं को कम्प्यूटर के उपयोग में कई समस्याएँ सिर्फ अंग्रेजी भाषा में अपनी कमजोरी होने की वजह से आती हैं न कि इसकी तकनीकी की वजह से। अपने कैरियर में अंग्रेजी की तमाम परेशानियाँ झेलने व महसूस करने के बाद मैं कम्प्यूटर पर भाषाओं के बीच एक पुल बनाने के लिए प्रेरित हुई और 'मंत्र' प्रोजेक्ट के तहत एक हिंदी सॉफ्टवेयर के विकास में सहयोग दिया।

किसी भाषा में कही या लिखी गई बात का किसी दूसरी भाषा में सार्थक परिवर्तन अनुवाद कहलाता है। कम्प्यूटर साफ्टवेयर की सहायता से एक प्राकृतिक भाषा के पाठ (टेक्स्ट) या कही गयी बात (स्पीच) को दूसरी प्राकृतिक भाषा के पाठ या वाक्य में अनुवाद करने को मशीनी अनुवाद या यांत्रिक अनुवाद कहते हैं। कम्प्यूटर और साफ्टवेयर की क्षमताओं में अत्यधिक विकास के कारण आजकल अनेक भाषाओं का दूसरी भाषाओं में मशीनी अनुवाद सम्भव हो गया है। यद्यपि इन अनुवादों की गुणवता अभी भी संतोषप्रद नहीं कही जा सकती, तथापि अपने इस रूप में भी यह मशीनी अनुवाद कई अर्थों में और अनेक दृष्टियों से बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। जहाँ कोई चारा न हो, वहाँ मशीनी अनुवाद से कुछ न कुछ अर्थ तो समझ में आ ही जाता है।

आने वाली शताब्दी अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति की शताब्दी होगी और सम्प्रेषण के नए-नए माध्यमों व आविष्कारों से वैश्वीकरण के नित्य नए क्षितिज उद्घाटित होंगे। इस सारी प्रक्रिया में अनुवाद की महती भूमिका होगी। इससे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उपनिषदीय अवधारणा साकार होगी। इस दृष्टि से सम्प्रेषण-व्यापार के उन्नायक के रूप में अनुवादक एवं अनुवाद की भूमिका निर्विवाद रूप से अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। आज के दौर में अनुवाद हमारे परिवेश का एक अभिन्न अंग बन चुका है। सच तो यह है कि सूचनाओं को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अनुवाद सशक्त माध्यम है और जिसके प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी अपनी अहम् भूमिका निभाती है।

आधुनिक युग औद्योगिक युग है। सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही क्षेत्र वर्तमान काल के उद्योग जगत से पूरी तरह प्रभावित हैं, क्योंकि औद्योगिक विकास और उन्नति ने उनके आर्थिक चिन्तन को परिवर्तित कर दिया है। इस युग से पहले कृषि युग था। समाज की जीविका का मुख्य आधार कृषि थी और राज्यों के राजस्व का मुख्य स्रोत भी, परन्तु वैज्ञानिक क्रान्ति ने अ कृषि को भी एक उद्योग का रूप दे देने का बीड़ा उठा लिया है। इसी कारण वर्तमान संसार में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जिस पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क एवं सहयोग हो रहा है वह इस क्षेत्र में अनुवाद को विशेष प्रासंगिक एवं अनिवार्य बनाता जा रहा है। औद्योगिक क्षेत्र में एक तरफ सहयोग भी है, लेकिन प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिस्पर्द्धा उसकी प्रकृति में है, इस कारण औद्योगिक संस्थाओं की यह उत्कट चेष्टा होती है कि वह इस सन्दर्भ में नवीनतम वैज्ञानिक प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलें। स्पर्द्धावश वह सबसे पहले वैज्ञानिक अनुसंधानों और

उनके परिणामों से अवगत रहना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, अतः प्रतिद्वन्द्विता भी अनुवाद की प्रेरणा देती है। इस क्षेत्र में कुछ देश अत्यधिक विकसित हैं। वे अपने विकास की गति और तेज बना लेना चाहते हैं कम विकसित देश विकास करना चाहते हैं। कोई भी देश आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मोह से मुक्त नहीं है। आधुनिक संस्कृति किसी भी देश को उससे मुक्त रहने की छूट दे भी नहीं सकती, क्योंकि औद्योगिक विकास ने सभी देशों को आर्थिक समृद्धि के लिए उत्कृष्ट रूप से उद्वेलित कर रखा है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का संक्षिप्त इतिहास बताता है कि पिछले सौ वर्षों की अवधि में विज्ञान ने सभ्यता पर जितना प्रभाव एवं परिवर्तन प्रस्तुत किया है उतना रोम के हजार वर्षों में तो क्या, पुराने शिला युग के लाखों वर्षों में भी नहीं हो पाया है। उद्योग जगत को बीसवीं शताब्दी में इलेक्ट्रोनिकी ने जिस तरह कायापलट किया है उसका वैसा रूप पहले कभी नहीं था। प्रथम सार्वजनिक कम्प्यूटर ENIAC (इलेक्ट्रॉनिक न्यूमेरिकल इंटरप्रेटर एण्ड कैलकुलेटर) अमेरिका के पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय में सन् 1946 में प्रस्तुत किया गया था। मतलब यह है कि कम्प्यूटर ने 56 वर्ष भी मुश्किल से ही पूरे किये हैं, लेकिन इन 56 वर्षों में ही कम्प्यूटर का इतिहास इतनी ऊँचाइयों पर पहुँच गया है कि आश्चर्य होता है।

कभी ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था, अपनी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में उसने जो प्रतिष्ठा और साम्राज्य प्राप्त किया था, वह अपनी औद्योगिक उन्नति के कारण ही किया था। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध अमेरिका के लिये वरदान साबित हुए। उसी आर्थिक सम्पन्नता अन्तरिक्ष तक उसे ले पहुँची और आज तो वह सार्वभौम रूप से निरंकुश अन्तर्राष्ट्रीयता प्राप्त करने की ओर गतिपूर्वक बढ़ ही रह है। अंग्रेजी भाषा का आधुनिक ज्ञान-विज्ञान पर पूर्ण अधिकार है।

राजनीतिक रूप से प्रौद्योगिकी राजनीतिक सुदृढ़ता का भी परिचायक बन चुकी है। विकसित और विकासशील देशों का अन्तर्राष्ट्रीय दबदबा भी इसी के आधार पर कायम है। जिस गति से प्रौद्योगिकी का विकास यूरोप और अमेरिका में हुआ, वह इस प्रकार से अबाध थी। यों तो प्राचीनकाल से ही मनुष्य और विज्ञान में सामंजस्य रहा है, लेकिन तब यह सामंजस्य राष्ट्रों और प्रौद्योगिकी के बीच नहीं था। राजकीय स्तर पर कभी किसी देश ने ध्यान नहीं दिया था। परन्तु यूरोप जब अपने वाणिज्यिक विकास के लिये समुद्रों को पार करने लगा और उसी के साथ प्रौद्योगिकी चेतना का यूरोप में आविर्भाव हुआ, लेकिन वह अपने चरम-शिखर पर आज कम्प्यूटर युग में आने पर ही पहुँचा।

चीन ने कागज–निर्माण, मुद्रण और बारूद–निर्माण की तकनालाजी संसार को दी थी। आतिशबाजी उसी देश की देन मानी जाती है। अरबों ने वैज्ञानिक आविष्कारों में अत्यधिक क्षमता पाई। कहते हैं, जब कोई अरब राजा दूसरे देश पर वियज पाता तब संधि की पहली शर्त यह होती है कि हारे हुए देश के सारे वैज्ञानिक ग्रन्थों को विजेता की सेवा में प्रस्तुत करना चाहिए, परन्तु यह इस्लाम के जन्म से पहले की बात है। नौवीं शती में अरब के अबीर इबन हय्यां ने अल्केमी का आविष्कार किया था। गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्विज्ञान एवं भौतिकी में अरबों का योगदान महत्त्वपूर्ण था।

इताली, फ्रांस, जर्मनी, पोलैण्ड आदि देशों में विभिन्न युगों में महान आविष्कारक हुए। इन देशों के वैज्ञानिकों ने अपने ग्रन्थों में तकनीकी भाषा के लिए ग्रीक एवं लैटिन शब्द ही बुनियादी तौर पर स्वीकार किये थे। आधुनिक आयुर्विज्ञान धारा 'एलोपैथी' की शब्द–व्युत्पत्ति ग्रीक के एलोस(अन्य) एवं पायोस (पीड़ा) के संयोग से मानी गयी है। 'मेडिकल एटिमालाजी' नामक कोश की भूमिका में सोदाहरण दिखाया गया है कि अंग्रेजी के मेडिकल संकेतित शब्दों में अधिकांश ग्रीक से व्युत्पन्न हैं। लैटिन से भी अनेक शब्द व्युत्पन्न हैं। अरबी से औषधि–विज्ञान के बहुत से शब्द लिये गये हैं। फ्रेंच से सीधे या परिवर्तित रूप में शब्द ग्रहण किये गये हैं। इताली, डच, फारसी और चीनी के भी शब्द इन शब्दों में प्राप्त होते हैं।

यह निष्कर्ष इस बात को प्रमाणित करता है कि अंग्रेजी की तकनीकी शब्दावली शुद्ध अंग्रेजी शब्दावली नहीं है। अनेक भाषाओं के शब्द मूल रूप में या परिवर्तित रूप में उनमें शामिल हुए हैं।

लोकप्रिय अनुवाद तथा तकनीकी अनुवाद के बीच में स्वतन्त्र अनुवाद या रूपान्तरण कहलाने लायक प्रणाली का विशेष स्थान है। कठिन वैज्ञानिक ग्रन्थों के अच्छे अनुवाद में अधिकतर लोगों को सफल होते देखकर विद्वानों ने यह प्रस्ताव किया है कि मूल–भाषा के महत्वपूर्ण गन्थों को पढ़ने के पश्चात् अपनी तरफ से उन ग्रन्थों को नये सिरे से लक्ष्य–भाषा में रचना चाहिए। पाठ्य–ग्रन्थ–निर्माण के क्षेत्र में इस प्रणाली की विशेष सिफारिश की जाती है। एक हद तक यह उचित लगता तो है, मगर–सार–लेखन–मूल–ग्रन्थ का प्रतिनिधि बन नहीं सकता। बड़े आचार्यों के वैज्ञानिक ग्रन्थों का अनुवाद भाषा की वैज्ञानिक सम्पदा की वृद्धि का कारक भी है, इसलिये भी अनुवाद कार्य में मूल–भाषा के इन शब्दों को लेना चाहिए, जो परम्परागत रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलन में आ गये हैं।

अंग्रेजी के वैज्ञानिक एवं तकनीकी ग्रन्थों के यथातथ्य अनुवाद में सबसे बड़ी बाधा उस भाषा की विशिष्ट शैली है। इस विषय पर केरल के एक वैज्ञानिक लेखक कहते हैं कि वैज्ञानिक अंग्रेजी भाषा तथ्य-प्रधान होती है। उसके शब्दों की सूक्ष्मर्थिता एवं किफायत अन्य दो विशेषताएँ हैं। किसी-किसी वैज्ञानिक ग्रंथ की वाक्य-संरचना बड़ी संकीर्ण होती है। वाक्यों का जटिल गठन विधि की भाषा में भी होता है। विज्ञान में सामान्यतः बड़े वाक्यों को तोड़कर छोटे वाक्यों की शैली स्वीकार की जा सकती है, किन्तु वाक्यों का सम्बन्ध दृढ़ बना रहे और अर्थ-भ्रांति न हो। परन्तु अंग्रेजी से अनुवाद करने में इस दोष के आने की सम्भावना रहने पर भी प्रायः वैज्ञानिक और तकनीकी अनुवाद उसी से किये जा सकते हैं क्योंकि एक तो उसका क्षेत्र व्यापक है, दूसरे उसका साहित्य सर्वाधिक सम्पन्न है। इस नाते वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के लिए अंग्रेजी से अनुवाद करना एक अनिवार्य आवश्यकता भी है। इसके अतिरिक्त एक बात वैश्विक ज्ञान को एकरूप करने की दिशा में भी सोचना चाहिए। यदि कोई शब्द हमें समान अर्थ में (विशेष रूप से पारिभाषिक शब्द) अन्य भषाओं में मिलता है तो हम उस भाषा की अभिव्यक्ति के निकट आसानी से पहुँच सकते हैं, फिर भी ऐसे शब्दों के समानार्थक शब्द लक्ष्य -भाषा में भी हों तो भाषा समृद्धि की दृष्टि से उपयुक्त होंगें।

भारत में गणित, खगोल विज्ञान, आयुर्विज्ञान, कूटनीति आदि विषय काफी प्रौढ़ दशा में रहे थे। अतः उनकी संकेतित शब्दावली और संकल्पनाएँ हमें संस्कृत ग्रन्थों में मिलती हैं। जहाँ वे सुलभ हैं, वहाँ उन्हें स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए संस्कृत मूल भाषा रही हैं इस वजह से संस्कृत सारी भारतीय भाषाओं को तकनीकी शब्दावली दे सकती है।

विदेशी वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के हिन्दी अनुवाद के प्रसंग पर संस्कृत से बचकर व्यावहारिक शब्दों का व्यवहार करने का सुझाव भी नया नहीं है, परन्तु यह सुझाव विशेषरूप से उन लोगों का रहा है, जो या तो उर्दू को सरल समझते हैं या फिर जिन्हें अंग्रेजी के शब्दों की अवधारणा समझने का अभ्यास पड़ा हुआ है। बोलने में भी उन्हें इसलिए कठिनाई होती है, क्योंकि संस्कृतनिष्ठ शब्द उनके वार्तालाप को अभ्यास में न होने के कारण अस्वाभाविक-सा बना देते हुए प्रतीत होते हैं। अतः इसका प्रयोग भी किया गया था। वह प्रयोग हैदराबाद की कार्यशाला नाम से प्रसिद्ध है। स्वतन्त्रतापूर्वक आयोजित प्रस्तुत कार्यशाला में हजारों शब्द लोकप्रियता की दृष्टि से गढ़े गए। अफसोस है कि उम्मानिया

विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के माध्यम बनने के बाद वह पूरी उर्दू शब्दावली नष्ट-भ्रष्ट हो गई। सुबोधता व लोकप्रियता दोनों गुण उसमें थे। उसमें कई त्रुटिया भी थीं। उसके आयोजकों में इस्लामी साम्प्रदायिकता की भावना थी। वे हिन्दी व संस्कृत से जानबूझकर बचते थे। वह प्रवृत्ति भारतीय भाषाओं के सामान्य धर्म के अनुकूल नहीं रही। दूसरे इन गढ़े हुए शब्दों में वैज्ञानिक शब्द के लिए अनिवार्य नियतार्थता और परस्पर अपवर्जन के तत्त्व नहीं रहते थे। फिर भी अर्धतकनीकी शब्दों एवं तकनीकी शब्दों के रूप में उनका प्रयोग अब हो सकता है।

तीसरी विकल्प यह है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्राप्त तकनीकी शब्दों का संकलन व्याख्या सहित किया जाए। उसके बाद उनमें तीन या अधिक भारतीय भाषा के (इनमें भारतीय आर्य एवं द्रविड़ दोनों की प्रतिनिधि भाषाएँ हों) प्रयुक्त शब्दों के अनूदित शब्द के रूप में हिन्दी में स्वीकार करें। इस सुझाव पर कुछ आपत्तियाँ उठ सकती हैं। पहली यह कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने जो शब्दावली अभी गढ़ी है उसे छोड़कर नये शब्द स्वीकार करना गलत है। मगर विकासशील भाषा में शब्दों पर पनश्चिन्तन और बेहतर शब्दों का गठन आवश्यक प्रक्रिया है। इसके अलावा नये शब्द गढ़ लेने पर अर्थ की विभिन्न छवियों के निर्णय के लिए अधिक सुविधा रहेगी। अभी आयोग के शब्दों के विषय में संस्कृत में बोझिल रहने की जो शिकायत है वह भी एक हद तक दूर होगी। अन्य भारतीय भाषाओं के लिए वे शब्द अधिक सहज भी लगेंगे।

भारतीय भाषा के अनुवाद में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों, प्रतीकों के प्रयोग का महत्व दुहरा है। हमारी शिक्षा प्रणाली में दो प्रकार के माध्यम होते हैं। अर्थात् प्रारम्भिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में भारतीय भाषा के माध्यम से विषय सिखाए जाते हैं। कॉलिज पहुँचने पर वही विषय अंग्रेजी के माध्यम से सिखाए जाते हैं। इसके प्रत्युत्तर में सुझाव हो सकता है कि कॉलेज व स्कूल दोनों जगह भारतीय भाषा में सीखें। तब भी विज्ञान व प्रौद्योगिकी के उच्च अध्ययन की जरूरत पड़ेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी शब्दों का भारतीयकरण पूरी तरह वांछनीय नहीं है। देखा गया है कि संसार की प्रमुख भाषाएँ अब नये-नये आविष्कार व सिद्धान्त निर्धारण के बाद उनमें उद्‌भावित एवं गठित नये तकनीकी शब्दों को भी स्वीकार कर लेती है। अगर वे आविष्कार आदि अन्य भाषा-भाषी प्रदेश के हों तो अन्य भाषा में प्रयुक्त नवीन तकनीकी शब्दों को भी अपना लेती हैं, किन्तु अनुकूलन के क्रम में उन शब्दों की वर्तनी एवं उच्चारण अपनी भाषा के अनुकूल बना लेती है। इससे यह सुविधा प्राप्त होती है कि कोई भी वैज्ञानिक तथ्य या विद्धान्त बड़ी आसानी

से चर्चित हो सकता है। यही नहीं, अन्य भाषा वाले जब इस भाषा के वैज्ञानिक ग्रन्थ पढ़ें तब उनकी समझ में भी आएँगे। **एलसेवियर कम्पनी** के बहुभाषी विज्ञान-कोशों की माला इस क्षेत्र की बड़ी उपलब्धि है। भारत में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने कई वर्षों के प्रयत्न से भारतीय भाषा कोश निकाला है। वह प्राय: सामान्य शब्दों का है, परन्तु अत्यन्त उपादेय है।

भारतीय भाषाा में वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य के अनुवाद के विषय में संकोच व टीका-टिप्पणी करने वाले शायद इस बात पर ध्यान नहीं देते कि संसार के विकसित व विकासशील देश अन्य देशों में होने वाली हर अच्छी वैज्ञानिक व तकनीकी रचना का अनुवाद अपनी भाषा में कराते हैं। शोध-पत्रों का भी जरूर अनुवाद कराया जाता है। इस कार्य के लिए अनुवादक-वैज्ञानिकों का पूरा दल लगा रहता है। हमारा भारत स्वतंत्र राष्ट्र है। हमारी हिन्दी भाषा स्वतन्त्र राष्ट्र की प्रमुख भाषा है। इसमें संसार की नयी वैज्ञानिक उपलब्धियों का विवरण बराबर दिया जाना चाहिए।

अनुवाद प्रणाली पर विचार करते हुए हमें दल द्वारा अनुवाद अथवा टीम-अनुवाद की उपयोगिता समझनी चाहिए। आजकल वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुसंधान तक टीम द्वारा ही किया जाता है। अनुवादकों का एक छोटा दल या छोटी समिति अनुवाद कर सकती है।

डॉ. लोकेशचन्द्र ने 'अनुवाद' पत्रिका में 'विज्ञानोदय और अनुवाद' शीर्षक के लेख में चीन की प्राचीन अनुवाद-प्रणाली पर प्रकाश डाला है। दसवीं शताब्दी में चीन के बौद्ध विद्वानों ने अनुवाद की जिस प्रक्रिया को अपनाया था उसमें नौ विशेषज्ञ होते थे और प्रत्येक प्रसंग उसमें प्रत्येक के द्वारा निरीक्षण-परीक्षण के बाद ही आगे बढ़ता था। इन नौ विशेषज्ञों का क्रम इस प्रकार था–

(1) **ई-चु** (प्रधान अनुवादक)--केन्द्र में स्थान ग्रहण करता था। वह संस्कृत की व्याख्या करता था।

(2) **चइ-ई** (अर्थ परीक्षक)-- प्रधान अनुवाद के सहित निहित अर्थ पर विचार-विमर्श करता था।

(3) **चइ-वन्** (पाठ परीक्षक)-- प्रधान अनुवादक के पाठ को ध्यानपूर्वक सुनता था और उसकी शुद्धता का ध्यान रखता था।

(4) **शु-त्जु** --संस्कृत का विद्वान होता था। वह भी पाठ को ध्यानपूर्वक सुनता था और संस्कृत का चीनी भाषा में निलप्यन्तरण करता था।

(5) **पि-शीइ** --लिप्यन्तरित शब्दों का अनुवाद चीनी भाषा में करता था।

(6) **चो-वन्**-(पाठ रचयिता)--चीनी शब्दों का वाक्यों में व्यवस्थित करता था एवं उपयुक्त वाक्यों की रचना करता था।

(7) **त्सान-ई**--पाठों की तुलना और अनुवाद की शुद्धता सुनिश्चित करता था।

(8) **खान-तिठ** (संवीक्षक)--फालतू अभिव्यक्तियों को निकाल देता और शैली को अर्थगर्भित बनाता था।

(9) **जुन्-वन्** (पुनरीक्षक)--सभा के सारे निर्णयों को अंतिम रूप देता था।

यह सूचना चीन में अनुवाद-प्रविधि को दिए गए महत्व एवं गम्भीरता का प्रमाण है। वैज्ञानिक व तकनीकी ग्रन्थ के अनुवाद के क्षेत्र में पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय का पाठ्य-पुस्तक वाला प्रयोग भी स्वीकार करने योग्य है। जैसा कि सभी जानते हैं, इस कृषि विश्वविद्यालय में कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित उपाधि-स्तरीय पाठ्यक्रम हिन्दी के माध्यम से चलता है। इसके लिए उन्हें हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी पड़ी हैं। अब भी ये तैयार की जा रही है। छपाई की सुविधा मिलने के पहले ही उन्हें किसी-किसी पाठ्य-पुस्तक का उपयोग करना पड़ता है। अतएव वे पुस्तक की कुछ साइक्लोस्टाइल प्रतियाँ तैयार कर लेते हैं। नये गम्भीर विषय की पांडुलिपियों की कुछ साइक्लोस्टाइल प्रतियाँ तैयार करके उनका परीक्षण विभिन्न प्रकार से कराया जाए और उन पर विस्तृत समीक्षा व टिप्पणी प्राप्त की जाए तो उसके बाद सम्यक् सम्पादन करते हुए उसी ग्रन्थ का मुद्रण हो सकता है। इसमें त्रुटियाँ बहुत कम रहेंगी। इसके लिए विद्वान वैज्ञानिकों और भाषाविदों का श्रम ही फलदायक हो सकता है।

वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रन्थों के अनुवाद की प्रणाली पर विचार करने के क्रम में भाषा की तकनीकी पुस्तकों के स्तर पर विचार किया जा सकता है, परन्तु यदि स्तर पर सम्बन्ध केवल प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री के आधार पर ही विचारसंगत हो तो यह अनुचित है। बिक्री एक अलग बात है तथा स्तरीय चिन्तन दूसरी बात है। शिक्षा प्रसार और उन्नति के सन्दर्भ में यह बात विचारणीय अवश्य है। आजकल अनौपचारिक शिक्षा और खुले विश्वविद्यालय की शिक्षा हर जगह चल रही है। इनके कार्यक्रम में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक पाठ्यक्रम की योजना बनाई गई, जिसका हजारों युवक-युवतियों ने स्वागत किया है। इससे भारतीय भाषा में नये वैज्ञानिक ग्रन्थों के प्रकाशन की सुविधाएँ बढ़ेंगीं।

यह तो निश्चित है कि प्रौद्योगिकी के विकास का यह युग है, परन्तु इस युग की संचेतनात्कता का पूरा भार अभी प्रौद्यौगिकी के बढ़ते चरणें से लाभ उठाने वाले औद्योगिक संस्थानों ने स्वयं को इसके दायित्व से अलग रखा है। कुछ औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने इस कार्य में अपना उचित योगदान देने की चेष्टा अवश्य की है, परन्तु इतने विशाल देश के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व बाजार को ध्यान में रखते हुए उन्हें इस दिशा में अधिक कार्य करना चाहिए। पारस्परिक स्पर्द्धा में अपने तकनीकी विशेषज्ञों की गवेषणात्मक उपलब्धियों को शैक्षिक स्तर पर संपोषित करना उनका कर्त्तव्य है। इन संस्थानों के तकनीकी विशेषज्ञ अनुवाद कार्य की शिक्षा में अपने साक्षात अनुभवों से विद्वानों की सहायता कर सकते हैं।

मुहावरे

मुहावरा मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बातचीत करना या उत्तर देना। कुछ लोग मुहावरे को 'रोजमर्रा', 'बोलचाल', 'तर्जेकलाम', या 'इस्तलाह' कहते हैं, किन्तु इनमें से कोई भी शब्द 'मुहावरे' का पूर्ण पर्यायवाची नहीं बन सका। संस्कृत वाङ्मय में मुहावरा का समानार्थक कोई शब्द नहीं पाया जाता। कुछ लोग इसके लिए 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' अथवा 'भाषा-सम्प्रदाय' का प्रयोग करते हैं। वी0एस0 आप्टे ने अपने 'इंगलिश-संस्कृत कोश' में मुहावरे के पर्यायवाची शब्दों में 'वाक्-पद्धति', 'वाक् रीति', 'वाक्-व्यवहार' और 'विशिष्ट स्वरूप' को लिखा है। पराड़कर जी ने 'वाक्-सम्प्रदाय' को मुहावरे का पर्यायवाची माना है। काका कालेलकर ने 'वाक्-प्रचार' को 'मुहावरे' के लिए 'रूढ़ि' शब्द का सुझाव दिया है। यूनानी भाषा में 'मुहावरे' को 'ईडियोमा', फ्रेंच में 'इंडियाटिस्मी' और अंग्रेजी में 'ईडिअम' कहते हैं।

मोटे तौर पर जिस सुगठित शब्द-समूह से लक्षणाजन्य और कभी-कभी व्यंजनाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है उसे मुहावरा कहते हैं। कई बार यह व्यंग्यात्मक भी होते हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में अद्‌भुत चित्रमयता आती है। मुहावरों के बिना भाषा निस्तेज, नीरस और निष्प्राण हो जाती है। मुहावरे रोजमर्रा के काम के हैं।

हिन्दी भाषा में बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है।

परिचय एवं परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से 'मुहावरे' की परिभाषा की है जिनमें से कुछेक यहाँ दी जा रही हैं–

डॉ. उदय नारायण तिवारी ने लिखा है-

'हिन्दी-उर्दू में लक्षण अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही 'मुहावरा' कहते हैं।'

'एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी' में ए0एस0 हॉर्नबी ने लिखा है कि

'मुहावरा' शब्दों का वह क्रम या समूह है जिसमें सब शब्दों का अर्थ एक साथ मिलाकर किया जाता है।

'चैम्बर्स ट्वेन्टीथ सेंचुरी डिक्शनरी' के अनुसार,

किसी भाषा की विशिष्ट अभिव्यंजना-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'ऑक्सफोर्ड कन्साइज डिक्शनरी' के अनुसार,

किसी भाषा की अभिव्यंजना के विशिष्ट रूप को 'मुहावरा' कहते हैं। एक अन्य पक्ष है कि विशिष्ट शब्दों विचित्र प्रयोगों एवं प्रयोग-सिद्ध विशिष्ट वाक्यांशों वाक्य-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'मुहावरा' की सबसे अधिक व्यापक तथा सन्तोषजनक परिभाषा डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने निम्न शब्दों में दी है–

'प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश या शब्द-समूह को मुहावरा कहते हैं।'

मुहावरे भाषा की नींव के पत्थर हैं जिस पर उसका भव्य भवन आज तक रुका हुआ है और मुहावरे ही उसकी टूट-फूट को ठीक करते हुए गर्मी, सर्दी और बरसात के प्रकोप से अब तक उसकी रक्षा करते चले आ रहे हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। उनके प्रयोग से भाषा में चित्रमयता आती है जैसे-अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना, दाँतों तले उँगली दबाना, रंगा सियार होना आदि।

मुहावरों का निर्माण

लक्षणा का प्रयोग होने से

शब्दों की तीन शक्तियां होती हैं–

(क) अभिधा,

(ख) लक्षणा, और

(ग) व्यंजना।

जब किसी शब्द या शब्द-समूह का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है, तब वहाँ उसकी अभिधा शक्ति होती है। अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति अर्थ को अभिधेयार्थ या मुख्यार्थ कहते हैं, जैसे 'सिर पर चढ़ना' का अर्थ किसी चीज को किसी स्थान से उठा कर सिर पर रखना होगा। परन्तु जब मुख्यार्थ का बोध न हो और रूढ़ि या प्रसिद्ध के कारण अथवा किसी विशेष प्रयोजन को सूचित करने के लिए, मुख्यार्थ से संबद्ध किसी अन्य अर्थ का ज्ञान हो तब जिस शक्ति के द्वारा ऐसा होता है उसे लक्षणा कहते हैं। यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित होती है। इसीलिए 'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथ ने लिखा है—

मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो यथान्योऽर्थ प्रतीयते।
रूढ़े प्रयोजनाद्वासो लक्षणा शक्तिरर्पिता।।

लक्षणा से 'सिर पर चढ़ने' का अर्थ आदर देना होगा। मम्मट ने भी 'काव्य प्रकाश' में और अधिक बोधगम्य शब्दों में उनके अभिमत का समर्थन किया है। उदाहरणार्थ, ''अंगारों पर लोटना', 'आँख मारना', 'आँखों में रात काटना', 'आग से खेलना', 'आसमान पर दीया जलाना', 'दूध-घी की नदियां बहाना', 'खून चूसना', 'चैन की बंशी बजाना', 'ठहाका लगाना', 'लम्बी बांह होना', 'विजय का डंका बजाना' और शेर बनना' आदि में लक्षणा शक्ति का प्रयोग हुआ है। इसलिए वे मुहावरे हैं। परन्तु इस सन्दर्भ से यह द्रष्टव्य है कि लक्षणा के समस्त उदाहरण मुहावरे के अन्तर्गत नहीं आ सकते। लक्षणा के केवल वही उदाहरण मुहावरों के अन्तर्गत आ सकते हैं, जो चिर अभ्यास के कारण रूढ़ा या प्रसिद्ध हो गए हैं।

व्यंजना का प्रयोग होने से

जब अभिधा और लक्षणा अपना काम करके विरत हो जाती हैं तब जिस शक्ति से शब्द-समूहों या वाक्यों के किसी अर्थ की सूचना मिलती है उसे 'व्यंजना' कहते हैं। मुहावरों में जो व्यंग्यार्थ रहता है, वह किसी एक शब्द के अर्थ के कारण नहीं बल्कि सब शब्दों के श्रृंखलित अर्थों के कारण होता है, अथवा यह कहें कि पूरे मुहावरे के अर्थों में रहता है। इस प्रकार 'सिर पर चढ़ना' मुहावरे का व्यंग्यार्थ न तो 'सिर' पर निर्भर करता है न 'चढ़ाने' पर वरन पूरे मुहावरे का

अर्थ होता है 'उच्छृंखल, अनुशासनहीन अथवा ढीठ बनना।' यह व्यंग्यार्थ अभिधेयार्थ तथा लक्षणा अभिव्यक्ति अर्थ से भिन्न होता है।

अलंकारों का प्रयोग

अनेक मुहावरे में अलंकारों का प्रयोग हुआ रहता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक मुहावरा अलंकार होता है अथवा प्रत्येक अलंकारयुक्त वाक्यांश मुहावरा होता है। नीचे कुछ मुहावरे दिए जाते हैं जिनमें अलंकारों का प्रयोग हुआ है–

(क) सादृश्यमूलक मुहावरे–लाल अंगारा होना (उपमा), पैसा ही पुरुषत्व और पुरुषत्व ही पैसा है (उपमेयोपमा), अंगार बरसाना (रूपक), सोना सोना ही है (अनन्वय), आदि।

(ख) विरोधामूलक मुहावरे–इधर-उधर करना, ऊंच-नीच देखना, दाएं-बाएं न देखना, पानी से प्यास न बुझना।

(ग) सन्निधि अथवा स्मृतिमूलक मुहावरे–चूड़ी तोड़ना, चूड़ा पहनना, दिया गुल होना, दुकान बढ़ाना, मांग-कोख से भरी-पूरी रहना, आदि।

(घ) शब्दालंकारमूलक मुहावरे अंजर-पंजर ढीले होना, आंय-वायं-शांय बकना, कच्चा-पक्का, देर-सवेर, बोरिया-बिस्तर बांधना, आदि।

कथानकों, किंवदन्तियों, धर्म-कथाओं आदि पर आधारित मुहावरे

कुछ मुहावरे प्रथाओं पर आधारित होते हैं, जैसे–बीड़ा उठाना। मध्य युग में राज-दरबारों में यह प्रथा थी कि जब कोई दुष्कर कार्य करना होता था तब सामन्तों और वीरों आदि को बुलाकर उन्हें उसके सम्बन्ध में सब बातें बता दी जाती थीं और थाली में पान रख दिया जाता था। जो वीर उस काम को करने का दायित्व अपने ऊपर लेता था, वह थाली से बीड़ा उठा लेता था। कुछ मुहावरे कहानियों पर आधारित होते थे, जैसे टेढ़ी खीर होना, ढपोरशंख होना, सोने का मृग होना, आदि। मुहावरे रोजमर्रा के काम के है।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का जातिवाचक संज्ञाओं की भाँति प्रयोग

कभी-कभी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग जातिवाचक संज्ञाओं की भांति करके मुहावरे बनाए जाते हैं, जैसे–कुंभकरण की नींद, द्रौपदी का चीर, जयचंद होना, युधिष्ठिर बनना, विभीषण होना, हरिश्चन्द्र बनना, आदि।

अस्पष्ट ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

जब मनुष्य प्रबल भावावेश में होते हैं तब उनके मुंह से कुछ अस्पष्ट ध्वनियां निकल जाती हैं, जो बाद में किसी एक अर्थ में रूढ़ हो जाती हैं और मुहावरे कहलाने लगती हैं। ऐसे कुछ भावावेशों और उनमें निकली हुई ध्वनियों के आधार पर बने हुए मुहावरों के उदाहरण निम्नांकित हैं–

(क) हर्ष में–आह-हा, वाह-वाह, आदि।

(ख) दु:ख में–आह निकल पड़ना, सी-सी करना, हाय-हाय मचाना, आदि।

(ग) क्रोध में-उंह-हूं करना, धत् तेरे की, आदि।

(घ) घृणा में–छि-छि करना, थू-थू करना।

मनुष्येतर चैतन्य सृष्टि की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) पशु-वर्ण की ध्वनियों पर आधारित

टर-टर करना, भों-भों करना, में-में करना, आदि।

(ख) पक्षी और कीट-पतंगों की ध्वनियों पर आधारित

कांव-कांव करना, कुकड़ू-कूं बोलना, भिन्ना जाना आदि।

जड़ वस्तुओं की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) कठोर वस्तुओं की संघर्ष-जन्य ध्वनियों के अनुकरण पर आधारित

फुस-फुस करना, फुस-फुस होना, आदि।

(ख) तरल पदार्थों की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित

कल-कल करना, कुल-कुल करना या होना, गड़-गड़ करना, आदि।

(ग) वायु की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित

सर-सराहट होना, सांय-सांय करना, आदि।

शारीरिक चेष्टाओं के आधार पर बने हुए मुहावरे

शारीरिक चेष्टाएं मनोभाव प्रकट करती हैं और उनके आधार पर कुछ मुहावरे बनते हैं, जैसे-छाती कूटना या पीटना, दांत पीसना, नाचने लगना, पूंछ हिलाना, पैर पटकना, मुंह बनाना, मूछों पर ताव देना, आदि।

मनोवैज्ञानिक कारणों से मुहावरों की उत्पत्ति

(क) अचानक किसी संकट में आने से सम्बन्धित मुहावरे–आठों पहर सूली पर रहना, आवे का आवा बिगड़ना, कहीं का न रहना, तकदीर फूटना,

आदि। **(ख) अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति से उद्भुत मुहावरे**–आसमान के तारे तोड़ना, कलेजा बांसों उझलना, खून की नदियां बहाना, आदि। **(ग) भाषा को अलंकृत और प्रभावोत्पादक बनाने के प्रयास से उद्भुत मुहावरे**–ईद का चांद होना, गूलर का फूल होना, सरसों-सा फूलना, आदि।

किसी शब्द की पुनरावृत्ति पर आधारित मुहावरे

अभी-अभी, छिः-छिः, थुड़ी-थुड़ी करना, छिप-छिप कर, तिल-तिल भर, थोड़ा-थोड़ा करके, आदि।

दो क्रियाओं का योग करके बनाए हुए मुहावरे–

उठना-बैठना, खाना-पीना, पढ़ाना-लिखना, आदि।

दो संज्ञाओं को मिलाकर बनाए हुए मुहावरे–

कपड़ा-लत्ता, चूल्हा-चौका, दवा-दारू, गाजर-मूली, नदी-नाला, भोजन-वस्त्र, रोजी-रोटी, आदि।

हिन्दी के एक शब्द के साथ उर्दू के दूसरे शब्द का योग करके बनाए हुए मुहावरे–

दान-दहेज, मेल मुहब्बत होना, मेल-मुलाकात रखना, दिशा-मैदान जाना, आदि।

अन्य भाषाओं से लिए गए मुहावरे

(क) संस्कृत से - अर्द्धचन्द्राकार लेकर निकालना–अर्द्धचन्द्र दत्वा निस्सारिता (पंचतंत्र)। जले पर नमक छिड़कना–क्षते क्षारमिवासह्यम। (भवभूति)

(ख) फारसी और उर्दू से - एक जान दो काबिल, काफूर हो जाना, कारूं का खजाना, कैफियत तलब करना, शीरो-शकर होना।

(ग) अंग्रेजी से - ताश के महल की तरह ढह जाना–घोड़े के आगे गाड़ी रखना– मूर्खों का स्वर्ग–

मुहावरों में शब्दों की अपरिवर्तनीयता

अनेक मुहावरे किसी-न-किसी के अनुभव पर आधारित होते हैं। अतएव यदि उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या उलटफेर किया जाता है तो उनका अनुभव-तत्त्व नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ, 'पानी जाना' एक मुहावरा है, इसके बदले में हम 'जल-जल होना' नहीं कह सकते। ऐसे ही 'गधे को बाप बनाना'

की जगह पर 'बैल को बाप बनाना' और 'मटरगश्ती करना' की जगह पर 'गेहूँगश्ती' या 'चनागश्ती' नहीं कहा जा सकता है।

लोकोक्ति

बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है। इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते।

लोकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं, जो किसी खास समूह, उम्र वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान विशेष के भूगोल, संस्कृति, भाषाओं का मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं।

कुछ उदाहरण मुहावरों के हैं–

नौ दो ग्यारह होना–रफूचक्कर होना या भाग जाना
असमंजस में पड़ना–दुविधा में पड़ना
आँखों का तारा बनना–अधिक प्रिय बनना
आसमान को छूना–अधिक प्रगति कर लेना
किस्मत का मारा होना–भाग्यहीन होना
गर्व से सीना फूल जाना–अभिमान होना
गले लगाना–स्नेह दिखाना
चैन की साँस लेना–निश्चिन्त हो जाना
जबान घिस जाना–कहते कहते थक जाना
टस से मस न होना–निश्चय पर अटल रहना
तहस नहस हो जाना–बर्बाद हो जाना
ताज्जुब होना–आश्चर्य होना
दिल बहलाना–मनोरंजन करना
भागते भूत की लंगोटी भली

वाक्य में प्रयोग

लोकोक्ति का वाक्य में ज्यों का त्यों उपयोग होता है। मुहावरे का उपयोग क्रिया के अनुसार बदल जाता है, लेकिन लोकोक्ति का प्रयोग करते समय इसे

बिना बदलाव के रखा जाता है। कभी-कभी काल के अनुसार परिवर्तन सम्भव है।

अंधा पीसे कुत्ते खायें -

प्रयोग-पालिका की किराये पर संचालित दुकानों में डीएम को अंधा पीसे कुत्ते खायें की हालत देखने को मिली।

टिप्पणी

भागते भूत की लंगोटी भली

वर्तनी (हिन्दी)

लिखने की रीति को वर्तनी या अक्षरी कहते हैं। इसे 'हिज्जे' भी कहा जाता है।

उच्चारण

वर्तनी का सीधा संबंध उच्चारण से होता है। हिन्दी में जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। यदि उच्चारण अशुद्ध होगा तो वर्तनी भी अशुद्ध होगी। प्रायः अपनी मातृभाषा या बोली के कारण तथा व्याकरण संबंधी ज्ञान की कमी के कारण उच्चारण में अशुद्धियाँ आ जाती हैं जिसके कारण वर्तनी में भी अशुद्धियाँ आ जाती हैं।

संस्कृत भाषा के मूल श्लोकों को उदधृत करते समय संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे-संयुक्त, चिह्न, विद्या, चंच्चल, विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि। किंतु यदि इन्हें भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार ही लिखा जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

कारक चिह्न

हिन्दी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदिक से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे-राम को, राम से, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपदिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे- तूने, आपने, तुमसे, उसने, उससे आदि।

सर्वनामों के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखा जाए। जैसे- उसके लिए, इसमें से।

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक-पृथक् लिखी जाएँ। जैसे- पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, खेला करेगा, घूमता रहेगा, आदि।

हाइफन (योजक चिह्न)

हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है।

द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए। राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती संवाद, देख-रेख चाल-चलन हँसी-मजाक, लेन-देन, खेलना-कूदना आदि।

सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए। जैसे- तुम-सा, राम- जैसा, चाकू-से तीखे।

तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे-भू-तत्त्व। सामान्यतः तत्पुरुष समास में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

इसी तरह यदि 'अ-नख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ निकल सकता है। अ-नति (नम्रता का अभाव) अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो)रूअपरस (एकचर्मरोग), भू-तत्त्व (पृथ्वी-तत्त्व) भूतत्त्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द हैं।

कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे-दवि-अक्षर (दव्यक्षर), दवि-अर्थक (दव्यअर्थक) आदि।

अव्यय

'तक', 'साथ', आदि अव्यय सदा पृथक् लिखे जाएँ। जैसे- यहाँ तक, आपके साथ।

आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, यहाँ वहाँ, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे या अथवा, तथा, यथा, और आदि, अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अव्यय हैं।

कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं। जैसे–अब से, तब से, यहाँ से, वहाँ से, सदा से, आदि। नियम के अनुसार अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए। जैसे आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज भर कपड़ा, देशभर, रातभर, दिनभर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्र आदि।

सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएँ। जैसे–श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि। (यदि श्री, जी आदि व्यक्तिवाचक संज्ञा के ही भाग हों तो मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे– श्रीराम, रामजी लाल, सोमयाजी आदि)

समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय जोड़कर लिखे जाएँ (यानी पृथक् नहीं लिखे जाएँ) जैसे प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अतः उसे विभक्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है। 'दस रुपए मात्र' 'मात्र दो व्यक्ति' में पदबंध की रचना है। यहाँ मात्र अलग से लिखा जाए (यानी मिलाकर नहीं लिखें)

अनुस्वर (ं), चंद्रबिन्दु (ँ)

अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिकता स्वर का नासिक्य विकार। हिन्दी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अतः हिन्दी में अनुसार (.) और अनुनासिकता चिह्न ( ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे। अनुस्वार

संस्कृत शब्दों का अनुस्वार अन्य वर्गीय वर्णों से पहले यथावत् रहेगा। जैसे संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, अंश, कंस, आदि।

संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक आदि (कण्ठ, ठण्डा, संत, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध, वाले रूप नहीं) कोष्ठक में रखे हुए रूप संस्कृत के उद्धरणों में ही मान्य होंगे। हिन्दी में बिंदी (अनुस्वार) का प्रयोग करना ही उचित होगा।

यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे वाड.मय,अन्य, चिन्मय, उन्मुख, आदि (वांमय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राह्य नहीं होंगे)

पंचम वर्ण यदि दवित्त्व रूप में (दुबारा) आय तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे- अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंत, संमेलन, संमति रूप ग्राह्य नहीं होंगे)।

अंग्रेजी, उर्दू से गृहीत शब्दों में आधे वर्ण या अनुस्वार के भ्रम को दूर करने के लिए नासिक्य व्यंजन को पूरा लिखना अच्छा रहेगा। जैसे लिमका, तनखाह, तिनका, तमगा, कमसिन आदि।

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे- अहं (अहम्), एवं (एवम्), शिवं (शिवम्),

अनुनासिकता (चंद्रबिंदु)

हिन्दी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

अनुनासिकता व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में नाक से भी हवा निकलती है। जैसे-आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

चंद्रबिंदु के बिना प्राय: अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे- हंस-हँस, अंगना- अँगना, स्वांग(स्व्अंग)- स्वाँग आदि में।

अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्र के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिह्न का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे-नहीं, में मैं, आदि। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथा स्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण अभीष्ट हो, वहाँ मोटे अक्षरों में उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए। जैसे- कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मँ, मैँ नहीँ आदि।

विसर्ग (:)

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए जैसेरू 'दुरूखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे 'दुख-सुख के साथी'।

तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। यथा–अतः, पुनः, स्वतः, प्रायः, पूर्णतः, मूलतः, अंततः, वस्तुतः, क्रमशः, आदि।

'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अतः उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अतः पुनः आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा।)

दु:साहसदुस्साहस, नि:शब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें दवित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

निः स्वार्थ मान्य है(निस्सवार्थ उचित नहीं होगा)

निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों विसर्ग वाला रूप (निरूतेज, नि:वचन, नि:चल) न लिखा जाए।

अंत:करण, अंत:पुर, प्रातः काल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

तदभवद्धेशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छः लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

प्रायदवीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे-, अतः यों है–

हल् चिह्न

इसको हल् चिह्न कहा जाए, न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत' हलंत शब्द कहा जाएगा, क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

संयुक्ताक्षर बनाने के नियम के अनुसार ड्, छ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे–चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में।

तत्सम शब्दों का प्रयोग वांछनीय हो, तब हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाए, विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। यथा– प्राक्–(प्रागैतिहास), तेजस् –(तेजस्वी), विद्युत् –(विद्युल्लता) आदि। तत्सम संबोधन में हे राजन्, हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिन्दी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिन शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे– महान् विद्वान आदि (क्योंकि हिन्दी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वानों' जैसे रूप प्रचलित हो चुके हैं।

व्याकरण ग्रंथों में व्यंजन संधि समझाते हुए केवल उतने ही शब्द दिए जाएँ, जो शब्द रचना को समझने के लिए आवश्यक हों (उत्‍नयन=उन्नयन, उत्‍लास=उल्लास) या अर्थ की दृष्टि से उपयोगी हों (जगदीश, जगन्माता, जगज्जननी)।

हिन्दी में हृदयंगम (हृदयम्‍गम), संचित आदि शब्दों का संधि-विच्छेद समझाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी तरह 'साक्षात्कार', 'जगदीश', 'षट्कोण', जैसे शब्दों के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो, तभी उनकी संधि का हवाला दिया जाए। हिन्दी में इन्हें स्वतंत्र शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही अच्छा होगा।

स्वर परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अतः 'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा' को 'चिह्न' 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमशः गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।

जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है।- अर्द्ध-अर्ध, तत्त्व-तत्त्व आदि।

'ए','औ',का प्रयोग

हिन्दी में ऐ, औ का प्रयोग दो प्रकार के उच्चारण को व्यक्त करने के लिए होता है। पहले प्रकार का उच्चारण 'है', और 'और', आदि में मूल स्वरों की तरह होने लगा है, जबकि दूसरे प्रकार का उच्चारण 'गवैया', 'कौआ' आदि शब्दों में संध्यक्षरों के रूप में आज भी सुरक्षित है। दोनों ही प्रकार के उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए इन्हीं चिह्नों(ऐ, औ) का प्रयोग किया जाए। 'गवय्या', कव्वा', आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है। अन्य उदाहरण हैं– भैया, सैयद, तैयार, हौवा, आदि।

दक्षिण के अय्यर, नय्यर, रामय्या, आदि व्यक्ति नामों को हिन्दी उच्चारण के अनुसार ऐयर, नैयर, रामैया आदि न लिखा जाए, क्योंकि मूल भाषा में इसका उच्चारण भिन्न है।

अव्वल, कव्वाल, कव्वाली जैसे शब्द प्रचलित हैं। इन्हें लेखन में यथावत रखा जाए।

संस्कृत के तत्सम शब्द 'शय्या' को 'शैया' न लिखा जाए।

पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

पूर्वकालिन कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे – मिलाकर, खा़पीकर, रो़रोकर आदि।

कऱ्कर से 'करके' और करा़ कर से 'कराके' बनेगा।

वाला

क्रिया रूपों में 'करने वाला' 'आने वाला' 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे - मैं घर जाने वाला हूँ जाने वाले लोग।

योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला' 'टोपीवाला', 'दिलवाला', दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो नियम 2 के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा, अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली, बात आदि में वाला निर्देशक शब्द है। अतः इसे अलग ही लिखा जाए।

इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे– गाँववाला, गाँव वाला मकान,

श्रुतिमूलक 'य', 'व'

जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए– किये, नई– नयी, हुआरू हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे– दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिये हुए, नई दिल्ली आदि।

जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्त्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

जैसे– स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)।

विदेशी ध्वनियाँ

उर्दू शब्द-

उर्दू से आए अरबी -फारसी मूलक वे शब्द जो हिन्दी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिन्दी ध्वनियों में रुपांतर हो चुका है, हिन्दी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। जैसे– कलम दाग आदि (कलम, दाग)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो, वहाँ उनके हिन्दी में प्रचलित रुपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ। जैसे–खाना- खघना, राज- राज फन- फन आदि।

अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिन्दी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ) जहाँ तक अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त–सितंबर, 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यंतरण के संबंध में की गई सिफारिश उल्लेखनीय है। उसमें कहा गया है कि अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत–चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिक–से अधिक निकट होना चाहिए।

द्विधा रूप वर्तनी

हिन्दी में कुछ प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी के दो–दो रूप बराबर चल रहे हैं। विद्वत्समाज में दोनों रुपों की एक सी मान्यता है। कुछ उदाहरण हैं– गरदनध्गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ/बर्फ, बिलकुल/बिल्कुल, वापस/वापिस, बीमारी/बिमारी, दुकान/द्धुकान, आखिरकार/आखीरकार, चिहन/चिन्ह आदि।

अन्य नियम

शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

फुलस्टॉप (पूर्ण विराम) को छोड़कर शेष विराममादि चिह्न वही ग्रहण कर लिये गए हैं अंग्रेजी में प्रचलित हैं। यथा– (हाइफन/योजक चिह्न), (डैश/निर्देशक

चिह्न), (कोलन एंड डैश/विवरण चिह्न) (कोमा/अल्पविराम), (सेमीकोलन/अर्धविराम),रू (कोलन/उपविराम), ? (क्वश्चन मार्क/प्रश्न चिह्न) ! (साइन ऑफ इंटेरोगेशन/विस्मयसूचक चिह्न), (अपोस्ट्राफी/ऊर्ध्व अल्प विराम), ' ' (डबल इंवर्टेड कोमाज/उद्धारणचिह्न), () (तीनों कोष्ठक),

(...लोप चिह्न), (संक्षेपसूचक चिह्न) (हंसपद)।

विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया गया है। पर दोनों में यह अंतर रखा गया है कि विसर्ग वर्ण से सटाकर और कोलन शब्द से कुछ दूरी पर रहे।

पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का ही प्रयोग किया जाए। वाक्य के अंत में बिंदु (अंग्रेजी फुलस्टॉप) का नहीं।

मानक वर्तनी के प्रयोग का उदाहरण

हिन्दी एक विकासशील भाषा है। संघ की राजभाषा घोषित हो जाने के बाद यह शनैः-शनैः अखिल भारतीय रूप ग्रहण कर रही है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के संपर्क में आकर, उनसे बहुत कुछ ग्रहण करके और हिन्दीतर भाषियों द्वारा प्रयुक्त होते-होते उसका यथासमय एक सर्वसम्मत अखिल भारतीय रूप विकसित होगा-ऐसी आशा है। यद्यपि यह सही है कि एक विस्तृत भू-खंड में और बहुभाषी समाज के बीच व्यव्रहृत किसी भी विकासशील भाषा के उच्चारणगत गठन में अनेकरूपता मिलना स्वाभाविक है, उसे व्याकरण के कठोर नियमों में जकड़ा नहीं जा सकता उसके प्रयोगकर्ताओं को किसी ऐसे शब्द को, जिसके दो या अधिक समानांतर रूप प्रचलित हो चुके हों, एक विशेष रूप में प्रयुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ऐसे शब्दारूपों के बारे में किसी विशेषज्ञ समिति द्वारा निर्णय दे देने के बाद भी उनकी ग्राह्यता-अग्राह्यता के विषय में मतभेद बना ही रहता है, फिर भी प्रथमतः कम-से-कम लेखन, टंकन और मुद्रण के क्षेत्र में तो हिन्दी भाषा में एकरूपता और मानकीकरण की तत्काल आवश्यकता है। क्या ऐसा करना आज के यंत्रधीन जीवन की अनिवार्यता नहीं है? भाषा विषयक कठोर नियम बना देने से उनकी स्वीकार्यता तो संदेहास्पद हो जाती है, साथ ही भाषा के स्वाभाविक विकास में भी अवरोध आने का थोड़ा सा डर रहता है। फलतः भाषा गतिशील, जीवंत और समयानुरूप नहीं रह पाती। हिन्दी वर्णमाला के मानकीकरण में और हिन्दी वर्तनी के एकरूपता विषयक नियम निर्धारित करते समय इन सब तथ्यों को ध्यान में रखा गया है और

इसीलिए, जहाँ तक बन पड़ा है, काफी हद तक उदारतापूर्ण नीति अपनाई गई है।

हिन्दी के संख्यावाचक शब्दों की एकरूपता

हिन्दी प्रदेशों में संख्यावाचक शब्दों के उच्चारण और लेखन में प्रायः एकरूपता का अभाव दिखाई देता है। इसलिए एक से सौ तक सभी संख्यावाचक शब्दों पर विचार करने के बाद इनका जो मानक रूप स्वीकृत हुआ, वह इस प्रकार है– एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनतालीस, चालीस, इकतालीस, बयालीस, तैंतालीस, चौवालीस, पैंतालीस, छियालीस, सैंतालीस, अड़तालीस, उनचास, पचास, इक्यावन, बावन, तिरपन, चौवन, पचपन, छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठ, चौंसठ, पैंसठ, छियासठ, सड़सठ, अड़सठ, उनहत्तर, सत्तर, इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर, पचहत्तर, छिहत्तर, सतहत्तर, अठहत्तर, उन्यासी, अस्सी, इक्यासी, बयासी, तिरासी, चौरासी, पचासी, छियासी, सत्तासी, अट्ठासी, नवासी, नब्बे, इक्यानबे, बानबे, तिरानबे, चौरानबे, पंचानबे, छियानबे, सत्तानबे, अट्ठानबे, निन्यानबे, सौ।

क्रमसूचक संख्याएँ

पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ (प्रथम द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम)।

भिन्नसूचक संख्याएँ

एक चौथाई, आधा, पौन, सवा(सवा एक नहीं), डेढ़ (साढ़े एक नहीं), पौने दो, सवा दो, ढाई, (साढ़े दो नहीं), पौने तीन, सवा तीन, साढ़े तीन, आदि।

मानक वर्तनी

भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने सन् 1983 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा पूर्व में किए हिन्दी भाषा की लिपि व वर्तनी के मानकीकरण संबंधी प्रयासों का समन्वित रूप 'देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' के रूप

में प्रस्तुत किया। इन्होंने वर्तनी के सम्बन्ध में कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है–

खड़ी पाई वाले व्यंजन

खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्त रूप परंपरागत तरीके से खड़ी पाई को हटाकर ही बनाए जाएँ। यथा–

ख्याति, लग्न, विग्न	व्यास
कच्चा, छज्जा	श्लोक
नगण्य	राष्ट्रीय
कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास	स्वीकृत
प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य	यक्ष्मा
शय्या	त्र्यंबक

अन्य व्यंजन

क और फ/फ के संयुक्ताक्षर पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, पक्का दत्फर की तरह।

ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा–

अशुद्ध	शुद्ध
वाङमय	वाङ्मय
विदया	विद्या
चिहन	चिह्न

संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। यथा– प्रकार, धर्म, राष्ट्र

श्र का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे श के साथ र मिश्रित करके नहीं लिखा जाएगा। त़ र के संयुक्त रूप के लिए पहले त्र को मानक माना गया है। इसी तरह अन्य संयुक्त व्यंजनों पर भी यही नियम लागू होंगे। जैसे– क्र, प्र, ब्र, स्र, ह्र आदि

हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व। यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**
कुटटिम	कुट्टिम
चिटठियाँ	चिट्ठियाँ?

अशुद्धियाँ

प्रायः लोग जिन शब्दों के उच्चारण एवं वर्तनी में अशुद्धियाँ करते हैं, उन शब्दों के अशुद्ध और शुद्ध रूप आगे तालिका में दिये जा रहे हैं–

स्वर संबंधी अशुद्धियाँ

'अ' 'आ' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अकाश	आकाश
अगामी	आगामी
अजमाइश	आजमाइश
अन्त्यक्षरी	अन्त्याक्षरी
अर्यावर्त	आर्यावर्त
अलपीन	आलपीन
आजकाल	आजकल
ढाकना	ढकना
चहरदीवारी	चहारदीवारी
हस्ताक्षेप	हस्तक्षेप
हाथिनी	हथिनी

'इ' 'ई' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
आशिर्वाद	आशीर्वाद
इश्वर	ईश्वर
दिपिका	दीपिका
लिजिये	लीजिये
हानी	हानि
बाल्मीकी	बाल्मीकि
शिर्षक	शीर्षक
कोटी	कोटि
गीनना	गिनना

‘उ’ ‘ऊ’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अनुदित	अनूदित
आशिर्वाद	आशीर्वाद
आशिर्वाद	आशीर्वाद
आशिर्वाद	आशीर्वाद
आशिर्वाद	आशीर्वाद
आशिर्वाद	आशीर्वाद

‘ऋ’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अनुग्रहीत	अनुगृहीत
रिगवेद	ऋग्वेद
त्रितीय	तृतीय
रितु	ऋतु
पैत्रिक	पैतृक

‘ए’ ‘ऐ’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
जेसा	जैसा
पेसा	पैसा
फैंकना	फेंकना
सैना	सेना
भाषाएं	भाषाएँ
सेनिक	सैनिक

‘ओ’ ‘औ’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अलोकिक	अलौकिक
ओद्योगिक	औद्योगिक
लौहार	लोहार
त्योहार	त्योहार
ओरत	औरत
प्रोढ़	प्रौढ़

अनुस्वर (ं), चंद्रबिन्दु (ँ) संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
आंख	आँख
दांत	दाँत
बांह	बाँह
मुंह	मुँह
गूंगा	गूँगा
टांगना	टाँगना

विसर्ग (:) संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
प्रातकाल	प्रात:काल
प्राय	प्राय:
निस्वार्थ	नि:स्वार्थ
दुख	दु:ख
निशुल्क	नि:शुल्क

व्यंजन संबंधी अशुद्धियाँ

'छ' 'क्ष' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
आकांछा	आकांक्षा
नछत्र	नक्षत्र
संछेप	संक्षेप
रच्छा	रक्षा
छीण	क्षीण

'ज' 'य' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
अजोधा	अयोध्या
जाचना	याचना
जमुना	यमुना
जदि	यदि
जोग	योग

‘ट’ ‘ठ’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
कनिष्ट	कनिष्ठ
घनिष्ट	घनिष्ठ
प्रविष्ट	प्रविष्ठ
इकट्टा	इकट्ठा
विशिष्ठ	विशिष्ट

‘ड’ ‘ड़’ ‘ढ’ ‘ढ़’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
कन्नड	कन्नड़
पेड	पेड़
षड़्यंत्र	षड्यंत्र
सीड़ियां	सीढ़ियां
पडता	पड़ता

‘ण’ ‘न’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अर्चणा	अर्चना
श्रवन	श्रवण
विस्मरन	विस्मरण
प्रनाम	प्रणाम
मरन	मरण

‘ब’ ‘व’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
नबाब	नवाब
बिकट	विकट
पूर्ब	पूर्व
धोवी	धोबी
कामयावी	कामयाबी

‘ङ’ ‘थ्ं’ ‘ण’ ‘न’ ‘म’ संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अन्ग	अंग
कन्ठ	कण्ठ

चन्चल	चंचल
पन्डित	पंडित
झन्डा	झण्डा

'य' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
अंतर्ध्यान	अंतर्धान
सामर्थ	सामर्थ्य
मानवर	मान्यवर
कवित्री	कवयित्री
गृहस्थ्य	गृहस्थ

'र' 'ड़' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
उमरना	उमड़ना
परत्येक	प्रत्येक
बृज	ब्रज
पिंजड़ा	पिंजरा
मिरच	मिर्च

'श' 'ष' श्स' संबंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	**शुद्ध**
उत्कर्श	उत्कर्ष
मनुश्य	मनुष्य
दुश्कर्म	दुष्कर्म
अमावश्या	अमावस्या
संसोधित	संशोधित

11

व्यावहारिक अनुवाद अभ्यास

जब कभी दो अलग–अलग भाषा बोलने वाले व्यक्ति आपस में मिलें और वार्तालाप करें तो वह एक– दूसरे की बात से तब तक परिचित नहीं होंगे जब तक उन्हें कोई तीसरी भाषा नहीं आती जिनका ज्ञान दोनों को हो। वह अपनी भाषा में बात को सोचेगा और तीसरी भाषा में अनुवाद करके बोलेगा, जिसे दूसरा व्यक्ति समझा सकता है और दोनों के बीच यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी। इसे अनुवाद प्रक्रिया का व्यावहारिक पक्ष कहते हैं।

परन्तु जब दोनों ही न तो एक–दूसरे की भाषा समझते हैं और न कोई तीसरी ऐसी भाषा जानते हैं, जिसमें दोनों आपस में बात कर सकें। यह स्थिति अनुवाद का मौलिक व्यवहार का पक्ष है, जिसका समाधान परस्पर इशारों द्वारा ही हो सकता है, जिसमें दोनों व्यक्तियों को एक–दूसरे के इशारों का अनुवाद करना पड़ता है। यदि एक को भूख लगी है और वह दूसरे से भोजन माँगता है तो वह भोजन करे के उस ढंग का संकेत करेगा, जो खाना खाने का ढंग उसकी संस्कृति में साम्य रखता है तो दूसरे को इसकी बोली या संकेतों का अनुवाद करने में देर नहीं लगेगी। इसी प्रकार से और बातों के बारे में भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह स्थिति उन दो गूँगे–बहरे लोगों की–सी होती है, जो कोई भाषा भी नहीं जानते। चूँकि गूँगे–बहरे लोग भी आपसे में बातें कर लेते हैं तथा एक–दूसरे के मन्तव्यों को समझ भी लेते हैं। अभ्यास से यह सम्भव हो जाता हैं कि कार्य संकेतों के अनुवाद द्वारा होता है। बच्चा जब बोल नहीं पाता उसकी बातों को भी

इसी अनुवाद प्रक्रिया से समझ लिया जाता है। कभी आदिम काल में भी अनुवाद क्रिया की ऐसी ही गति रही होगी। वस्तुतः ऐसे ही व्यवहार से शब्दों और सुरों का जन्म हुआ होगा और भाषाएँ बनने की भूमिका बनी होगी।

मनुष्य के जीवन में पृथक अनुवाद कार्य उस व्यावहारिक स्थिति से उत्पन्न हुआ, जो किसी क्रिया को करने या किसी वस्तु के प्रयोग में लाने पर बनी, उसे करते हुए देखकर और प्रयोग करके जो अनुभूति बनीं, उसी अनुभूति के भावानुवाद से उस वस्तु और क्रिया का नामकरण किया गया। भौगोलिक भेद से यह अनुभूतियाँ मनुष्य के मन में अलग-अलग भावातिरेक की रही होंगी, तभी विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई, अलग-अलग जगहों पर एक प्रकार की क्रिया और समान प्रकार की वस्तु के नाम भी अलग-अलग रखे गए।

भावातिरेक वास्तव में मनुष्य का समग्र व्यवहार ही है। जब काई व्यक्ति दूसरे से बात करता है, तो उसकी बात सुनने वाला दूसरा मनुष्य बोलने वाले की भाषा का अनुवाद, उसके बोलने के भाव-प्रसंग में अविलम्ब कर लेता है और वह सुनी हुई बात का उत्तर नहीं देता अपितु उसके भावानुवाद का उत्तर देता है। दूसरा व्यक्ति भी उसके उत्तर के भावानुवाद का ही अंगीकार करता है। ऐसी स्थिति में बोली हुई बात के अर्थ भावानुवादी ही होते हैं। अतः मनुष्य यदि कुछ बोलता है तो उसकी वाणी की भाषा का मर्म उसकी भावानुवादित भाषा में होता है, जब वह लिखता है तो उसकी लेखनी से प्रादुर्भूत भाषा का मर्म उसके उन शब्दों में होता है, जिनका वह लेखन के लिये चयन करता है, उस शैली में होता है, जो उसके भावानुकूल शब्दों को पंक्तिबद्ध करती है।

अब हम कह सकते हैं कि भावसिद्ध ही अनुवाद कला भी आधारभूमि है। बाह्यापेक्षी भावपक्ष, अन्तरानुभूतिक वैचारिक उद्वेलन-मंथन में जिस प्रकार भाषा के चित्रों का निर्माण करता है, उसी प्रकार सृष्टि के भौतिक-अभौतिक, लौकिक-अलौकिक भेदों के प्रति जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति को ज्ञान प्रदान करता है। दृश्य और अदृश्य के गीत गाने को उत्फुल्ल करता है, दार्शनिक परिकल्पनाओं में खोए रहने को भी विवश करता है। भाषाएँ और भौगोलिक स्थितियाँ भले ही मनुष्य जाति में वैभिन्य की प्रतीति देती दिखाई देती हों, लेकिन उसकी मानसिक उद्बुद्धि और व्यावहारिकता की प्रवाह प्रकृति समान ही है और चिन्तन प्रवृत्ति में भी कोई भिन्नता नहीं है। अनुवाद-संक्रमण द्वारा मानव जाति सदा से इसका निर्वाह करती रही है। इसी कारण मनुष्य जीवन के प्रत्येक चरण पर अनुवाद का क्रम चलता रहा है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष के चिन्तन में एक-दूसरे से जुड़ने को सचेष्ट रहा है। कभी उसकी ये चेष्टाएँ धार्मिक दर्शन के उपदेशों में, कभी धार्मिक आक्रमणों में, कभी व्यापारिक स्वार्थों में सामने आई हैं। शक्ति और सम्पन्नता का लोभ-लालच सांसारिक व्यवहारों की धुरी है, और भाषाओं की विभिन्नता में अनुवाद इसे गति प्रदान करते है। हमारा नित्य प्रति का जीवन चूँकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए सांसारिक सहयोग व्यवहार से परिचालित रहता आया है, रहता है तथा रहता रहेगा, अतः अनुवाद उसमें उसे स्पष्टता देने के रूप में संश्लिष्ट है।

चूँकि मनुष्य का व्यवहार भावाधीन देखा जाता है इसलिए यदि प्रकारान्तर की दृष्टि से अनुवाद क्रिया को भी भावरंजित कहा जाए तो गलत नहीं होगा। भाव मूल रूप में स्वहित, स्वरुचि, स्वसोच तथा परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप प्रकट होते हैं। अतः मनुष्य की इस क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक कार्य पद्धति को ही उसकी व्यावहारिकता कहा जा सकता है। यह तत्त्व उसकी जीवनचर्या को संचालित करता है। अतः वह दूसरों के प्रति उसकी रुचि-अभिरुचि, उसके संपर्कों तथा संबद्धों के साथ संश्लिष्ट है। अनुवाद उन्हीं तन्तुओं का प्रदर्शन है, जिनसे यह संश्लिष्ट रूप धारण करती है, चाहे वह वाणी के रूप में हो, भाषा के रूप में हो या क्रिया तथा परिवेश के रूप में।

प्रस्तुत किए गए प्रसंग से हमारा तात्पर्य सिर्फ उसी वाणी और साहित्य से है, जो हमें भाषाओं के माध्यम से मिलता है। हम अपने नित्य-प्रति के सब व्यवहारों को प्रकट करने के लिए भाषाओं की ही सहायता लेते हैं। इनका रचना रूप किसी न किसी प्रकार का साहित्य बनकर सामने आता है, जिसमें आवश्यकता और प्रसंगानुरूप अनुवादों द्वारा विभिन्न भाषा-भाषी अपने व्यवहारों का परिचालन भी करते हैं और मानव जाति के व्यवहारों से संज्ञानित भी होते हैं। इसी को अनुवाद का व्यावहारिक पक्ष कहते हैं।

अनुवाद अभ्यास

अनुवाद कला में सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास ही किसी अनुवादक को पारंगत कर सकता है, परन्तु कभी-कभी अभ्यास भी किन्हीं अनुचित अनुवाद क्रियाओं का हो जाता है, इसलिये पहले यह समझ लेना चाहिए कि अनुवाद कार्य करने वाले विद्वानों को किन-किन दोषों से बचना तथा किन-किन गुणों को प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए। अनुवादशास्त्रियों ने अनुवादक में निम्नांकित गुणों का होना आवश्यक बताया है—

(1) पूर्वाग्रह रहित होना–अनुवाद कार्य के लिये प्रयोजित रचना या उसके विषय के प्रति यदि अनुवादक किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों से युक्त हो, जैसा कि प्रायः होता है, तो वह रचना मूल रचनाकार की रचना में अभिव्यकित दोष का सृजन कर देता है। अनुवाद कार्य में यह दोष सबसे बड़ा है। अनुवादक के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वह अनुवाद करते समय अभिव्यक्ति में स्वतन्त्र नहीं है, अतः उसे स्वयं को मूल रचना के भावों तथा विचारों को दूसरी भाषा में अन्तरण करने के अलावा उसे और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। यह सत्य है कि कभी–कभी वह रचना के विषय सम्बन्धी ज्ञान में मूल रचनाकार के ज्ञान से अधिक ज्ञान रखता हो तथा यह भी सम्भव है कि कभी–कभी अनुवादक मूल रचना के अनेक भाव विचार उसके भाव–विचारों से मेल नहीं खाते हैं अर्थात् मूल रचना के भाव–विचारों के प्रति वह किन्हीं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है या विषय सम्बन्धी उसकी पूर्वाग्रही धारणा सिद्धान्त–संकल्पना में मूल रचनाकार की संकल्पना में, अपनी धारणा को प्रच्छन्न रूप से अनुबद्ध हुई समझ लेता है, तो वह अनुवाद करते समय ऐसी धारणा के स्वरूप में परिवर्तन कर देगा। इसके उदाहरण प्रायः हम संसार के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' के अनुवादों में देख सकते हैं जिनमें अनुवादकों ने गीता के कुछ मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रायः विशेषण प्रतिबद्धित कर दिया है। इसका एक उदाहरण हम गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित गीता के अनुवाद में से ही देना उचित समझते हैं––

मत्कर्म कृन्मत्परमा वर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः समापेति पाण्डव॥ 55॥
(अध्याय)

इस श्लोक का अर्थ अनुवादक ने इस प्रकार किया है––

हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये, सब कुछ मेरा समझते हुए, **यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों** को करने वाला है और मेरे परायण है अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परगति मानकर मुझे प्राप्त करने के लिए तत्पर है, अर्थात् मेरा नाम, गुण प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान और पठन–पाठन का प्रेम सहित निष्काम भाव से निरन्तर अभ्यास करने वाला है और आसक्ति रहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों के प्रति उसमें स्नेह नहीं है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैर–भाव से रहित है, ऐसा वह अनन्य भक्ति वाला पुरुष ही मुझे प्राप्त कर सकता है।

यह श्लोक अनुवादक की व्याख्या से युक्त है। प्रसंग के अनुसार यह व्याख्या पूर्व रूप से उपयुक्त मानी जा सकती है, परन्तु इसमें 'कर्मों' के साथ 'यक्ष, दान, तप, आदि कर्त्तव्य' शब्दों का उपयोग अनुवाद क्रिया के सैद्धान्तिक पक्ष के अनुकूल नहीं है। इसके बाद का अर्थ भी व्याख्यापरक है। यदि किसी स्थिति में अनुवादक को व्याख्या करनी हो तो मूल रचना के अन्य प्रसंगों का अध्ययन कर उन्हीं प्रसंगों का उल्लेख पाद टिप्पणी के रूप में करना अधिक उपयुक्त हो सकता है, परन्तु यह कार्य अनुवाद की स्वभावजन्य इच्छा के कारण होता है, (भले ही प्रस्तुत उदाहरण में पूर्वाग्रह नहीं भी हो, परन्तु अनुवादक का स्वज्ञान के प्रकाशन का मोह तो है ही) इसे दूर करने का सिर्फ एक ही उपाय अभ्यास माना जाता है। अभ्यास से ही अनुवादक अपनी किसी ऐसी बलवती इच्छा को रोक सकता है, अन्यथा वह इस तरह से प्रवृत्त अवश्य हो जायेगा। कार्ल मार्क्स के शिष्यों द्वारा उसके दर्शन का अनुवाद इसी परम्परा से किया है और उसके क्षेत्र को बढ़ावा दिया है। इसी तरह के अनुवाद दोष अन्य कई यूरोपियन समाज वैज्ञानिकों के दर्शन सिद्धान्तों के अनुवाद में पाये जाते हैं।

(2) स्त्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा का ज्ञान—अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा में किया जाता है। अत: अनुवादक के लिये दोनों--स्त्रोत और लक्ष्य भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक नहीं अपितु अनिवार्य भी है। परन्तु अनुवादशास्त्री इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दोनों भाषाओं का ज्ञान ही समस्या का समाधान नहीं है। अनुवाद कार्य की कठिनता के सम्बन्ध में स्वतन्त्र भारत के प्रथम **राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** का मन्तव्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। उनके शब्दों में, "एक प्रकार से मौलिक लेख लिखना जितना आसान है, किसी दूसरी भाषा से अनुवाद करना उतना ही कठिन है। मेरा निजी अनुभव है कि मैं अंग्रेजी से हिन्दी में और हिन्दी से अंग्रेजी में उतनी आसानी से अनुवाद नहीं कर सकता **जितनी आसानी से बोल या लिख सकता हूँ।** गहन विषयों का अनुवाद तो और भी अधिक मुश्किल हो जाता है। अनुवादक को केवल उन दोनों भाषाओं का जिनमें से कि एक से दूसरी में अनुवाद करना है, अच्छा ज्ञान होना ही जरूरी नहीं बल्कि उस विषय पर अच्छा अधिकार भी होना चाहिए जिस विषय से वह अनुवाद किये जाने वाला ग्रन्थ सम्बन्ध रखता है। इसलिए किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि अगर वह दो भाषाओं से सिर्फ अवगत है तो वह एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कर सकता है।"

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के इस उद्धरण से यह बात प्रकट होती है कि प्रायः विद्वान लोग भी जितनी आसानी से वह स्रोत या लक्ष्य-भाषा में स्वाभाविक रूप से कोई विचार प्रकट कर सकते हैं, उनके लिए भी अनुवाद कार्य में ऐसा कर पाना कठिन होता है। इसका भी मूल कारण अभ्यास का अभाव ही होता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के ही अनुसार अनुवादक का स्रोत तथा लक्ष्य भाषानुवाद विद्व-ज्ञान से ही काम नहीं चलता, वरन् उसे अपेक्षित अनुवाद के विषय का भी ज्ञान होना आवश्यक है। यह गुण भी अनुवादक द्वारा विषय सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के अभ्यास से सम्भव है। आजकल अनेक विद्वान अनुवाद तो करते हैं, परन्तु उन्हें मूल रचना के विषय का ज्ञान नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि विषय के ज्ञान से स्रोत कृति में प्रयुक्त अनेक सन्दर्भों को अनुवादक अनूदित कृति में विषय सन्दर्भों की पृष्ठभूमि के आधार पर अनुवाद करने में सक्षम हो सकता है।

(3) भाषा की प्रकृति का ज्ञान--वस्तुतः स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा के शब्दों के अर्थ की सम्यक् जानकारी से काम नहीं चल सकता। अनुवाद को सफल बनाने के लिए शब्दों की प्रकृति और उनके परिवेश की सूक्ष्म और यथार्थ जानकारी का होना अत्यंत जरूरी है। अन्यथा अनुवादक स्रोत-भाषा के साथ न्याय कर ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ--अशोक के लिये ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त **'देवाना प्रियः'** संस्कृत शब्द का प्रयोग किया गया है। कई अनुवादक इस शब्द का प्रयोग ब्राह्मणों के दुर्वचन रूप में मानते हैं और इसी सन्दर्भ को लेकर वह अशोक को वैदिक धर्म का विद्वेषी सिद्ध करने के लिए **'देवानां प्रियः'** शब्द का अनुवाद करते हैं। यह अनुवादकों के विषय ज्ञान की कमी को तो उजागर करता है ही साथ ही, संस्कृत भाषा की प्रकृति से अपरिचय का भी द्योतक है। यही स्थिति अंग्रेजी के यू (You) और डियर (Dear) शब्दों की है। यह दोनों शब्द छोटों-बड़ों और समान स्तर तथा आयु के व्यक्तियों के लिए एक समान प्रयोग किए जाते हैं। अनुवादक को देखना होगा कि कहाँ यू का अनुवाद तू करना है, कहाँ तुम और कहाँ आप। इसी प्रकार डियर का अनुवाद कहाँ प्रिय, कहाँ सामान्य और कहाँ आदरणीय करना उपयुक्त होगा--अनुवादक के लिए यह देखना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों--स्रोत और लक्ष्य-भाषाओं की जानकारी का अर्थ यह कदापि नहीं कि केवल शब्द कोश में निहित अर्थ की अथवा व्याकरणिक रूप की जानकारी होनी चाहिए। इसे तो सिर्फ सतही ज्ञान ही कहा जाएगा। सत्य तो यह है कि दोनों भाषाओं की प्रकृति, परम्परा और उनके

सांस्कृतिक परिवेश के मर्म को बिना समझे तथा जाने अनुवादक अनुवाद की गहराई में जा ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ--नर्स के लिए प्रयुक्त 'मिडवाइफ' शब्द का हिन्दी में 'आधी पत्नी' अनुवाद तो कभी सही नहीं माना जायेगा।

वस्तुतः स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की प्रकृति और परम्पराओं का ज्ञान इन भाषाओं के निरन्तर सम्पर्क-अभ्यास से ही हो सकता है। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में निरन्तर नये शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं। अनुवादक को यदि अंग्रेजी समाचार-पत्रों के प्रति लगाव नहीं होता और वह अपनी विद्वता के आधार पर ही अनुवाद में प्रवृत्त होता है, तो यह उसकी भूल है। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में प्रायः नई-नई तरह की वाक्स रचनाएं भी देखी जाती हैं। बाद में जिनका अनुकरण अंग्रेजी के विद्वान भी अपनी पुस्तकों में करते हैं। प्रायः अंग्रेजी के कुछ शब्दों के प्रयोग तो इस तरह किये जाने लगे हैं, जिन्हें हम सदा से एकार्थक रूप में ही जानते हैं। इस तरह के शब्दों का ज्ञान तथा प्रयोग सिर्फ अभ्यास के द्वारा ही किया जा सकता है।

(4) सामाजिक संस्कृति का ज्ञान--इसके अतिरिक्त अनुवाद के लिये दोनों--स्रोत और लक्ष्य-भाषाओं के वक्ताओं की सामाजिक मर्यादाओं और परम्पराओं का ज्ञान होना भी अत्यंत आवश्यक है। उदाहरणार्थ किसी अपरिचित अथवा सम्मानित महिला के लिये अंग्रेजी भाषा के 'डियर मैडम' का हिन्दी अनुवाद 'प्रिय श्रीमती जी' सही नहीं होगा। भारतीय समाज में सामान्यतया महिलाओं के विशेष आदर देने की प्रथा एवं परम्परा हैं अतः यहाँ 'डियर मैडम' का सही अनुवाद 'आदरणीया महोदया' या 'सुश्री' ही होगा।

(5) सन्दर्भ का ज्ञान--अनुवादक के लिये सन्दर्भ और प्रसंग की जानकारी का होना भी सर्वथा अपेक्षित है। इसके बिना अनुवाद कार्य में न्याय हो ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के सन (Son) का अर्थ सभी स्थानों पर पुत्र ही करना उचित नहीं होगा। 'सन् ऑफ इण्डिया' का सही अनुवाद 'भारत का सपूत' होगा न कि भारत को पुत्र। इसी तरह कहीं आत्मज, कहीं बेटा, लड़का तो कहीं कुलदीपक का प्रयोग किया जाएगा। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का यह कथन बड़ा ही उपयुक्त है--**"शब्द भाव अथवा विचार की पोशाक नहीं है, जो इच्छानुसार बदली जा सके अर्थात् पैंट-कमीज के स्थान पर धोती-कुर्ता पहना दिया जाये।"** यह तो भाव या विचार का मांस अथवा उसकी त्वचा है। अतः भाव विचार के अनुकूल एवं अनुरूप शब्दों के प्रयोग से ही अनुवाद सफल और सजीव बन सकता है।

इसी सन्दर्भ में उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवादक फिट्ज जेराल्ड के अनुवाद कार्य की समीक्षा करते हुए डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने बड़ा ही स्टीक वक्तव्य दिया है और कहा है कि--"यदि अनुवाद का अर्थ यह है कि एक भाषा के शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा का शब्द लाकर रख दिया जाये तो फिट्ज जेराल्ड सफल अनुवादक नहीं है और अगर अनुवाद का अर्थ यह है कि मूलभावों को दूसरी भाषा के माध्यम से जाग्रत किया जाये तो फिट्ज जेराल्ड आदर्श अनुवादक हैं।" वस्तुतः यदि अनुवाद मूल भाषा में अभिव्यक्त संवेदना को सम्प्रेष्य बनाने में समर्थ नहीं है तो वह सर्वथा निष्फल और निरर्थक है। अनुवाद का सजीव होना आवश्यक है यदि उसमें किसी कारणवश मूल प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती तो उसमें अपनी ही सांसों का संचार कर देना चाहिए।

'अपनी ही सांसों का संचार' शब्द भी बहुत वृहत् भावी शब्द है। स्रोत-भाषा के भाव और मूल यथार्थ की रक्षा करना अवश्य ही अनुवाद का कार्य है, लेकिन इसकी रक्षा कैसे की जाए यह एक समस्या है। ऐसे नहीं कि जहाँ स्रोत भाषा की मूल सांसों का भी अतिक्रमण हो' या 'अतिक्रमण हो रहा है' इसकी प्रकृति का ज्ञान भी अभ्यास के क्षेत्र के भीतर ही आता है।

(6) मुहावरों और लोकोक्तियों में निहित मर्म का ज्ञान–प्रत्येक भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों के रूप में कुछ मुहावरों और जीवन के किसी सत्य को जीवित रूप देने के लिए लोकोक्तियों की रचना की जाती है तथा उनको प्रचलन में लाया जाता है। उनका शब्दानुवाद करना न तो सम्भव होता है और न ही वांछनीय। उदाहरणार्थ--हिन्दी में पुत्र को 'बुढ़ापे की लकड़ी' कहा जाता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद `A stick of old age' कभी उस अर्थ को सूचित नहीं कर पायेगा। इसी तरह भारत की भाषाओं में 'मुंह में तिनका दबाना' का भावार्थ अधीनता स्वीकार करना ही लेना होगा। ऐसी लोकोक्तियों तथा मुहावरों के अनुवाद के लिए लक्ष्य-भाषा में, स्रोत-भाषा में प्रयुक्त लोकोक्तियों तथा मुहावरों की ही खोज करनी पड़ सकती है, परन्तु यह तब तक नहीं हो सकता है जब तक गहनपूर्वक किये गये अभ्यास द्वारा उनका संकलन अनुवादक के पास नहीं हो। इसके लिये केवल कोशों से काम नहीं चलता। बहुत-सी लोकोक्तियाँ और मुहावरों की समकक्ष लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे कोशों में होते ही नहीं। कभी-कभी ऐसे मुहावरों आदि के समकक्ष मुहावरे आदि गढ़ लेने के अनुवादक के अधिकार को भी अमान्य नहीं किया जा

सकता, परन्तु अनुवादक इसी अधिकार का प्रयोग तभी कर सकता है जब इसी प्रकार की क्रियाओं को अभ्यास में लगातार लाता रहा हो।

(7) विषय का ज्ञान–अनुवादक के लिये जहाँ स्त्रोत–भाषा का पर्याप्त और गहन ज्ञान अपेक्षित है, दोनों भाषाओं के शब्दों की प्रवृत्ति और परिवेश की जानकारी अपेक्षित है, वहाँ उसके लिये अनूदित की जाने वाली रचना में निरूपित समय, स्थान, विषय और समाज आदि की भी सही, पूरी और गहरी जानकारी का होना आवश्यक है अन्यथा वह अनुवाद कार्य के लिए न्याय कर ही नहीं सकता। अनुवादशास्त्रियों ने इसे अनुवाद कार्य में अत्यंत सहायक माना है, लेकिन ऐसा प्रायः अनुवादकों के लिये सम्भव नहीं होता। फिर भी स्त्रोत रचना में इनकी जानकारी कराने वाले तत्त्व अवश्य होते हैं। यह स्त्रोत–भाषा की सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं के होते हैं, जिनकी अनुवादक को जानकारी अवश्य होनी चाहिए ताकि वह उनके वर्णन को उनकी यथार्थता का प्रसंग प्रदान कर सके। इसे सामान्य ज्ञान की भी बात कहा जा सकता है क्योंकि सामान्य अभ्यास के लिए सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है।

अनुवाद करते रहने के अभ्यास से अनुवाद सभी समस्याओं का समापन हो सकता है। जिनको अपने भाषा प्रवाह को आकर्षक और रुचिपूर्ण बनाने की इच्छा होती है, वह इसके लिए निरन्तर अभ्यास करते हैं। प्रायः स्त्रोत–भाषा की मूल रचना और लक्ष्य–भाषा के विभिन्न अनुवादों को पढ़ने का अभ्यास तो आवश्यक है ही, परन्तु स्वयं अनुवाद करते रहने का अभ्यास इसके लिए सर्वोन्तम क्रिया है। इसके लिये अनुवाद कार्य में अनुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए निम्नांकित रूप में अभ्यास किया जा सकता है––

1. स्वयं स्त्रोत–भाषा की मूल रचना का अनुवाद करके उसका किसी आदर्श अनुवाद से मिलान करना और यह पहचान करना कि ऐसे आदर्श अनुवाद की शैली और शब्द–रचना कैसी है। क्या वैसा निर्वाह करने में आप सक्षम है
2. किसी स्त्रोत–भाषा का स्वयं लक्ष्य–भाषा में अनुवाद करना, तदुपरान्त अपने लक्ष्य अनुवाद को स्त्रोत–भाषा में अनूदित करना और स्वयं ही अपनी कमियों को निकालना। समाचार–पत्रों के लिये अनुवाद करने वालों के लिये तो यह प्रक्रिया बहुत आवश्यक है।

हम यहाँ अनुवाद कार्य में विशेषता लक्षित करने तथा अभ्यास करने के लिये कुछ अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं, इन्हें देखिए

अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने के कुछ अभ्यास कार्य

Translate into Hindi

1.	He must get the food ready in time.	उसे खाना समय से अवष्य तैयार करवा देना चाहिए।
2.	He got Madhu appointed a teacher.	उसने मधु को एक अध्यापिका नियुक्त करवा दिया।
3.	When I reached the station the train was about to leave.	जब मैं स्टेशन पहुँचा गाड़ी छूटने वाली थी।
4.	He ran the horse in the field.	उसने घोड़े को मैदान में दौड़ाया।
5.	Whya did you make him week.	तुमने उसे क्यों रुलाया ?
6.	I stood the umbrella against the wall.	मैने छाते को दीवार के सहारे खड़ा कर दिया।
7.	When he was about to speak somebody threw an egg at him.	वह बोलने ही वाला था जब किसी ने उस पर अण्डा फेंका।
8.	I wish he had been alive.	काश वह जिन्दा होता।
9.	I wish he would be a professor.	मेरी इच्छा है कि वह प्रोफेसर हो जाए।
10.	I wish he had known all about it.	काश उसे इसके बारे में सब कुछ मालूम होता।
11.	If he had been wearing a coat, he would not have cought cold.	यदि वह कोट पहने हुए होता तो उसे ठण्ड न लगती।
12.	When I began to read, the light failed.	जब मैं पढ़ने लगा बिजली चली गई।
13.	After many efforts the car began to move.	काफी प्रयत्नों के बाद कार चलने लगी।
14.	He behaes as if he were the Prime Minister.	वह ऐसे व्यवहार करता है मानों वह प्रधानमन्त्री हो।
15.	He takes as if he knew all about it.	वह ऐसे बात करता है मानो वह इसके बारे में सब कुछ जानता हो।

अंग्रेजी वाक्य	हिन्दी अनुवाद
1. The fair is going to the held.	मेला लगने वाला है।
2. He went home quite happy.	वह खुशी–खुशी घर चला गया।
3. She wept bitterly.	वह फूट–फूट कर रोई।
4. He died of over-eating.	वह खाते–खाते मर गया।
5. My heart is sinking slowly.	मेरा कलेजा धीरे–धीरे बैठा जा रहा है।
6. See me ater this period.	मुझे इस घण्ट के पीछे मिलना।
7. I refuted all his arguments.	मैंने उसी सब तर्क काट दीं।
8. This pair of shoes will weal well.	यह जूता खूब चलेगा।
9. I am feeling gnawing hunger.	मेरे पेट में चूहे नाच रहे हैं।
10. His wits are gone wool-fathering.	उसकी अक्ल घास चरने गई है।
11. He was besided himself with joy.	उसका ह्वदय खुशी से बाग–बाग हो गया।
12. What day of the week is it today?	आज सप्ताह का कौन–सा दिन है ?
13. Only God knows what is in storefor us.	केवल भगवान जनाता है कि हमारे भाग्य में क्या लिखा है।
14. The hind tube of bicycle needs pumping.	मेरी साइकिल के पिछले पहिये में हवा कम है।
15. Haste makes waste.	जल्दी का काम शैतान का होता है।

PROVERBIAL SENTENCES

1. Make hay while the sun shines.	बहती गंगा में हाथ धो लो।
2. A burnt child breads the fire.	दूध का छला छाछ को फूँक–फूँक कर पीता हैं।
3. A drowing man catches as a straw.	डूबते को तिनके का सहारा।

4.	Barking dogs seldo bite.	जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं।
5.	Where there is a will, there is a way.	जहाँ चाह है वहाँ राह है।
6.	A little pot is soon hot.	थोथा चना बाजे धना।
7.	Deep rivers move with silent majesty while shallow brooks are noisy.	अधजल गगरी छलकत जाय, भरी गगरिया चुप्पै जाय।
8.	A bird in the hand is worth two in the bush.	नौ नकद न तेरह उधार।
9.	All that glitters is not gold.	हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और।
10.	A bad workman quarrels with his tools.	नाच न जाने आँगन टेढ़ा।
11.	Great cry, little wool, Or Great boast little roast.	ऊँची दुकान फीका पकवान।
12.	Cut your coat according to your cloth.	तेते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर।
13.	It is never too late to mend.	सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो भूला नहीं कहलाता।
14.	A fried in need to a friend indeed.	मित्र वही जो समय पर काम आवे।
15.	Diamond cuts diamond.	लोहा लोहे को काटता है।
16.	Let by-gones be by-gones.	बीती ताकि बिसार दे/गढ़े मुर्दे मत उखाड़ो।
17.	To add insult to injury.	घाव पर नमक छिड़कना।
18.	Many a little makes a mickle.	बूँद-बूँद से घड़ा भरता है।
19.	To carry coal to Newcastle.	उलटे बाँस बरेली को।
20.	Seeing is believing.	हाथ कंगन को आरसी क्या।
21.	After death, the doctor.	का वर्षा जब कृषि सुखाने।
22.	He gives twice that gives in a trice.	तुरन्त दान महाकल्याण।

23. It takes two to make a quarrel.	एक हाथ से ताली नहीं बजती है।
24. No gains without pains.	सेवा बिना मेवा नहीं।
25. When the sky falls we shall catch larks.	न नौ मन तेल होय न राधा नाचै।
26. Errors and omissions excepted.	भूल-चूक लेनी देनी।
27. It is no used crying over spilt milk.	अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुंग गई खेत।
28. Rome was not built in a day.	हथेली पर सरसों नहीं जमती।
29. Might is right.	जिसकी लाठी उसकी भैंस।
30. Out of sight, out of mind.	आँख ओट पहाड़ ओट।
31. Good mind, good find.	आप भला तो जग भला।
32. One swallow does not make a summer.	अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।
33. Money for money and interest besides. or Earth's joys and heaven's blessing sombined.	आम के आम गुठलियों के दाम।
34. No man can serve two masters.	धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।
35. Birds of the same feather flock together.	चोर-चोर मौसेरे भाई।
37. All's well that ends well.	अन्त भला सो सब भला।

कुछ विशिष्ट भाव प्रधान वाक्य निम्नलिखित हैं–

1. What is lotted cannot be blotted.	भाग्य का लिखा मिट नहीं सकता।
2. He has seen many ups and downs of life.	उसने जीवन के कई उतार-चढ़ाव देखे हैं।
3. Her beuty beggars description.	उसके सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता।
4. He is patriot out and out.	वह पक्का देश भक्त है।
5. My friend is overhead and cars in debt.	मेरा मित्र ऋण में डूबा हुआ है।

6. Good students never play truant.	अच्छे विद्यार्थी कभी भी विद्यालय से नहीं भागते।
7. He opposed me tooth and nail.	उसने मेरा डटकर विरोध किया।
8. Come what may, I shall help you.	चाहे जा कुछ हो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।
9. Prices are shooting up.	कीमतें आसमान छू रही है।
10. He always indulges in tall talks.	वह हमेशा गप्प मारता है।
11. He is an apple of his mother's eye.	वह अपनी माँ की आँख का तारा है।
12. Who will bell the cat ?	म्याऊँ का मुँह कौन पकड़ेगा?
13. After me, the Deluge.	आप मरे जग प्रलय।
14. Tit for tat.	जैसा को तैसा।
15. It is an uphill task.	यह काम अत्यन्त कठिन है।
16. Sooner or later, he will come to grief.	एक न एक दिन उसे मुँह की खानी पड़ेगी।
17. I am always an eye-sore to him.	मैं सदैव उसकी आँखों में खटकता हूँ।
18. Is there any way out of the difficulty?	क्या संकट से उबरने का कोई रास्ता है?
19. Handsome is that handsome does.	अच्छा वह जो अच्छा कार्य करे।
20. Strike the iron while it is hot.	अवसर को हाथ से मत जाने दो।
21. Self-praise is no recomm endation.	अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनाना।
22. To try one in one's own Greece.	उसका जूता उसी का सिर।
23. Prevention is better than cure.	इलाज की अपेक्षा बचाव अच्छा।
24. A fog cannot be dispelled by a fan.	ओस चाटे प्यास नहीं बुझती।
25. Every dog has his day.	कभी धूरे के भी दिन फिरते हैं।
26. Kindess is lost upon an ungrateful man	गधे का खिलावा, पाप न पुण्य।

27. He has become shameless. उसकी आँख का पानी उतर गया है।
28. Sunita has luxuriant hair. सुनीता के बाल बहुत घने हैं।
29. His habits are growing fagt. उसकी आदते जड़ पकड़ रही हैं।
30. The boil is drawing to a head. फोड़े का मुँह निकल आया है।
31. Time hangs heavily on my head. मेरा समय नहीं कटता।
32. They are basking. वे धूप खा रहे हैं।
33. Four of his teeth have fallen off. उसके चार दाँत गिर गये हैं।
34. To forbear is always good. गम खाना हमेशा अच्छा है।
35. A light purse is a heavey purse. कंगाली में आटा गीला।
36. Misfortunes seldom come alone. दुर्भाग्य कभी अकेले नहीं आते।
37. A nine days' wonder. चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात।
38. Worship the rising sun. चमत्कार को नमस्कार।
39. Need makes the old wife tot. लकड़ी के बल बंदरी नाचे।
40. A stitch in time saves nine. समग्र का टाँका बड़ी बचत करता है।
41. A varice is the root of all evils. लालच बुरी बला है।
42. Yours sticks will not work here. यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी।
43. A covetous man is ever in want. लोभी का पेट सदा खाली।
44. Two of a trade seldom agree. एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती।
45. Too many cooks spoil the broth. दो मुल्लाओं से मुर्गी हराम।
46. A crow is never the whiter for washing. नीम न मीठा होय सींचो घी गुड़ से।
47. First deserve than desire. पहले पात्र बनें फिर इच्छा करें।
48. Life is better than bags of gold. जान बची तो लाखों पाये।
49. A common horse is the worst shod. साझे की हंडिया चौराहे पर फूटती है।
50. Well-begun is half done. शुरूआत अच्छी, कार्य सम्पन्नता अच्छी।

अभ्यास कार्य 1

(1) Agra is a famous historical city. For years, it has been the capital of Moghul emperors. Many foreigners call it a city of mausoleums.

आगरा एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। सैकड़ों वर्षों तक वह मुगल सम्राटों की राजधानी रहा है। बहुत से विदेशी आगरा को मकबरों का शहर कहकर पुकारते हैं।

(2) A railway station is an attractive meeting place for all. Hindus, Muslims, Sikhs, Charistians and Persians, all can be seen here.

रेल का स्टेशन सबके मेल-मिलाप का एक आकर्षक स्थान होता है। हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी सब ही यहाँ दिखाई देते हैं।

(3) One day all of sudden, the sky was overcast with clouds. It started thundering. In no time torrential rain began to fall.

एक दिन अचानक आसमान में बादल छा गये। बादल गरजने लगे अब देखते ही देखते मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई।

(4) It rained so heavily that the roofs of the house began to leak. Mud houses began to collaps. The house was water logged. The tenant said, "This house is ot worthliving in."

वर्षा इतनी अधिक हुई कि मकान की छते चूने लगीं। कच्चे मकान गिरने लगे। मकान में पानी भर गया। किरायेदार ने कहा, "यह मकान रहने लायक नहीं है।"

अभ्यास कार्य 2

(1) It is always cold and shady under a banyan tree. Without any difficulty you may reach in between its boughts and then there is no fear of falling down.

बरगद के नीचे हमेशा ठण्डक और छाया रहती है। बिना किसी कठिनाई के तुम इसकी डालों के बीच पहुँच जाओगे और फिर गिरने का डर नहीं रहेगा।

(2) The banyan tree welcomes each and everyone. Besides boys and girls, various types of guests come to it--birds, squirrels, insects, reptiles, etc.

बरगद सबकी आवभगत करता है। लड़के-लड़कियों के अलावा और कई तरह के अतिथि इसके पास आते हैं--चिड़ियाँ, गिलहरी, कीड़े-मकोड़े, चमगादड़ वगैरह-वगैरह।

(3) The word library means `a place or building for books.' In other words. library is a building in which books are kept.

पुस्तकालय शब्द का अर्थ होता है, 'पुस्तकों का घर या स्थान'। दूसरे शब्दों में, पुस्तकालय वह स्थान है जहाँ पुस्तकों को संग्रहित किया जाता है।

(4) There would be hardly any child in this country, who does not identify a parrot. There was a time when there hung an iron cage in every house.

जब देश का शायद ही कोई बच्चा होगा जो तोते को न पहचानता हो। एक समय था जब घर-घर में लोहे का पिंजड़ा टंगा रहता था।

अभ्यास कार्य 3

(1) Various kinds of fruits ae found in different parts of India. Mango, apple, bababa, orange, pomegranate, guave, grape, papaya and lemon are produced plentifully in most of the states here.

भारत के विभिन्न भागों में नाना प्रकार के फल पाये जाते है।। आम, सेव, केला, सन्तरा, अनार, अमरूद, अंगूर, पपीता व नींबू यहाँ के अधिकांश प्रदेशों में प्रचुरता से पाये जाते हैं।

(2) As we have seen there are three great Himalayan rivers--Ganga, Brahmaputra and some portions of the Sindhu.

जैसा कि हम देख चुके हैं कि हिमालय की तीन बड़ी नदियाँ हैं--गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नदी के कुछ भाग।

(3) There are two kinds of games (indore games) played inside a house and (outdoor games) those played o the open playgrounds.

खेल दो प्रकार के होते हैं--एक घर के भीतर खेले जाने वाले और दूसरे खुले मैदान में खेले जाने वाले खेल।

(4) On 15th August, 1947, there was life and bustle in the country, ceremonies were held, feasts were arranged in the night there were lights than on Diwali.

15 अगस्त, 1947 को सारे देश में खुशियाँ मनाई गई, जलसे हुए दावतें दी गईं, रात को दिवाली से बढ़कर रोशनी की गई।

अभ्यास कार्य 4

(1) The path alon Mandakini from Rudraprayag leads to Guptakashi. The total distance is twenty four miles. Out of it the distance of twenty-two miles may be covered by jeep.

रुद्रपयाग से मन्काकिनी के किनारे गुप्तकाशी का रास्ता है। कुल दूरी 24 मील है। इसमें से 22 मील तक तो जीप पर जाया जा सकता है।

(2) All the countries have both merchantile and naval fleet. The merchantile ships carry gods from and to other countries.

सभी देशों के पास व्यापारिक व सैनिक दोनों प्रकार के जहाजी बेड़े होते हैं। व्यावसायिक जहाज दूसरे देशों के माल लाते हैं व यहाँ से अपना माल ले जाते हैं।

(3) There is a certain type of difference between the rivers of Northe India and those of South India. The rivers of North India are perennial *i.e.* they are full of water all the year round.

उत्तर भारत और दक्षिण भारत की नदियों में एक खास अन्तर है। उत्तर भारत की नदियाँ बारहमासी हैं, यानी पूरे वर्ष भर उनमें पानी भरा रहता है।

(4) The Himalayas are the highest of all he mountains in the world. The high peaks are covered with snow throughout the year. The word `Himalayas' means the `home of snow.'

हिमालय विश्व की सबसे ऊँचा पहाड़ है। इसकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ वर्ष भर बर्फ से ढंकी रहती है। 'हिमालय' शब्द का अर्थ है 'बर्फ का घर'।

अभ्यास कार्य 5

(1) Walk carefully lest you stumble. If you got hurt, you would have to spend a lot of money on treatment.

संभलकर चलो ऐसा न हो कि तुम्हें ठोकर लग जाये। यदि तुम्हें चोट आ गई तो इलाज पर बहुत धन खर्च करना पड़ेगा।

(2) Ram along with his friends has gone to Hyderabad. After four day's stay there, e will come back day after tomorrow or lese he will leave for Chennai from there.

राम अपने मित्रों के साथ हैदराबाद गया है। वहाँ चार दिन रुकने के बाद शायद वह परसों लौट आयेगा अन्यथा वहाँ से चेन्नई चला जायेगा।

(3) The books had advised me to have a walk in the open air and that I appreciated. Threfore, from High School onward I formed a habit of going for a walk.

पुस्तकों में मैंने खुली हवा में घूमने जाने की सलाह पढ़ी थी और वह मुझे अच्छी लगी थी। इसलिए हाईस्कूल कक्षा में मुझे घूमने जाने की आदत पड़ गई थी।

(4) Would that my friend were the Prime Minister? If he loved me, he would remember me from time to time.

क्या ही अच्छा होता मेरा मित्र प्रधानमन्त्री होता ? अगर वह मुझे प्यार करता तो समय-समय पर याद करता।

अभ्यास कार्य 6

(1) What else do people need except food, clothe and shelter ? They should have time to rest, to think and a feel.

खाना, कपड़ा और घर को छोड़कर लोगों की और क्या आवश्यकताएँ हैं उन्हें आराम का समय, सोचन-विचारने का समय और महसूस करने के लिए भी समय चाहिए।

(2) Have you evern seen a warped tree? It could not grow straight because tree might have been some hindrance in its development.

क्या तुमने कभी टेढ़ा बढ़ता हुआ पेड़ देखा है ? वह सीधा इसलिए नहीं बढ़ सका कि उसके रास्ते में कोई रुकावट आ गई होगी।

(3) One night the only son of a farmer died. The members of his family became very sad and wept but the farmer did not appear to have been affect. His wife said weeping, "How hard-hearted you are !"

एक रात एक किसान का इकलौता पुत्र मर गया। उसके घर वाले दुखी हुए और रोय, पर किसान प्रभावित नहीं हुआ। उसकी पत्नी ने रोते हुए कहा, "कैसे पत्थर दिल हो तुम !"

(4) I had distaste for physical exercise. Physical exercise was compulsory for the students of higher clases. Before cricket was made compulsory, I never attnded exercise, cricket or football. God knows my shyness was one of its reasons.

व्यायाम से मुझे अरुचि थी। ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों के लिए व्यायाम अनिवार्य था। क्रिकेट के अनिवार्य बनने से पहले मैं कभी कसरत, क्रिकेट या फुटबाल में गया ही न था। न जाने मेरा शर्मीला स्वभाव भी इसका एक कारण था।

अभ्यास कार्य 7

(1) A poet went to a rich man and praised him highly. Becoming happy that rich man said. "At present I do not have any money but I have plenty of grain. If you come tomorrow, I shall give you some grain."

The poet arrived at the house of that rich man next morning. The rich man said, "Well, how did you happen to come so early this morning? What can I do for you?" The poet replied that he (the rich man) had promised to give him some grain. The rich man laughed and said that he (the poet) appeared to be a fool. As he had pleased him by mere words, so he had also pleased him by mere words.

The poet went home silently but the stopped writing poems in praise of others.

एक कवि एक धनी आदमी के पास गया और उसकी बड़ी तारीफ की। उस अमीर ने खुश होकर कहा, "अभी तो मेरे पास पैसा नहीं है पर अनाज काफी है अगर आप कल आयें तो मैं आपको कुछ अनाज दूँगा।"

कवि दूसरे दिन सुबह उस धनिक के घर पर पहुँचा। उस अमीर आदमी ने कहा, "कहिए, इतने सुबह कैसे आना हुआ ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" कवि ने जवाद दिया कि आपने मुझे कुछ अनाज देने का वचन दिया था। अमीर आदमी ने हँसकर कहा कि तुम बड़े बेवकूफ हो। जैसे तुमने मुझे बातों से प्रसन्न कर दिया था, वैसे ही मैंने तुम्हें भी बातों से खुश कर दिया।

कवि चुपचाप अपने घर चला गया और उसने दूसरों की प्रशंसा में कविता लिखना बन्द कर दिया।

(2) There was a village on the bank of river. A wood-cutter lived there. One day his eldest son went to the forest to tend the sheep. While the sheep were grazing, the boy set out to see the railway bridge. He was bewildered to see that the bridge had cought fire. The train was about to come. The body thought that if the train was not stopped hundreds of people would lose their lives in vain. In the meantime. He started running between the railway lines to-

wards the train. The driver slowed down the train but it knocked him down. The train stoped near the bridge. Now the people realised that the boy has sacrificed his life in order to save the lives of others.

समुद्र के किनारे एक गाँव था। वहाँ एक लकड़हारा रहता था। एक दिन उसका सबसे बड़ा लड़का भेड़ें चराने के लिए जंगल गया। भेड़ें घास चर रही थीं पर लड़का रेल के पुल को देखने के लिए चल पड़ा। वह यह देखकर हैरान रह गया कि पुल में आग लगी हुई है। गाड़ी आने वाली थी। लड़के ने सोचा कि अगर गाड़ी को रोका न गया तो सैकड़ों व्यक्तियों की जान चली जायेगी। इतने में उसने गाड़ी की सीटी सुनी। उसने निश्चय किया कि उसे गाड़ी गिरने से बचाना हैं वह पटरियों के बीच में गाड़ी की तरफ दौड़ने लगा। ड्राइवर ने गाड़ी धीमी कर दी पर लड़का गाड़ी से टकरा गया। पुल के पास आकर गाड़ी रुकी। तब लोगों को समझ में आया कि लड़के ने दूसरों की जान बचाने के लिए अपना बलिदान कर दिया है।

(3) Once an old woman went blind. She sent for a physician and promised him a handsome reward if she got her eyesight again. The physician started treating her but during her treatment he took away all her belongings. After some time the eyes of the old woman became all right and she started seeing again. She saw that nothing had been left in her house. The physician asked her for his reward and on her refusal got her summoned by a judge. When asked by the judge, she said, "What this man says in true, I promised him a good reward on the resoration of my eyesight. But my eyes have not been cured at all. Before losing my eyesight. I could see all kinds of things in my house. This man says that my eyes are now all right but I cannot see anything in my house."

एक बार एक बुड्ढी औरत अन्धी हो गयी। उसने एक वैद्य को बुलवाया। उसने उससे वादा किया कि अगर उसकी आँखों को रोशनी वापस आ गई तो वह उसे एक अच्छा पुरस्कार देगी। वैद्य ने उसका इलाज शुरू किया, पर इलाज के दौरान वह उसका सारा सामान उठा ले गया। कुछ समय बाद बुढ़िया की आँखें ठीक हो गईं और वह दुबारा देखने लगी। उसने देखा कि उसके घर में कुछ न बचा था। वैद्य ने उससे अपना पुरस्कार माँगा और उसके मना करने पर उसे एक जज ने सामने बुलवाया। जज के पूछने पर बुढ़िया ने कहा, "यह आदमी ठीक कहता है, मैंने इसे आँखों की रोशनी वापस आने पर एक अच्छा इनाम देने को कहा था। लेकिन मेरी आँखे ठीक कहाँ हुई हैं। आँखों की रोशनी खोने के पहले

मैं अपने घर में सब प्रकार का सामान देख सकती थी। यह कहता है कि मेरी आँखें ठीक हो गई हैं, पर मुझे अपने घर में कोई चीज नहीं दिखाई देती है।"

(4) When a wood-cutter went to forest one day, he saw a strange scene there. He saw a small girl who has the brightness of countless diamonds in her body there. He brought the girl home. Wealth started pouring on him from the day te firl came to his house. Whenever the wood-cutter went to forest for cutting wood, he got one thing or the other daily. Sometimes he got pearls and diamonds, sometimes silver articles and sometimes a bag full of gold coins. The wood-cutter became rich withing a year. Within a year the girl too grew into a young maiden and the stories of her beauty spread for the wide. After some days a small cloud descended before the house of the wood-cutter from the sky. The girl came out and saw four fairies standing before. She took leave of her parents with great grief. The earth had become the object of her love because she had lived on it. The cloud took that greiving girl to the sky and she became the moon there. Even today she sometimes wanes in memory of the earth.

एक दिन एक लकड़हारा जब जंगल को गया। वहाँ उसने एक विचित्र दृश्य देखा। उसने वहाँ एक छोटी लड़की देखी जिसके शरीर में असंख्य हीरों की चमक थी। वह लड़की को घर ले गया। जिस दिन लड़की उसके घर आई उसके ऊपर धन बरसने लगा। जब लकड़हारा जंगल को लकड़ी काटने जाता, वह एक न एक चीज रोज पा जाता। कभी उसे मोती और हीरे मिलते, कभी चाँदी के सामान और कभी सोने के सिक्कों से भरी थैली। एक साल के अन्दर वह लकड़हारा धनी हो गया। एक साल के अन्दर वह लड़की भी बढ़कर युवती हो गई और उसकी सुन्दरा की कहानी दूर-दूर तक फैल गई। कुछ दिनों बाद एक रात को एक छोटा-सा बादल आकाश से लकड़हारे के घर के सामने उतरा। लड़की बाहर आई और उसने चार परियों को अपने सामने खड़ा देखा। उसने बड़े दुःख के साथ अपने माता-पिता से विदा ली। पृथ्वी पर रहने के कारण उसे पृथ्वी से प्यार हो गया। बादल उस दुःखी लड़की को अपने साथ ले गया और वह वहाँ चन्द्रमा बन गई। पृथ्वी की याद में वह आज भी दुबली हो जाती है।

(5) A kling had three queens. All three of them were very tendor. One day the king took them to his garden for a walk. There was a pond in that garden in which lotus blooms floated. Fascinated by the beauty of the garden, the king took of his clothes and had a bath in the pond. Plucking a lotus bloom, he presented it to a queen.

Incidentally the lotus bloom dropped from his hand and fell on a foot of the queen, and this hurt her. The king ordered for the careful treatment of the queen. In the night the rays of the rising moon fell on anoher queen, which scorched her skin. Next morning the sound of the thrashing of rice fell into the ears of the third queen. This caused such a terrible pain in her head that she fainted. The tenderest of all the three was the one who fainted at hearing the sound of the thrashing of rice.

एक राजा के तीन रानियाँ थीं। तीनों बड़ी कोमल थीं। एक दिन राजा उन्हें अपने उद्यान में घुमाने के लिए ले गया। उद्यान में एक तालाब में जिसमें कमल के फूल तैरते थे। उद्यान की सुन्दरता पर मुग्ध होकर राजा ने अपने कपड़े उतार दिये और तालाब में स्नान किया। उसने एक कमल का फूल तोड़कर अपनी एक रानी को भेंट किया। संयोग से फूल उसके हाथ से छूटकर रानी के पैर पर गिरा और उससे उसे चोट लग गई। राजा ने उसकी सावधानी से चिकित्सा करने की आज्ञा दी। राज को उदय हुए चन्द्रमा की किरणें दूसरी रानी पर पड़ीं और इससे उस रानी की खाल झुलस गई। दूसरे दिन सुबह तीसरी रानी के कान में धान कूटने की आवाज पड़ी। इससे उसके सिर में इतनी भंयकर पीड़ा हुई कि वह बेहाश हो गई। इन तीनों रानियों में सबसे अधिक कोमला वह थी जो धान कूटने की आवाज सुनकर बेहोश हो गई।

अनुवाद के व्यावहारिक पक्ष

अनुवाद क्रिया अपने स्थूल रूप में अवश्य ही भाषाओं से सम्बद्ध है क्योंकि कभी दो भाषा-भाषाी व्यक्ति मिलें और एक-दूसरे को अपनी बात समझाने का प्रयत्न करें, तो वह तभी समझा सकेगें जब दोनों किसी तीसरी भाषा का ज्ञान रखते हों। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति पहले अपनी भाषा में सोची हुई बात का अनुवाद उस भाषा में करेगा, जिसे दूसरा भी जानता है, तब उस भाषा में अपनी बात कहेगा। यह प्रक्रिया तुरत प्रक्रिया है। दूसरा व्यक्ति भी एक ही बात का उत्तर देने के लए इसी तुरत प्रक्रिया को अपनायेगा। यह अनुवाद क्रिया का एक व्यावहारिक पक्ष है।

अनुवादक के लिए मूल के सन्दर्भ का ज्ञान

अनुवादक के लिए सन्दर्भ और प्रसंग की जानकारी का होना भी सर्वथा अपेक्षित है। इसके अभाव में वह अनुवाद कार्य में न्याय कर नहीं नहीं सकता।

उदाहरणार्थ अंग्रेजी के सन (Son) का अर्थ सभी स्थानों पर पुत्र ही करना उचित नहीं होगा। 'सन् ऑफ इण्डिया' का सही अनुवाद 'भारत का सपूत' होगा न कि भारत का पुत्र। इसी प्रकार कहीं आत्मज, कहीं बेटा, लड़का तो कहीं कुलदीपक प्रयोग में आए। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का यह कथन बड़ा ही उपयुक्त है--**"शब्द भाव अथवा विचार की पोशाक नहीं है, जो इच्छानुसार बदली जा सके अर्थात् पैंट-कमीज के स्थान पर धोती-कुर्ता पहना दिया जाये।"** यह तो भाव या विचार का मांस अथवा उसकी त्वचा है। अत: भव विचार के अनुकूल एवं अनुरूप शब्दों का प्रयोग करने वाला अनुवादक ही अनुवाद को सफल एवं सजीव बना सकता है।

अनुवाद कार्य में अनुवादक को पूर्वाग्रह से रहित होना

अनुवाद कार्य के लिये प्रयोजित रचना या उसके विषय के प्रति यदि अनुवादक किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों से युक्त हो, जैसा कि प्राय: होता है, तो वह रचना मूल रचनाकार की रचना में अभिव्यक्ति दोष का सृजन कर देता है। यह दोष अनुवाद कार्य का सबसे बड़ा दोष है। अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अनुवाद करते समय अभिव्यक्ति में स्वतन्त्र नहीं है, अत: उसे स्वयं को मूल रचना के भावों तथा विचारों को दूसरी भाषा में अन्तरण करने से अधिक कुछ नहीं करना है। यह सत्य है कि कभी-कभी उसे रचना के विषय सम्बन्धी ज्ञान में मूल रचनाकार के ज्ञान से अधिक ज्ञान हो सकता है तथा यह भी सम्भव है कि कभी-कभी अनुवादक मूल रचना के अनेक भाव-विचार रखता है अर्थात् मूल रचना के भाव-विचारों के प्रति वह किन्ही पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है या विषय सम्बन्धी उसकी पूर्वाग्रही धारणा सिद्धान्त-संकल्पना में मूल रचनाकार की संकल्पना में, अपनी धारणा को प्रच्छन्न रूप से अनुबद्ध हुई समझ लेता है, तो वह ऐसी धारणा का स्वरूप ही अनुवाद करते समय बदल डालेगा। इसके उदाहरण प्राय: हम संसार के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवदगीता' के अनुवादों में देख सकते हैं जिनमें अनुवादकों ने गीता के कुछ मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को प्राय: विशेषण प्रतिबद्धित कर दिया है।

12

अनुवाद एवं भाषा विज्ञान

अनुवाद एक भाषिक कला है। सामान्य अर्थ में, एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में कहना 'अनुवाद' है। यहाँ कथन या अभिव्यक्ति का माध्यम है 'भाषा'। स्पष्ट है कि अनुवाद क्रिया पूर्णतः भाषा पर आधारित है। कदाचित इसीलिए भोलानाथ तिवारी जी ने अनुवाद को 'भाषान्तर' कहा है। एक भाषिक क्रिया होने के नाते अनुवाद का भाषा से ही नहीं, भाषाविज्ञान से भी गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि भाषाविज्ञान में 'भाषा' का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। भाषा की संरचना में ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ, वाक्य आदि कई स्तर होते हैं। इनके आधार पर भाषाविज्ञान के अन्तर्गत ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान आदि का विधिवत व वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

अनुवाद में भी ध्वनि, शब्द, रूप आदि की दृष्टि से स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा की तुलना करनी होती है। इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अन्तर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं। अनुवाद में भाषान्तरण के बावजूद अर्थ की रक्षा अपरिहार्य होती है। अतः अनुवादक को स्रोत-भाषा तथा लक्ष्य-भाषा की प्रकृति, संरचना, विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न शैलियों तथा इन तमाम पक्षों से सम्बद्ध अर्थ व्यंजनाओं का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

भाषा का अनुवाद और अनुवाद की भाषा

भारतवर्ष विभन्न भाषाओं एवं उपभाषाओं रूपी सरिताओं का संगम है।यहाँ एक ओर संस्कृति की पावन गंगा प्रवाहित है जिसने अमृत वाड.मय से समस्त क्षेत्रीय भाषाओं को भी अनुप्राणित किया है, दूसरी ओर हमारी संस्कृति की अंत:सलिला सरस्वती है, जो विविधि वेशभूषा, रीतिरिवाजों के बाह्य भेदों की विद्यमानता के बावजूद समस्त भारत को रागात्मकता के एक सूत्र में बाँधे हुए हैं। भाषा ही वह जीवन–ज्योति है, जो मानव को मानव से जोड़ती है।यह विचारों के आदान–प्रदान में सहायक होने के साथ–साथ परम्पराओं, संस्कृतियों और मान्यताओं एवं विश्वासों को समझने का सशक्त माध्यम भी है। किसी भी देश की धड़कन उसकी भाषा में ही निहित होती है। जहाँ भाषा विचारों की संवाहिका है, वहीं अनुवाद विविध भाषाओं एवं विविध संस्कृतियोंसे साक्षात्कार कराने वाला साधन। अनुवादक अपने भागीरथ प्रयास से दो भिन्न एवं अपरिचित संस्कृतियों, परिवेशों एवं भाषाओं की सौन्दर्य चेतना को अभिन्न और परिचित बता देता है।

अनुवाद उतना ही प्राचीन है जितनी कि भाषा। हमारा भारत भाषाओं और उनके बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से यूरोप से बहुत बड़ा है। और सच तो यह है कि भाषाओं के मामले में हम दुनिया के सिरमौर हैं। दुनिया की पचास बड़ी भाषाओं में से एक तिहाई भारत की भाषाएँ हैं। अनादि कालसे वे मनुष्य जाति के पारस्परिक आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम रही हैं।भाषा और साहित्य हमारी संस्कृति के उद्गाता और संवाहक रही हैं।

भाषा और अनुवाद का भविष्य परस्पर अन्योन्याश्रित है। भाषा का भविष्य अनुवाद का भी भविष्य है। वर्तमान भाषा के रूप को पहचानते हुए भविष्य की कल्पना की जाती है। आज कई प्रकार के भाषा–रूप हैं, जैसे बोलचान की भाषा, साहित्यिक भाषा, माध्यम भाषा, सम्पर्क भाषा, जनसंचार माध्यम की भाषा इत्यादि। बोलचाल की भाषा में व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता नहीं, जबकि साहित्यिक भाषा में रचनाधर्मिता प्रकट होने के कारण व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। माध्यम भाषा के द्वारा शिक्षण प्राप्त करते हैं। जनसंचार की भाषा के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दो अलग प्रकार के माध्यम हैं। इसका मुख्य उद्देश्य जनता को सूचना देना, प्रशिक्षण, प्रबोधन, अभिप्रेरण, प्रोत्साहन तथा मनोरंजन करना है। इसी कारण इस माध्यम में भाषा को रोचक रूप में प्रस्तुत करने का विशेष प्रयास रहता है।

यह अलग बात है कि बाजारवाद के चलते आज भाषा का व्यावसायीकरण हो गया है। इंटरनेट, कंप्यूटर आदि के कारण दैनन्दिन जीवन की आवश्यकताओं में प्रयोग होने वाली भाषा पर विस्तार देने का प्रयास होनेलगा है। भाषा में दिनोंदिन परिष्कार हो रहा है, जिससे शब्दों में निखार आता जा रहा है। पहले शब्द लिए 'संडास' शब्द का प्रयोगकिया जाता था, जो सुनने और बोलने में बड़ा अरुचिकर लगता था, परन्तु धीरे-धीरे इसके स्थान पर प्रसाधन, सुलभ शौचालय, जनसुविधाएँ आदि शब्द आए, ये शब्द ज्यादा गरिमा मंडित हैं।

भाषा की सबसे बड़ी शक्ति उसकी ग्रहण क्षमता है, जिस भाषा में यह गुण नहीं, वह भाषा दम तोड़ है। किसी भी भाषा से अनुवाद करते समय अनुवाद के सरलीकरण का प्रयास रहना चाहिए। यदि अनुवाद को जटिल बनाने का प्रयास किया गया तो स्थिति बिगड़ने की संभावना रहती है। संप्रेषण ग्राह्यता जब तक भाषा में नहीं होगी, वह अनुवाद या भाषा जनसम्पर्क का माध्यम नहीं बन सकती। भाषा भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ चिन्तन का भी माध्यम है। हर शब्द की व्यंजना, प्रकृति, प्रवृत्ति, संस्कृति, इतिहास अलग होता है। अतः अनुवाद करते समय इसे समझना होगा। भाषा और शब्द की प्रकृति से भलीभाँति परिचित होना होगा।

अनुवाद और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

आधुनिक युग को अनुवाद का युग कहेंगे अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि अनुवाद-अध्ययन और अनुसंधान आधुनिक युग की पुकार है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक युग में जीवन के अनेक क्षेत्रों के विकास के साथ-साथ भाषायी स्तर पर, संप्रेषण-व्यापार हेतु अनुवाद एक अहम् आवश्यकता के रूप में उभरकर सामने आया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम किसी एक भाषा में अभिव्यक्त भाव या विचारों के लिखित रूप को किसी अन्य भाषा-भाषी समुदाय के संप्रेषणार्थ, दूसरी भाषा में यथासाध्य मूलनिष्ठ किन्तु बोधगम्य रूप में परिवर्तित करते हैं तो यह भाव या विचारों के सोद्देश्यपूर्ण भाषान्तर-प्रक्रिया 'अनुवाद' कहलाती है।

आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषा के अनुप्रायोगिक पक्ष पर भी चिन्तन हुआ है। 'भाषा का सैद्धान्तिक विश्लेषण और वाक्य, रूपिम, स्वनिम आदिउसके व्याकरणिक स्तरों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान का सिद्धान्त कहलाता है, जबकि सौद्धान्तिक भाषाविज्ञान के नियमों सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षों का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया ओर क्रियाकलाप का विज्ञान

ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है।'बकौल कृष्णकुमार गोस्वामी अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान प्रायोगिक एवं कार्योन्मुख एक ऐसी वैज्ञानिक विधा है, जो मानव कार्य-व्यापार में उठने वाली भाषागत समस्याओं का समाधान ढूँढती है। भाषिक क्षमता एवं भाषिक व्यवहार के सन्दर्भ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः व्यवहार पक्ष से जुड़ा हुआ है। यदि भाषाविज्ञान प्रत्येक 'क्या' का उत्तर देता है अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रत्येक 'कैसे' तथा 'क्यों' का उत्तर देता है। यह उपभोक्ता सापेक्ष होता है, जिसमें भाषा के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित लक्ष्यके सन्दर्भ में भाषा-सिद्धान्तों का अनुप्रयोग होता है। वास्तव में भाषा से हम क्या-क्या काम ले सकते हैं, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान उस दिशा में काम करता है। इसलिए जैसे-जैसे इसकी उपयोगिता बढ़ती गई, देश एवं काल के अनुसार उसे भिन्न-भिन्न विधाओं से सम्बद्ध किया जाता रहा है, यथा भाषा-शिक्षण, अनुवाद, कोशविज्ञान, शैलीविज्ञान, कंप्यूटर भाषाविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान।

सामान्यतः अनुवाद से अभिप्राय एक भाषाई संरचना के प्रतीकों के द्वारा सम्प्रेष्य अर्थ को दूसरी भाषा की संरचना के प्रतीकों में परिवर्तित करने से लिया जाता है। डार्टेस्ट ने अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि अनुवाद, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें विशेषतः एक प्रतिमानित प्रतीक समूह से दूसरे प्रतिमानित प्रतीक समूह में अर्थ को अन्तरित करने की समस्या या तत्सम्बन्धी तथ्यों पर विचार-विमर्श किया जाता है-

अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत शामिल करने का कारण यह है कि अनुवाद कर्म में स्रोत-भाषा से लक्ष्य-भाषा तक पहुँचने में हम जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरते हैं उसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है। भाषा विज्ञानियों का मानना है कि अनुवाद क्रिया में पहले स्रोत-भाषा का विकोडीकरण होता है जिसका बाद में लक्ष्य-भाषा में पुनःकोडीकरण किया जाता है। क्रम को देखें-

(i) स्रोत-भाषा
(ii) स्रोत-भाषा का कोडीकृत संदेश
(iii) अन्तरणअर्थात् स्रोत-भाषा का विकोडीकरण
(iv) लक्ष्य-भाषा का कोडीकृत संदेश
(v) लक्ष्य-भाषा

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के कार्यक्षेत्र का अध्ययन करते हुए उसकेतीन सन्दर्भ बताए हैं–

(i)ज्ञान-क्षेत्र का सन्दर्भ

(ii)विधा-क्षेत्र का सन्दर्भ

(iii)भाषा शिक्षण का सन्दर्भ

ज्ञान-क्षेत्र में भाषाविज्ञान और उसके सिद्धान्तों का अनुप्रयोग ज्ञान के अन्य क्षेत्रों को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। जैसे मनो भाषाविज्ञान,समाज भाषाविज्ञान, कंप्यूटर भाषाविज्ञान आदि।

विधा-क्षेत्र में भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग विशेष विधाओं मेंकिया जाता है। शैलीविज्ञान, अनुवादविज्ञान, कोशविज्ञान, आदि।

जहाँ तक भाषा शिक्षण का प्रश्न है, दूसरी भाषा-शिक्षण अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।भाषाविज्ञान के क्षेत्र में दूसरी भाषा' पद एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है जिसकी एक निश्चित संकल्पना है। मातृभाषा हमारी प्रथमभाषा होती है। दूसरी भाषा को सीखने में माध्यम बनती है मातृभाषा। दूसरी भाषा के रूप में जब वह कोई अन्य भाषा पढ़ता है तबउसके सोचने-समझने में मातृभाषा उसकी व्यावहारिक भाषा रहती है क्योंकिवह व्यक्ति की जीवन पद्धति, आचार-विचार और व्यवहार की भाषा होती है। दूसरी भाषा शिक्षण में अनुवाद की प्रक्रिया को भाषा सीखने की प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाता है। अनुवाद भाषा-शिक्षण की परम्परागत और सिद्धपद्धति है। मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा का जो संरचनागत ढाँचा व्यक्ति केमस्तिष्क में व्यावहारिक स्तर पर विद्यमान होता है, उसका उपयोग इस पद्धति से दूसरी भाषा सिखाने में कर लिया जात है और व्यक्ति धीरे-धीरे सुविधाजनक ढंग से दूसरी भाषा व्यवहार में दक्षता अर्जित कर लेता है। अनुवाद-प्रक्रिया की भाँति उसे अपनी भाषा (स्त्रोत-भाषा) की शब्दावली के पर्याय उसे दूसरी भाषा में खोजकर याद करने होते हैं, इन शब्दों के विभिन्न रूपों से परिचय प्राप्त करना होता है तथा भाषा के संरचनागत (व्याकरण संबंधी) नियमों की जानकारी हासिल करनी होती है। इन शब्दों का प्रयोग करते हुए वाक्-रचना करते समय वह नियमों का सतर्कतापूर्वक पालन करता है। ऐसा करते समय वह अपनी भाषा में सोचता है, फिर उस बात को उस भाषा में पढ़ता है, उस पाठ के पर्याय अपनी भाषा में तलाशता है और कथ्य को दूसरी भाषा (लक्ष्य-भाषा) में प्रस्तुत करता है।अनुवाद के माध्यम से

दूसरी भाषा–शिक्षण दुनिया भर में बहुत समयसे प्रचलित रहा है। सदियों से लोग इस पद्धति से भाषा सीखते रहे हैं।

अनुवाद और भाषाविज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध

भाषा का विधिवत एवं वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान सिद्धान्त कहलाता है जबकि सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षों का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया और क्रिया–कलाप का विज्ञान ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है। दूसरे शब्दों में कहें तो, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में भाषाविज्ञान से प्राप्त सैद्धान्तिक जानकारी का विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोग करते हैं। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञानी अपने ज्ञान भंडार के विवेचनात्मक परीक्षण के पश्चात् उसका अनुप्रयोग उन क्षेत्रों में करता है जहाँ मानव–भाषा एक केन्द्रीय घटक होती है जिससे उन क्षेत्रों की कार्यक्षमता का संवर्द्धन किया जा सकता है।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एक ऐसी प्रायोगिक, कार्योन्मुख वैज्ञानिक विधाहै, जो मानव कार्य–व्यापार में उठने वाली भाषागत समस्याओं का समाधानढूँढ़ती है। भाषिक क्षमता एवं भाषिक व्यवहार के सन्दर्भ में अनुप्रयुक्तभाषाविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्षत: व्यवहार पक्ष से जुड़ा हुआ है। यदि भाषाविज्ञान प्रत्येक 'क्या' का उत्तर देता है तो अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रत्येक 'कैसे' तथा 'क्यों' का उत्तर देता है। चूँकि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सम्बन्ध विशेष विधाओं से है, अत: इसमें भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों का जो अनुप्रयोगकिया जाता है उसका लक्ष्य संक्रियात्मक होता है। संक्रियात्मक रूप में शैलीविज्ञान, अनुवादविज्ञान, कोशविज्ञान, वाक्चिकित्सा विज्ञान आदि विषयों में भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों का अनुप्रयोग अनिवार्यत: होता है। क्योंकि ये मुख्यतरूभाषा से सम्बद्ध हैं। इन विधाओं को एक निश्चित सैद्धान्तिक सन्दर्भ देने में और उसके अध्ययन–विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित वैज्ञानिक तकनी कविकसित करने में भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त एवं प्रणाली के अनुप्रयोग का सर्वाधिक योगदान है।

अनुवाद एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

'व्यतिरेक' का अर्थ है 'असमानता' या 'विरोध'। 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान'में दो भाषाओं की तुलना करके दोनों की असमानताओं का पता लगाया जाताहै। अनुवाद के सन्दर्भ में कहें तो व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य रूपात्मक तुलनात्मकता और उस तुलानात्मकता के आधार पर स्रोत–भाषा और लक्ष्य–भाषा

में विद्यमान असमानताओं की व्याख्या करना है। इस प्रकार व्यतिरेकी तकनीक के रूप में अनुवाद में स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा के बीच व्याप्त असमानताओं के प्रति भाषायी सजगता पैदा करना है।

उदाहरण के लिए हिन्दी में तीन मध्यम पुरुष–तू, तुम, आप हैं जबकि अंग्रेजी में केवल 'लवन'। इस प्रकार निम्नलिखित वाक्यों में अंग्रेजी के शब्द के समानान्तर हिन्दी में 'छोटा', 'छोटी', 'छोटे' तीनों का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण–छोटा लड़का–छोटी लड़की–छोटे लड़के

एकाध और उदाहरणों पर विचार करें-हिन्दी के 'गानेवाली' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद सन्दर्भानुसार और होगा। इस प्रकार 'टोपीवाला' का अनुवाद और बंच`मससमत' होगा। अतः कहा जा सकता है कि अनुवाद का सीधा सम्बन्ध व्यतिरेकी विश्लेषण से है।

अनुवाद एवं ध्वनिविज्ञान

'ध्वनि' भाषा की मूलभूत इकाई होती है तथा हर भाषा की अपनी अलग ध्वनि व्यवस्था होती है। दो भाषाओं के बीच कुछ समान, कुछ लगभग समान और कुछ भिन्न ध्वनियाँ होती हैं। यहाँ अंग्रेजी और हिन्दी भाषा की समान ध्वनियों की तुलना करते हैं–

हिन्दी–क ग ज ट न प फ ब म र ल व श स

————————————————

अंग्रेजी–ा ह र ज द च ि इ उ त स अ ी `

तुलना से स्पष्ट है कि अंग्रेजी में हिन्दी की 'अ' ध्वनि नहीं है तो 'अ' और '˜' का सूक्ष्म अन्तर हिन्दी में नहीं है। ऐसे और कई उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया, भाषा की मूलभूत इकाई है 'ध्वनि' और सार्थक ध्वनियों से 'शब्द' का निर्माण होता है। यह शब्द जब वाक्य में प्रयुक्त होता है तब वह 'रूप' बन जाता है। अनुवाद कर्म में हमेशा दो भाषाओं के बीच स्थित समानार्थक शब्दों की तलाश रहती है। मगर यह जरूरी नहीं कि एक भाषा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति किसी दूसरी भाषा में उपलब्ध हो। हर भाषा में कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिसके समानार्थक शब्द दूसरी भाषा में उपलब्ध नहीं होते, जैसे पारिभाषिक शब्द, मिथ-विशेष से जुड़े शब्द, सांस्कृतिक शब्द आदि। ऐसे में हम मूल शब्द का अनुवाद न कर उसे लक्ष्य-भाषा की लिपि में परिवर्तित कर ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेते हैं। इसके लिए हमें लिप्यंतरण का सहारा लेना पड़ता है

और लिप्यन्तरण में ध्वनिविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। कुछ शब्दों का लिप्यन्तरण द्रष्टव्य है–

ब्यूरो, वाउचर, मैकबेथ आदि।

अनुवाद एवं अनुलेखन

अनुलेखन का अर्थ है स्त्रोत-भाषा के शब्द की वर्तनी पर ध्यान न देकर उसके उच्चारण को आधार मान कर लक्ष्य-भाषा में उस उच्चारण के अनुरूप लिखना। अनुलेखन को प्रतिलेखन भी कहा जाता है। अनुवाद प्रक्रिया के दौरान अनुद्य सामग्री में हमें दो प्रकार के शब्द मिलते हैं–1- जिनका अनुवाद किया जाना है और 2- जिनका अनुवाद न कर थोड़े-बहुत रूपान्तर के साथ प्रायः मूल रूप में ही लक्ष्य-भाषा में लिख दिया जाता है। अनुलेखन में स्त्रोत-भाषा के ऐसे शब्दों को लक्ष्य-भाषा में लिखने की समस्या पर विचार किया जाता है जिसका सम्बन्ध लिपिविज्ञान से है। भोलानाथ तिवारी इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि अनुवाद में ऐसी समस्या दो रूपों में आती है। यदि अनुवादक किसी से कोई बात सुनकर उसका अनुवाद करके लिख रहा है तो वह स्त्रोत-भाषा की ध्वनि को पहले लक्ष्य-भाषा की ध्वनि में परिवर्तित करता है और फिर लक्ष्य-भाषा की उन ध्वनियों को प्रतिनिधि लिपि-चिह्नों में उन्हें लिखता है-

स्त्रोत-भाषा ध्वनि लक्ष्य-भाषा ध्वनि लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्न

किन्तु यदि वह किसी लिखित सामग्री से अनुवाद कर रहा हो तो इस क्रम में वृद्धि हो जाती है-

1.स्त्रोत-भाषा लिपि चिह्न 2. स्त्रोत-भाषा ध्वनि 3. लक्ष्य-भाषा ध्वनि 4. लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्न

अनुवाद में स्त्रोत-भाषा लिपि चिह्न से सीधे लक्ष्य-भाषा लिपिचिह्नतक पहुँचने की प्रक्रिया सही नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि लिपि चिह्नोंके आधार पर का अनुवाद 'जेस्पर्सन' कर दिया जाए तो गलतहोगा क्योंकि इसका सही अनुवाद तो 'येस्पर्सन' है। ऐसे ही और का अनुवाद क्रमानुसार 'रूसो' और 'मेइये' होगा, न कि तथा।

अनुवाद एवं रूपविज्ञान

रूपविज्ञान के अन्तर्गत भाषा की रूप-रचना का अध्ययन होता है। रूप-रचना में व्याकरणिक नियमों का आकलन एवं निर्धारण किया जाता है। इसके अध्ययन का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। चूँकि भाषा के रूप-विन्यास पर ही

मूल का आशय छिपा रहता है, इसीलिए अनुवादक को स्रोत-भाषा और लक्ष्य-भाषा, दोनों की रूप-रचना, व्याकरणिक नियमों आदि से भलीभाँति परिचित होना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के दो वाक्यों का गलत और सही अनुवाद द्रष्टव्य है–

उदाहरण-1 चंपत- प्रीमा के पास एक जोड़ी कैंची हैं। (-गलत अनुवाद)ख- प्रीमा के पास एक कैंची है। (-सही अनुवाद)

उदाहरण-2 क- उसका सुन्दर बाल है। (-गलत अनुवाद)ख- उसके बाल सुन्दर हैं। (-सही अनुवाद)

कहने की जरूरत नहीं कि अंग्रेजी में आदि का प्रयोग होता है, मगर हिन्दी में उसे 'एक जोड़ी कैंची' या'एक जोड़ी पायजामा' न कहकर सिर्फ 'एक कैंची' या 'एक पायजामा' कहा जाता है। ऐसे ही अंग्रेजी में 'ंपत' शब्द एकवचन के रूप में प्रयोग होता है,जबकि हिन्दी में 'बाल' बहुवचन में।

अनुवाद एवं शब्दविज्ञान

किसी भाषा की सार्थक ध्वनियों के समुच्चय को शब्द कहते हैं। शब्दविज्ञान में शब्दों को परिभाषित करके विभिन्न आधारों पर उनका वर्गीकरण किया जाता है। अनुवाद में शब्दों के मूल अर्थ का स्रोत या प्रयोग सन्दर्भ को जानने के लिए शब्द का वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण करना पड़ता है। उदाहरण के लिए 'पानी' शब्द को लीजिए –

पानी

————————————————

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12

——————————————————

जल वारि नीर अम्बु सलिल अंभ तोय उदक घनसार तृसाह प्रजाहित सर

——————————————————

निश्चय ही इन समानार्थी शब्दों का प्रयोग भी कुछ हद तक निश्चि तही है और अनुवादक को सन्दर्भानुसार इन शब्दों में से एक ही प्रतिशब्द को ग्रहण करना पड़ता है। जैसे रूक- गंगा जल (गंगा नीर या गंगा पानी नहीं)ख- पीने का पानी (पीने का नीर या जल नहीं)ग- नीर ढलना' (जल या पानी ढलना नहीं) (नीर ढलना = आँसू बहाना)

अनुवाद एवं अर्थविज्ञान

अर्थविज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन किया जाता है। चूँकि अनुवाद में शब्द का नहीं अर्थ का प्रतिस्थापन होता है, इसीलिए अनुवाद में अर्थविज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। साथ ही अनुवाद कर्म में अनुवादक केवल अभिधार्थ के सहारे आगे नहीं बढ़ता, बल्कि निहितार्थ (लक्षणा और व्यंजना) को भी बराबर साथ लिए चलता है। उदाहरण के लिए एक पक्षी के सन्दर्भ में 'वह उल्लू है' कहना साधारण अर्थ का बोध कराता है, मगर एक व्यक्ति के सन्दर्भ में जब 'वह उल्लू है' कहा जाता है तो व्यंग्यार्थ का बोधकराता है। फिर जो 'उल्लू' हिन्दी में मूर्ख का प्रतीक है, वही अंग्रेजी में 'विद्वान' का प्रतीक है। इतना ही नहीं, कुछ शब्दों के कई अर्थ होते हैं। जैसे 'वारि' शब्द की तीन अर्थ छवियों को देखिए –

वारि

1- जल 2- सरस्वती 3- हाथी बाँधने की जंजीर

अनुवादक को सन्दर्भानुसार इन अर्थ छायाओं में से एक अर्थ को ग्रहण करना पड़ता है।

अनुवाद एवं वाक्यविज्ञान

अनुवाद में वाक्यविज्ञान की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वाक्यविज्ञान में भाषा विशेष के सन्दर्भ में वाक्य रचना और इसके विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। अनुवाद में भी लक्ष्य-भाषा की प्रकृति, व्याकरणिक नियम आदि का ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए 'वह भोजन कर रहा है' का अंग्रेजी अनुवाद न होकर होगा। यहाँ 'भोजन करना' हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल है और अंग्रेजी भाषा की प्रकृति के। ऐसे ही 'घोंघा धीरे-धीरे चल रहा है' का अंग्रेजी अनुवाद न होकर होगा। कहने की जरूरत नहीं कि हिन्दीवारिभाषा की संरचना 'कर्ता. कर्म. क्रिया विशेषण. क्रिया' नियम पर आधारित होती है, जबकि अंग्रेजी भाषा की संरचना 'कर्ता . कर्म . क्रिया . क्रिया विशेषण' नियम पर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद का भाषाविज्ञान, खासकरअनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान से बहुत गहरा सम्बन्ध है। हर अनुवादक को भाषविज्ञान के इन नियमों की जानकारी होना जरूरी है, अन्यथा वह सही और सार्थक अनुवाद कर ही नहीं सकता।

13

भारतीय साहित्य में अनुवाद

भारतीय साहित्य की मूलभूत अवधारणा भारत में प्राचीन काल से विकसित और पल्लवित विभिन्न भाषाओं के सामूहिक स्वरूप से उत्पन्न हुई है। भारत उपमहाद्वीप शताब्दियों से गौरवशाली समुन्नत सभ्यता और संस्कृति का केंद्र रहा है। विश्व मनीषा सदैव भारतीय चिंतन परंपराओं, साहित्य बोध तथा दार्शनिक पद्धतियों के प्रति विस्मयपूर्ण आदर का भाव प्रदर्शित करती रही है। भारतीय चिंतन परंपरा में एक प्राचीन काल से वैश्विक दृष्टि समाहित रही है जिसके अंतर में समूची मानव जाति के कल्याण की चेतना मौजूद रही है। इसी कारण भारत भूमि सदा से ही हर प्रकार के वैविध्य को आत्मसात करने में न केवल उदार रही है बल्कि हर उस नवीनता को स्वीकार कर उसके सर्वांगीण संवर्धन में सकारात्मक भूमिका निभाई है। भारत की यह समवेती और समावेशी प्रवृत्ति ही इसे अन्य सभ्यताओं और संस्कृतियों से भिन्न और विशिष्ट बनाती है। यह इस भूमि की ही महिमा है कि यहाँ युगों-युगों से असंख्य जातियाँ अपनी धार्मिक आस्थाओं, सांस्कृतिक विशिष्टताओं, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक प्रतिबद्धताओं को साथ लिए, सुरक्षित रहते हुए विकास के मार्ग प्रशस्त करती रहीं। संसार में ऐसी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी जहाँ इतनी जातियाँ, भाषाएँ, संस्कृतियाँ और धार्मिक आस्थाएँ एक साथ पुष्पित और पल्लवित हो रहीं हों।

सन् 1947 में जब भारत का उदय एक राष्ट्र के रूप में हुआ, कुछ इतिहाकारों ने इस राष्ट्र को 'एक अस्वाभाविक राष्ट्र' कहा, क्योंकि अकल्पनीय

बहुभाषिकता और संस्कृति बहुलता का ऐसा नमूना संसार में अन्य किसी भी राष्ट्र की संरचना में दिखाई नहीं देता।

बहु-भाषिकता, संस्कृतिबहुलता और सैद्धान्तिक विभिन्नता, भौगोलिक जटिलता आदि स्वतंत्र भारत की विशिष्टताएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इतनी विभिन्नता के बावजूद इस देश का लोकतांत्रिक सह-अस्तित्त्व का स्वरूप निश्चित ही बाहरी दुनिया के लिए विस्मय और ईर्ष्या का कारण हो सकता है।

भारत की बहुभाषिकता, इस राष्ट्र की अस्मिता और शक्ति है। इसकी विविधता में एक अंतर्लीन सांस्कृतिक समन्वय की ऊर्जा निहित है, जो कि अनेकता में एकता की संचेतना को व्याप्त करने में सहायक है। वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक बहुलता के साथ लोगों के आचार-विचार-व्यवहार, धार्मिक और आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्विरोध, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक विचार धाराओं के अंतर मंथन की प्रक्रिया यहाँ निरंतर गतिमान रही है। यही इस देश की बहुभाषिक संस्कृति की विशिष्टिता है।

भारतीय साहित्य - शब्द भारत की सभी भाषाओं में लिखित और मौखिक साहित्य के भंडार को कहा जाता है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं का साहित्य सम्मिलित रूप से भारतीय साहित्य है। यह एक समुच्चय है, जो कि सभी भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का समेकित रूप है। भारतीय समाज को चित्रित करने वाला साहित्य ही भारतीय साहित्य है। केवल भाषापरक ही नहीं बल्कि इसकी पहचान इसके भारतीय सामाजिक सरोकार से बनी है। हर वह साहित्य भारतीय समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आंचलिक पक्ष को उजागर करता है, वह भारतीय साहित्य कहलाने का हकदार है। भारतीयता को उसके समूचेपन के साथ प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही भारतीय साहित्य हो सकता है इसलिए विदेशों में भारतीय स्थितियों और समाज की अंतश्चेतना को प्रस्तुत करने वाला साहित्य भी भारतीय साहित्य की श्रेणी में स्थान प्राप्त करता है। केवल संविधान में उल्लिखित भाषाएँ ही नहीं वरन अन्य भारतीय बोलियों और उपभाषाओं में रचित साहित्य भी भारतीय साहित्य के दायरे में आता है।

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अंग्रेजी भाषा का उल्लेख नहीं है, किन्तु भारतीय लेखकों द्वारा रचित अंग्रेजी साहित्य, भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय रचनाकारों के द्वारा रचित अंग्रेजी साहित्य की अपनी एक विशिष्ट पहचान है और इसे विश्व स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त है। इस तरह

भारतीय साहित्य के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के साथ-साथ भारतीय अंग्रेजी साहित्य भी शामिल हो गया है।

'भारतीय साहित्य की आधारभूत भारतीयता या एकता से परिचित होना तभी संभव होता है जब हम उसे अनेकता या भारतीय साहित्य की विविधता के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करते हैं। पश्चिमी विचारधारा प्रत्येक समस्या को द्वि-आधारी प्रतिमुखता में बदल देती है और इसके विपरीत भारतीय मन जीवन की साकल्यवादी दृष्टि में विश्वास करता है और परिणामत: एकता-अनेकता जैसे विरुद्धों के समूह को एक-दूसरे के संपूरक के रूप में स्वीकार करना सहज हो जाता है और स्थानीय, प्रांतीय तथा सर्व-भारतीयता तथा राष्ट्रीय अस्मिता में एक सजीव संबंध स्थापित करना संभव हो पाता है। भारतीय साहित्य अपनी एकता में विविधता को अंगीकार करते हुए प्रदर्शित करता है और यही विश्व को भारत की देन है। अनेकता से एकता की ओर ले जाने वाला यह मॉडल भारत की अनन्यता है।'

भारतीय साहित्य भाषिक बहुवचनीयता के साथ ही एक मूलभूत ऐक्य के तत्त्व को धारण किए हुए है, यह एक निर्विवाद सत्य है। भारतीय साहित्य की मूलभूत्त एकता को प्रामाणित करने के लिए अनेकों ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक साक्ष्य मौजूद हैं। भारतीय साहित्य की एकता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से सन् 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन ने तब कहा कि भारतीय साहित्य एक है यद्यपि वह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक लेंगवेजेज एंड लिटर्रेचर्स ऑफ इंडिया में भारतीय साहित्य के लिए 'बहुवचन' शब्द का प्रयोग किया है।

साधारणतया भारतीय भाषाओं का उल्लेख हम एकवचन में करते हैं परंतु जब भारतीय भाषाओं की बात की जाती है तब बहुवचन का प्रयोग होता है। भारतीय साहित्य में हमें विषय वस्तु की एकता मिलती है और शैली की विभिन्नता भी और साथ ही सांस्कृतिक विशिष्टताओं का एक वैविध्यपूर्ण संसार के साथ-साथ साहित्यिक परंपराओं के अपार उदाहरण। लेखकों द्वारा लगातार यह सिद्ध किया जाता रहा है कि भारत एक वैविध्यमय देश है, जो बहुत सी जातियों, सभ्यताओं, प्रदेशों, धर्मों तथा भाषाओं का समाहार है। इसके किसी एक हिस्से का आविष्कार दूसरे हिस्से की खोज के लिए हमे रास्ता दिखाते हैं (हिंदी का भक्ति काव्य हमें अंतत: तमिल आलवारों तक पहुँचा देता है) और इस तरह एक

संपूर्ण भारत का पता लगता है। जब हम मध्ययुगीन भक्ति साहित्य का उदाहरण लेते हैं, तब हम देखते हैं कि यह सर्वभारतीय घटना 6–7वीं शती में तमिल के आलवारों द्वारा घटित होकर कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान में प्रसारित होते हुए 13–14वीं शती में कश्मीर तक फैल जाती है, और 15–16वीं शती तक मध्य देश को अपने घेरे में ले लेती है। श्री चैतन्य के फलस्वरूप भक्ति के इस रूप का नवरूपण होता है और बंगाल, असम तथा मणिपुर में इस आंदोलन का प्रसार होता है। यह एक क्रान्ति थी, नवजागरण था जिसने भक्तों की कल्पना को झंझा की तरह झकझोर किया। भक्ति साहित्य में अलग–अलग भाषाओं का प्रयोग हुआ है, इसमें अनेक सांस्कृतिक विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति विद्यमान है। विभिन्न भाषाओं में रचित इस साहित्य में मौजूद विविधता के बावजूद एक आम विश्वास, आस्था, मिथक तथा अनुश्रुतियाँ इनमें विषयवस्तु की एकता को दर्शाती हैं। इसी क्रम में आधुनिक काल के नवजागरण का उदाहरण भी लिया जा सकता है। वैज्ञानिक बुद्धिवादिता, व्यक्ति स्वाधीनता तथा मानवतावाद 14वीं शती के यूरोपीय नवजागरण की विशेषताएँ थी। भारत में समय की माँग के अनुसार इनके स्थान पर राष्ट्रवाद, सुधारवाद तथा पुनरुत्थानवाद का प्रसार हुआ। एक ही विषय वस्तु – समाज सुधार को लेकर भारत की विभिन्न भाषाओं में पहला उपन्यास लिखा गया। तमिल में सैमुअल वेदनायकम पिल्लई, तेलुगु में कृष्णम्मा चेट्टी, मलयालम में चंदु मेनन, हिंदी में लाला श्रीनिवास दास, बांग्ला में मेरी हचिन्सन के उपन्यास की विषयवस्तु में समाज सुधार की ही प्रमुखता है। वस्तुतः इन्हीं सब कारणों से यह निष्कर्ष लिया जा सकता है कि कोई भी एक भारतीय साहित्य एक – दूसरे भारतीय साहित्य से कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है अतएव भारतीय साहित्य का कोई भी अध्ययन एक साहित्य के संदर्भ में अध्ययन के प्रति न्याय नहीं कर सकता। इन सारी विविधताओं का समाधान 'अनुवाद' के माध्यम से ही संभव है। भारतीय साहित्य की भाषिक विविधता को दूर करने में 'अनुवाद' की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा भाषा साहित्य के समीकरण पर आधारित नहीं क्योंकि यहाँ बहुत सी भाषाएँ हैं। हमारी बहुभाषिक स्थिति में एक लेखक बहुत–सी भाषाओं में लिखता है। इसीलिए भारतीय साहित्य को किसी एक भाषा से संबद्ध करके उसे चिह्नित नहीं किया जा सकता। जब कोई भारतीय साहित्य की बात करता है तब एक भौगोलिक क्षेत्र और राजनीतिक एकता की बात उठती है। भौगोलिक क्षेत्र की अपेक्षा भारतीयता का आदर्श हमारे लिए ज्यादा आवश्यक

है। 'पंडित नेहरू कहते थे, यह एक नेशन स्टेट नहीं है मगर एक राष्ट्र निर्मिति की स्थिति में है। रवीन्द्रनाथ कहते थे कि हमारा राष्ट्र मात्र भौगोलिक सत्ता नहीं, मृण्मय नहीं। वह एक विचार का प्रतीक है, वह चिन्मय है। हमारा राष्ट्रवाद हमारे प्राचीन आदर्शों तथा गांधीजी द्वारा प्रस्तुत बहुलवाद, आध्यात्मिक परंपरा, सत्य और सहिष्णुता के विचारों तथा नेहरू के समाजवादी तथा अपक्ष ग्रहण के विचारों पर आधारित है। और सबसे बड़ी बात हमारे साहित्य की अवधारणा जनता तथा साहित्य के संपर्क की पहचान पर आधारित है। वस्तुतः भारत के साहित्य को केवल भाषा, भौगोलिक क्षेत्र और राजनीतिक एकता से ही पहचाना नहीं जाता मगर कहीं अधिक उस देश की जनता के आश्रय से पहचाना जाता है।'2

भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता

भारतीय साहित्य भारतीय जनता की स्मरणीय अभिव्यक्तियों का समाहार है। यह सत्ता राजनीतिक अनिवार्यता से नहीं बल्कि समुदाय और समुच्चय की भावना से निर्धारित हुई जो भावना सदियों से हमारे भीतर मौजूद है। समुदाय की भावना से प्राप्त शक्ति भारतीय जनता और उसके क्रिया कलापों को समायोजित करती है और इसीलिए भारतीय साहित्य में लोक और शास्त्र का अनुशासन, आदर्श की अभिव्यक्ति और लोक की चुनौती और लोक से प्रेरित त्रासदी की अभिव्यक्ति सभी इकट्ठे दिखाई पड़ते हैं। समुदाय की यह भावना न तो उपनिवेशवाद की प्रतिक्रिया है और न ही राष्ट्रीय आंदोलन का परिणाम। यह एक सार्वकालिक यथार्थ है।

भारतीय साहित्य का विचार भारत की बहुभाषिकता का स्वाभाविक परिणाम है। भारतीय साहित्य की एकता भाषागत एकता नहीं, विचारों और भावनाओं की एकता है। भारतीय साहित्य की संचलित भारतीयता का प्रमाण उसके बहुलवादी संदर्भ में ही मिलता है। विविधता का यह स्वरूप जो एकता की ओर हमें ले जाता है भारत के लिए एक आदर्श नमूना है और यह एकता जैसा कि कहा गया है भाषिक नहीं, वैचारिक है। उदाहरणतया – अशोक के शिलालेख कई बोलियों में उपलब्ध हैं परंतु उनमें एक ही बौद्ध धर्म के आदर्श विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कालिदास के नाटक शकुंतला में संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है परंतु एक ही वैचारिक दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है और वह यह कि मनुष्य के लिए सांसारिकता से ही आध्यात्मिकता तक की यात्रा संभव हो पाती है। विद्यापति ने

अपने काव्यागत विचार अवहट्ट, संस्कृत और मैथिली में प्रस्तुत किए हैं। और गुरुग्रंथ साहिब एक बहुभाषिक कृति है जिसमें एक ही सत् की अभिव्यक्ति हुई है। इस तरह भारत में विभिन्न भाषाओं के आश्रय से एक साहित्यिक संसार की रचना हुई है। इस देश में हर प्रकार की विविधता, भाषिक और गैरभाषिक के बावजूद पिछले एक हजार वर्षों में रूपकों, बिंबों, मिथकों अनुश्रुतियों, परिपाटियों, नियमों का एक जैसे निकाय का विस्तार हुआ है और परिणामतः विभिन्न भाषाओं के साहित्य का एक दिशा से दूसरी दिशा में अभिसरण संभव हो पाया है जैसे कि एक परिवार की भाषाओं का होता है। भारतीय साहित्य अनेकों भाषाओं में अभिव्यक्त भारत की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों एवं तद्जनित परिणामों का वृहद कोष है। इन भाषाओं में रचित विपुल साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान के लिए एक भाषिक उपकरण की आवश्यकता होती है। 'अनुवाद' ही वह उपकरण, औजार तथा माध्यम है जिससे भारतीय साहित्य की विपुल धरोहर और समकालीन रचनाशीलता को एक दूसरे के सम्मुख रखा जा सकता है। भारतीय साहित्य को एकभाषिक संप्रेषणीयता की स्थिति से अनुवाद के माध्यम से द्विभाषी अथवा बहुभाषी संप्रेषणीयता की स्थिति में लाया जा सकता है। 'अनुवाद' ही वह माध्यम है, जो अंतरभाषिक साहित्यिक संवाद स्थापित करने में सक्षम है। साहित्य के दोनों रूपों पर जब चर्चा की जाती है तब सृजनशील साहित्य (गद्य और पद्य, आलोचनात्मक साहित्य) और ज्ञानात्मक साहित्य (समाज विज्ञान, मानविकी, विज्ञान, प्रबंधन, जनसंचार, व्यापार-वाणिज्य, विपणन, प्रौद्योगिकी आदि का साहित्य) का संदर्भ अनुवाद के दो वृहद क्षेत्रों को लेकर उपस्थित होता है। दोनों ही क्षेत्रों में अनुवाद की व्यापक संभावनाएँ निहित हैं। अनुवाद ही भाषिक विभिन्नता और अलगाव को दूर करने की क्षमता रखती है।

भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य के अक्षय भंडार के अंतरभाषिक रूपान्तरण के लिए अनुवाद की प्रक्रिया ही एक मात्र उपाय है। 'अनुवाद' के द्वारा ही विभिन्न भाषाओं के मध्य मौजूद संप्रेषण के गतिरोध को तोड़ा या मिटाया जा सकता है। इस दृष्टि से अनुवाद एक अपरिहार्य उपकरण है जिससे भारतीय साहित्य में वर्णित विषय वस्तु और उसके भाव सौंदर्य का आस्वादन किया जा सकता है।

स्त्रोतभाषा की पाठ – सामग्री को लक्ष्यभाषा की समानान्तर पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन ही अनुवाद है (कैटफर्ड)। अनुवाद के प्रकारों में साहित्यिक अनुवाद

का विशेष स्थान है। इस वर्ग के अनुवाद के अंतर्गत साहित्यिक पाठ का स्त्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में भाषिक रूपान्तरण किया जाता है। अनुवाद में लक्ष्यभाषा के पाठ के अर्थ की प्रधानता महत्वपूर्ण है।

अनुवाद प्रक्रिया में अर्थ प्राण तत्त्व है। अनुवाद की समूची प्रक्रिया अनूद्य एवं अनूदित पाठ के अर्थ-सामीप्य को सार्थक बनाने की है। इसीलिए अनूद्य पाठ के अर्थ की तुलना अनूदित पाठ के अर्थ से की जाती है। अनुवाद में अनूद्य (स्त्रोत भाषा पाठ) और अनूदित(लक्ष्य भाषा) पाठ के अर्थ में सामंजस्य और निकटता अनिवार्य है। अनूदित पाठ में मूल पाठ से अर्थ विचलन, अर्थ संकोच और अर्थ विस्तार स्वीकार्य नहीं होता, अर्थात अनूदित पाठ में मूल पाठ का ही अर्थ ध्वनित होना चाहिए। साहित्यिक अनुवाद की समस्याएँ साहित्येतर अनुवाद की समस्याओं से अनेक अर्थों में भिन्न होती हैं। भारतीय साहित्य के अनुवाद का अर्थ, भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के सभी विधाओं के पाठ का अनुवाद है। यदि अनूदित पाठ में स्त्रोत भाषा के पाठ का अर्थ अक्षुण्ण हो और यदि प्रभाव की दृष्टि से वह मूल के निकट तथा अनुरूप हो तो अनूदित पाठ भी मौलिक पाठ की ही तरह पाठकों को आकर्षित करेगा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उन्हीं के द्वारा बांग्ला से अंग्रेजी में अनूदित 'गीतांजलि' के पाठ के लिए 'नोबल पुरस्कार' (1913) प्राप्त हुआ था। अनुवाद की शक्ति अपरिमेय और अजेय होती है। भारतीय साहित्य में कुछ कालजयी कृतियों के अनूदित संस्करण मूल कृति का विश्वास दिलाती हैं। जैसे शरतचंद्र कृत देवदास, चरित्रहीन और श्रीकांत, बिराजबहू, बंकिमचन्द्र का आनंदमठ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर का गोरा और महाश्वेता देवी कृत जंगल के दावेदार आदि कृतियों के अनूदित पाठ प्रामाणिक अनुवाद के उदाहरण हैं।

भारतीय साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता –

(i) सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने के लिए

(ii) देश में सांस्कृतिक एकता का प्रचार करने के लिए

(iii) राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिए।

देशवासियों में विभिन्न प्रान्तों और भाषाओं के प्रति सजगता तथा संवेदना उत्पन्न करने के लिए विभिन्न भाषा समुदायों के मध्य भावनात्मक एकता विकसित करने के लिए सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए विभिन्न प्रदेशों के सामाजिक संस्कार एवं लोक संस्कृति के ज्ञान के लिए भारतीय साहित्य में निहित

मूलभूत एकता के तत्त्वों से अवगत कराने के लिए भारतीय साहित्य में निहित गौरवशाली साहित्यिक परंपराओं को पुनर्जीवित करने के लिए वर्तमान संदर्भ में प्रांतीय विभेदों को दूर करने के लिए समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गों में स्नेह, सौमस्य और सौहार्द्र के भाव को विकसित करने के लिए।

भाषा संस्कृति की वाहिका होती है। अनुवाद प्रक्रिया में स्रोतभाषा के साहित्य के सांस्कृतिक तत्त्वों का लक्ष्यभाषा में रूपांतरण होता है। इस तरह 'अनुवाद' सांस्कृतिक आदान-पदान की प्रक्रिया को सम्पन्न करती है। भारतीय साहित्य के अंतरभाषिक अनुवाद से देश में सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक एकता के प्रचार को प्रभावी बनाया जा सकता है। भारतीय साहित्य में विभिन्न प्रान्तों की सामाजिकता और संस्कृति बोध के साथ-साथ लोक संस्कृति भी व्यक्त होती है। अनुवाद के माध्यम से विभिन्न प्रान्तों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के प्रति देश के अन्य क्षेत्रों के लोगों में विशेष संवेदना और भावनात्मक लगाव पैदा होता है। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक बोध उत्पन्न करने के लिए भारतीय साहित्य का अनुवाद इस प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहायक सिद्ध होगा। देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना विकसित करने के लिए विभिन्न भाषाओं में रचित भारतीय साहित्य को अनुवाद द्वारा उपलब्ध कराना आवश्यक है। आज का युग विभेदों और विखंडन का युग है। सारा देश विषम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से गुजर रहा है, ऐसे में इस विखंडन और विभेदीकरण की प्रक्रिया को अनुवाद के माध्यम से भारतीय साहित्य में अंतर्निहित मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर मानवीय गुणों को संवर्धित किया जा सकता है। अनुवाद के माध्यम से वर्तमान युवा पीढ़ी को भारतीय साहित्य की अनमोल धरोहर से परिचय कराया जा सकता है, जिसकी आज नितांत आवश्यकता है। भारतीय साहित्य के अंतर्गत संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्यिक परंपराएँ सम्मिलित हैं। भारतीय साहित्य में प्राचीन से वर्तमान तक, वैदिक साहित्य से लेकर समकालीन साहित्य तक गद्य-पद्य की सभी विधाएँ सम्मिलित हैं। भारतीय समाज बहुभाषिक समाज है, किसी भी व्यक्ति के लिए सभी भाषाओं का ज्ञान दु:साध्य है इसीलिए विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य को अनुवाद के माध्यम से ही इतर भाषा में रचित साहित्य का आस्वादन किया जा सकता है। भारत में साहित्यिक अनुवाद की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारत में संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त बाईस भाषाओं के प्रयोक्ता मौजूद हैं, साथ ही अनेकों बोलियों और उपभाषाओं के

प्रयोक्ता भी बड़ी संख्या में देश की जनसंख्या का हिस्सा हैं। भारतीय साहित्य अंग्रेजी, उर्दू और फारसी के साथ-साथ संविधान में उल्लिखित सभी भाषाओं में, साहित्य की सभी विधाओं में रचा जाता है। संस्कृत साहित्य और उसके बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का साहित्य भी भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में विद्यमान है। भारतीय भाषा समुदाय विस्तृत भौगोलिक सीमाओं में आवागमन करता है और सारा देश भारत की प्राचीन साहित्यिक संपदा से परिचित है। संस्कृत में रचित वेद, उपनिषद, आगम तथा ब्राह्मण ग्रंथ आदि अनुवाद के माध्यम से ही आज सारे भारत में हिंदी तथा इतर भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इससे संस्कृत से अनभिज्ञ पाठक वर्ग इन अमूल्य साहित्यिक ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त कर रहा है। संस्कृत में रचित वैदिक साहित्य और साथ ही नाना पुराण निगमागम आदि महत्वपूर्ण ज्ञान के ग्रंथ अनुवाद के द्वारा ही जनसामान्य को उपलब्ध हो सके हैं। अनुवाद के बिना ज्ञान का अंतरण इस रूप में संभव नहीं होता। भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर का अनुवाद विदेशी भाषाओं में भी हुआ है और विदेशी समाज भी प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य के अनुवाद से लाभान्वित हो रहा है। भारत के वैभवपूर्ण सांस्कृतिक अतीत को विदेशी समाज अनुवाद के माध्यम से ही जान सका है।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य का प्रचार और प्रसार अनुवाद द्वारा ही संभव हुआ है। भक्ति साहित्य और संत साहित्य जो कि विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय भाषाओं में रचा गया, अनुवाद के माध्यम से देश के कोने कोने में व्याप्त हुआ। भक्ति साहित्य का अधिकांश हिस्सा अलिखित अथवा जनश्रुति का साहित्य का है जिसकी परंपरा मौखिक है। इस प्रकार के साहित्य का प्रचार समूचे देश में विभिन्न भाषाओं में अनूदित पाठ के द्वारा ही संभव हो सका। उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के संत एवं आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांतों का व्यापक प्रचार केवल अनूदित पाठ के माध्यम से ही विस्तृत रूप से संभव हुआ। इन सबमें वैचारिक समानता तो थी ही लेकिन भाषिक विभेद से परस्पर विचारों के आदान-प्रदान में कठिनाई थी। इसी गतिरोध को अनुवाद - प्रक्रिया के द्वारा सुलझा लिया गया। इस तरह कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि के पद मूल भाषा में रचित तथा गेय होने के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध हुए और उतने ही लोकप्रिय हैं जितने कि मूल भाषा में। दक्षिण के अन्नमाचार्य, त्यागराय, पोतना, वेमना, आन्डाल, अक्क मादन्न, मोल्ल, अव्वैय्यार आदि के साथ आलवारों के संकीर्तन, तमिल संगम साहित्य आदि अनुवाद के

माध्यम से अपनी गरिमा और महत्व को प्रतिपादित कर सके हैं। रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि दार्शनिक आचार्यों के संदेश और उनके सैद्धान्तिक विचार अनुवाद के माध्यम से सारे भारत में ग्राह्य बन पड़े हैं। उसी प्रकार उत्तर भारत के साधु–संत और महात्माओं के संदेश भी दक्षिण में अनुवाद के माध्यम से ही पहुँच पाए हैं। उपनिषद के विचार उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर – शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के द्वारा अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद के रूप में प्रकट होते हैं। इसी तरह भक्ति अनुवाद के माध्यम से दक्षिण से उत्तर की ओर यात्र करती है। कश्मीर का शैव सिद्धान्त जाकर तमिल क्षेत्र में अपना स्थान बनाता है। गांधी जी का सत्य और अहिंसा को लेकर किए प्रयोग की अनुगूँज अनुवाद के माध्यम से ही देश के कोने–कोने तक पहुँचती है। रवीन्द्र की मनुष्य और प्रकृति में सौन्दर्य की खोज सारे भारत की खोज बन जाती है। फकीरमोहन सेनापति के द्वारा उपन्यासों में सर्वप्रथम प्रसारित सामाजिक यथार्थ प्रेमचंद के द्वारा प्रयुक्त होकर सर्वभारतीय स्थान ग्रहण कर लेता है। दलित साहित्य गुजरात, महाराष्ट्र से कर्नाटक होते हुए हिंदी क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। इस तरह कृति और उनके लेखक एक वृहत् साहित्यिक परंपरा का हिस्सा बन जाते हैं और तब उनका भाषिक अस्तित्त्व राष्ट्रीयता की संवेदना के प्रसारण में बाधा नहीं बनता।

साहित्यिक के शैलीगत अनुवाद के प्रकारों में भावानुवाद, सारानुवाद, शब्दानुवाद आदि प्रमुख हैं। पद्य पाठ का सरल सारानुवाद गद्य में रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय साहित्य के अनुवाद में सारानुवाद की प्रमुखता अधिक है। कालिदास, बाण, भास, आदि संस्कृत कवियों के महाकाव्यों और पद्य नाटकों का गद्यानुवाद तथा सारानुवाद मौलिक रचना के सारांश को सरलतापूर्वक समझने में अत्यंत उपयोगी रहा है। शेक्सपियर के नाटक जो कि सारे पद्य शैली में ही रचे गए, उनका गद्य के रूप में सारानुवाद पाठकों को शेक्सपियर के नाटकों का आस्वादन करने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर, संस्कृत में रचित रामायण और महाभारत महाकाव्यों को अधिकांश पाठक अनुवाद के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं में पढ़कर लाभान्वित हो रहे हैं। भगवद्गीता का मूल पाठ संस्कृत में है, लेकिन संस्कृत से अनभिज्ञ पाठक अन्य भाषाओं में अनूदित पाठ पढ़कर गीता के संदेशों का सार समझकर जीवन में उनका आचरण कर रहे हैं। पद्य का अनुवाद मौलिक कृति के अनुरूप छंदबद्ध और छंदमुक्त दोनों तरह से किया जाता है।

भारतीय साहित्य की प्राचीन धरोहर अनुवाद से ही आज जीवंत है तथा समाज में भारतीय मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति नवचेतना जागृत करने में सफल हुई है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित पद्य साहित्य जिसमें काव्य और महाकाव्य प्रमुख हैं, इनके अनूदित पाठ भारत के इतर भाषा समुदायों के लिए महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए हिंदी में रचित प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, कामायनी, साकेत, उर्वशी और कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुए हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य की प्रमुख कृतियों का रूपान्तरण इतर भाषा में उपलब्ध कराने से भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की समरूपता का ज्ञान देशवासियों को होगा। गद्य के क्षेत्र में कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा, निबंध आदि साहित्यिक विधाओं का अंतरभाषिक अनुवाद भारतीय साहित्य में निहित सामाजिकता को दर्शाने के लिए सहायक हुआ है। भारत की राष्ट्र भाषा और राजभाषा हिंदी है, साथ ही हिंदी क्योंकि सर्वाधिक समझी तथा बोली जाती है, इसलिए हिंदी से ही सर्वाधिक साहित्य का अनुवाद इतर भाषाओं में हुआ है। उसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी में सर्वाधिक साहित्यिक कृतियों का अनुवाद हुआ है और यह प्रक्रिया जारी है।

भारतीय साहित्य के अनुवाद की एक प्रमुख समस्या अंतरभाषिक अनुवाद की है अर्थात हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य परस्पर अनूदित नहीं हो पा रहा है। इस तरह के अनुवाद की आज भारतीय समाज को आवश्यकता है। उदाहराणार्थ, हिंदी के कथाकारों में प्रेमचंद - साहित्य का अनुवाद भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। बंगाली के बंकिमचंद्र और शरतचंद्र का कथा साहित्य भी हिंदी एवं अनेक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है। इसी तरह बंगाली के अनेक बड़े और लोकप्रिय लेखकों की रचनाएँ पद्य और गद्य दोनों विधाओं में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं। हिंदी का पाठक वर्ग अतिविशाल होने के कारण इनकी ख्याति सर्वत्र व्याप्त है। बांग्ला साहित्य की लोकप्रियता और महत्व अनुवाद के ही कारण राष्ट्रव्यापी हो सका है। क्षेत्रीय भाषाओं की मूल रचनाओं की पठनीयता उस भाषा समुदाय के आकार पर निर्भर करती है इसीलिए हिंदी का पाठक समुदाय अति विशाल होने से भारतीय साहित्य की खपत भी हिंदी पाठक वर्ग में ही अधिक है। यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है कि आज क्षेत्रीय भाषाओं में रचित साहित्य पहले हिंदी में उपलब्ध होता है। साहित्य अकादमी

पुरस्कृत हिंदेतर कृतियों का अनुवाद हिंदी में तथा हिंदी की रचनाओं का सभी भारतीय भाषाओं में करवाती है।

इधर भारतीय अंग्रेजी रचनाकारों के द्वारा लिखित अंग्रेजी साहित्य बहुत लोकप्रिय हुआ है और भारतीय साहित्य में भारतीय अंग्रेजी लेखकों की बाढ़ सी आ गई है। चेतन भगत, अनीता देसाई, अरुंधती राय, आमिश आदि नई पीढ़ी के युवा लेखकों के उपन्यास लाखों की संख्या में पढ़े जा रहे हैं और इनके हिंदी अनुवाद भी लोकप्रिय हो रहे हैं।

भारतीय साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ

भारतीय साहित्य के अनुवाद के लिए संगठित संस्थाओं का सरकारी और गैरसरकारी स्तर पर अभाव है। केवल साहित्य अकादमी सरकारी स्तर पर यह कार्य सीमित दायरे में कर पा रही है। भारतीय साहित्य के व्यापक बहुभाषिक स्वरूप के अनुरूप अनुवाद के प्रयास अत्यल्प और अपर्याप्त हैं।

भारत में स्वैच्छिक रूप से अनुवाद कार्य नहीं किया जाता है। कुछ ही अनुवादक आत्मतुष्टि के लिए अपनी अभिरुचि के अनुसार भारतीय साहित्य के अनुवाद में रुचि रखते हैं।

भारत में साहित्यिक अनुवाद को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं है। सरकारी और गैरसरकारी दोनों स्तरों पर साहित्यिक अनुवाद कार्य को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता और इसे व्यवसाय (प्रोफेशन) के रूप में भारत में इसे मान्यता प्राप्त नहीं है।

इधर कुछ प्रकाशकों द्वारा व्यापारिक दृष्टि से चुनिन्दा भारतीय साहित्य की कृतियों का अनुवाद करवाया जा रहा है, लेकिन यह अपर्याप्त है। इसका उद्देश्य केवल व्यापारिक है न कि भारतीय साहित्य का संवर्धन अथवा भारतीय सांस्कृतिक चेतना जागृत करना है।

भारतीय साहित्य के अनूदित पाठ के प्रति जनसामान्य में अभिरुचि का अभाव।

भारतीय साहित्य के प्रति उदासीनता का भाव।

भारतीय साहित्य की संकल्पना अस्पष्ट है और अभी पूरी तरह से जनसामान्य में इसकी स्पष्ट छवि स्थापित नहीं हो पाई है।

भारत की भाषाओं के दो अस्तित्त्व हैं। पहला भाषिक और दूसरा सांस्कृतिक, जो भाषा को अतिक्रमित कर प्रकट होता है। यही कारण है कि

फारसी और अंग्रेजी भाषाएँ भारतीय नहीं होने पर भी इन भाषाओं में रचित साहित्य को भारतीय साहित्य में स्थान मिलता है। भारतीय साहित्य भारतीय जनता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का इतिहास है। उनकी साहित्यिक परंपराओं, परिवर्तन और परिणति, उत्थान और पतन तथा पुनरुत्थान का इतिहास है।

भारतीय साहित्य की मूलभूत संकल्पना को साकार बनाने के लिए अंतरभाषिक अनुवाद प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा। भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक समन्वय का प्रचार करने के लिए भारतीय साहित्य को ही अनुवाद के माध्यम से सक्रिय करना होगा। भारतीय साहित्य जो कि भारत की सभी भाषाओं में रचित साहित्य का समुच्चय है, एक सम्मिलित स्वरूप है, इसे प्रत्येक भारतवासी को आत्मसात् करना होगा। भारतीय साहित्य किसी एक भाषा में रचित साहित्य की संज्ञा नहीं है बल्कि यह एक समावेशी और समेकित वृहत्तर साहित्य रूप है, जो कि समूचे भारत की अस्मिता को अपने भीतर समेटे हुए है। भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता अनुवाद के माध्यम से ही साध्य है।

❑❑❑